

वर्ष 45, अंक 4 जुलाई-अगस्त 2022



# गगनाचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम





स्मरण

भारत छोड़ो आंदोलन  
अगस्त 1942



भारतीय स्वतंत्रता संग्राम  
के समस्त सेनानियों को शत शत नमन

भारत छोड़ो 1942 QUIT INDIA



ISSN : 0971-1430

# गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

वर्ष 45 अंक 4 जुलाई - अगस्त 2022



प्रकाशक

**कुमार तुहिन**

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संपादक

**डॉ. आशीष कंधवे**

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002

ई-मेल : [pohindi.iccr@nic.in](mailto:pohindi.iccr@nic.in)

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध  
<http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal>  
पर क्लिक करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक : ₹ 500

यू.एस. \$ 100

त्रैवार्षिक : ₹ 1200

यू.एस. \$ 250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान  
'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली'  
को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया  
जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रण : स्पेस 4 बिजनेस सोल्यूशन्स प्रा. लि. दिल्ली

इस अंक के आकर्षण

नर्मदा घाटी का अवगाहन

हिंदी उपन्यास और सिनेमा

चंद्रधर शर्मा गुलेरी का भाषा विवेक

महान साहित्यकार मार्टिन विक्रमसिंह

दिलीप कुमार: सिनेमा संस्कृति के नायक

साहित्यिक कथा से पटकथा निर्माण के आयाम

वैश्विक सांस्कृतिक निर्मिति में सिनेमा का महत्व

आजादी का अमृत महोत्सव और रामचरितमानस की राष्ट्रीय चेतना

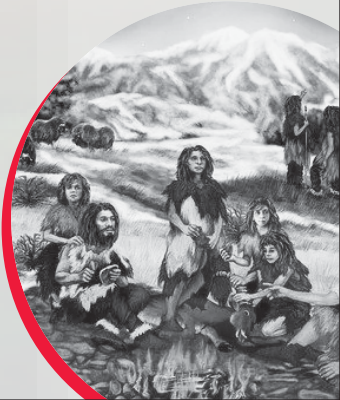
गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

# अनुक्रम

वर्ष 45, अंक 4, जुलाई-अगस्त 2022

वर्षाचल  
साहित्य, कला एवं संस्कृति का मासिक

- प्रकाशकीय**
- 3 कुमार तुहिन
- संपादकीय**
- 4 लोकतांत्रिक नवाचार और नवनिर्माण  
डॉ. आशीष कंधवे
- संस्कृति-संवाद**
- 7 आजादी का अमृत महोत्सव और रामचरित मानस की राष्ट्रीय चेतना  
डॉ. गरिमा जैन
- सभ्यता-संस्कृति**
- 11 नर्मदा घाटी का अवगाहन: सामाजिक समरसता के संदर्भ में  
आचार्य राघवेंद्र दास
- कथा-सागर**
- 14 अग्निपाखी  
मंजुश्री
- 20 प्रसाद  
सरिता कुमारी
- 25 बहादुर की हथेली  
नीरज नीर
- लोक-संस्कृति**
- 30 निक्कड़े फंगडू, उच्ची उडान (छोटे पंख, ऊँची उडान)  
डॉ. निशा नाग
- भाषा-चिंतन**
- 34 चंद्रधर शर्मा गुलेरी का भाषा विवेक  
कृष्ण बिहारी पाठक
- 40 आठवीं अनुसूची और समावेशी प्रजातंत्र  
डॉ. बिपिन कुमार ठाकुर
- शोध-संसार**
- 45 आँचलिकता की मिट्टी में सराबोर एक मार्मिक फिल्म : तीसरी कसम  
डॉ. संगीता राय
- 49 वर्तमान संदर्भ में संत काव्य की प्रासंगिकता  
डॉ. प्रणव शास्त्री
- 52 बाल सिनेमा के बढ़ते चरण  
डॉ. आलोक रंजन पांडेय
- सिनेमा-संसार**
- 56 वैश्विक सांस्कृतिक निर्मिति में सिनेमा का महत्व  
डॉ. निखिल कौशिक
- 59 हिंदी सिनेमा में राष्ट्र भक्ति  
डॉ. प्रणु शुक्ला
- 63 हिंदी उपन्यास और सिनेमा  
प्रो. सत्यकेतु सांकृत
- कथा-पटकथा**
- 66 साहित्यिक कथा से पटकथा निर्माण के आयाम  
डॉ. विजय कुमार मिश्र
- व्यक्ति-विशेष**
- 70 दिलीप कुमार : सिनेमा संस्कृति के नायक  
प्रो. रमा
- 73 महान साहित्यकार मार्टिन विक्रमसिंह  
दि. रसांगी नानायक्कार
- प्रवासी-संसार**
- 80 हिंदी कथा साहित्य के अभ्युदय में प्रवासी महिला कथाकारों का योगदान  
डॉ. प्रियदर्शिनी दुबे
- संचार-संवाद**
- 82 अटल बिहारी वाजपेयी की संचार परंपरा  
शोभित सुमन
- अर्थ-चिंतन**
- 84 चंपारण जिले के स्थानीय कृषि आधारित उद्योगों पर वैश्वीकरण का प्रभाव  
प्रो. ज्ञानतोष कुमार झा, डॉ. प्रवीण कुमार झा
- पुस्तक-समीक्षा**
- 88 दीवारें सुन रही हैं : संदेशात्मक रचनाओं का संग्रह  
डॉ. कृष्ण कुमार 'नाज'
- काव्य-मधुवन**
- 89 कर्नल परमेश चन्द्र वशिष्ठ
- 90 गरिमा सक्सेना
- 90 हितेश सिंह
- 91 पाखुरी
- 92 अखिलेश तिवारी
- 93 गतिविधियाँ आई सी सी आर



# प्रकाशकीय

## कुमार तुहिन



भौगोलिक दृष्टि से भारत विविधताओं का देश है, फिर भी सांस्कृतिक रूप से एक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व प्राचीनकाल से बना हुआ है। इस विशाल देश में उत्तर का पर्वतीय भू-भाग, जिसकी सीमा पूर्व में ब्रह्मपुत्र और पश्चिम में सिन्धु नदियों तक विस्तृत है। इसके साथ ही गंगा, यमुना, सतलुज की उपजाऊ कृषि भूमि, विन्ध्य और दक्षिण का वनों से आच्छादित पठारी भू-भाग, पश्चिम में थार का रेगिस्तान, दक्षिण का तटीय प्रदेश तथा पूर्व में असम और मेघालय का अतिवृष्टि का सुरम्य क्षेत्र सम्मिलित है। इस भौगोलिक विभिन्नता के अतिरिक्त इस देश में आर्थिक और सामाजिक भिन्नता भी पर्याप्त रूप से विद्यमान है। वस्तुतः इन भिन्नताओं के कारण ही भारत में अनेक सांस्कृतिक उपधाराएँ विकसित होकर पल्लवित और पुष्पित हुई हैं।

भारत ही केवल एक ऐसा देश है जहाँ सर्वधर्म समभाव का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है, जितनी इज्जत हम अपने धर्म की करते हैं, उतनी ही इज्जत हमें दूसरों के धर्म की भी करनी चाहिये। यहाँ सुबह-सुबह मंदिरों से मन्त्रोच्चार की ध्वनि, मस्जिदों से अजान, गुरुद्वारों से शब्द कीर्तन की आवाज और चर्च से प्रार्थना की पुकार एक साथ सुनी जा सकती है। जितनी भाषाएँ यहाँ बोली जाती हैं, विश्व में कहीं और नहीं बोली जाती। बोल-चाल, खान-पान, रहन-सहन में अनेकता होते हुए भी हम एक साथ रहते हैं, एक-दूसरे के तीज त्योहार में शिरकत करते हैं। होली, दीवाली, ईद, बारावफात, मुहर्रम, गुरुपर्व और क्रिसमस साथ-साथ मनायी जाती है। मजारों और मकबरों पर हिन्दुओं द्वारा चादर चढ़ाना और दूसरे सम्प्रदाय के लोगों का मंदिरों और गुरुद्वारों पर दर्शन करना, मत्था टेकना बहुत आम बात है। यह हमारे धर्म और लोकाचार की सहनशीलता का जीता-जागता उदाहरण है।

रही बात हमारे विभिन्न प्रकार के देवी देवता होने की, तो हिन्दू धर्म में प्रकृति को हर तरह से पूजा गया है, चाहे वह वायु, जल, पृथ्वी, अग्नि या आकाश हो। इस प्रकार से हम प्रकृति के हर रूप की पूजा करते हैं, चाहे वह पहाड़ हो या कोई जीव जन्तु या हमारी वन्य संपदा, हमारी संस्कृति में इन सबको विशेष स्थान दिया गया है। दुनिया में ऐसी कोई संस्कृति नहीं होगी जहाँ प्रकृति को विभिन्न रूपों और स्वरूपों में पूजा गया है, रही बात त्योहारों से जुड़ी कहानियों की, तो सामान्य जनता जो उपनिषदों, वेदों की लिखी गूढ़ बातों को नहीं समझ सकती, उनके लोक आचरण के लिए विभिन्न ऋषि-मुनियों ने अनेक गाथायें लिखीं और उनको विभिन्न त्योहारों से इस तरह से जोड़ा कि सामान्य जन भी उसके साथ जुड़ सके और उसे अपना सके, साथ ही ईश्वर का ध्यान और मनन कर सके।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति स्थिर एवं अद्वितीय है जिसके संरक्षण की जिम्मेदारी वर्तमान पीढ़ी पर है। इसकी उदारता तथा समन्वयवादी गुणों ने अन्य संस्कृतियों को समाहित तो किया है, किन्तु अपने अस्तित्व के मूल को सुरक्षित रखा है। एक राष्ट्र की संस्कृति उसके लोगों के दिल और आत्मा में बसती है। सर्वांगीणता, विशालता, उदारता और सहिष्णुता की दृष्टि से अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा भारतीय संस्कृति अग्रणी है।

  
कुमार तुहिन

# संपादकीय

डॉ. आशीष कंधवे  
संपादक



## लोकतांत्रिक नवाचार और नवनिर्माण

यह अटल सत्य है कि भारत हर युग में मनीषियों से सुशोभित रहा है। इन्हीं मनीषियों ने समस्त कालचक्र को चार युगों में विभक्त किया है। भारतीय मनीषियों का ध्यान मुख्य रूप से मनुष्य के जन्म, कर्म और कर्म-साधना पर केन्द्रित था। 'राजा हरिश्चन्द्र' सतयुग के प्रतीक हैं। जन्म और कर्म की उच्चता का मापदण्ड बना। 'राम' त्रेता युग के प्रतीक हैं। रामराज में जन्म और कर्म की न्याय-संगतता में कोई संदेह नहीं है पर कर्म-साधना कहीं न कहीं स्खलित दिखाई पड़ती है। बाली के वध को उदाहरणस्वरूप देखा जा सकता है। द्वापर के प्रतीक 'कृष्ण' हैं। इस युग में कर्म का औचित्य तो सुरक्षित रहा पर साधना की मर्यादा में बिखराव बहुत तेजी से हुआ। जन्म के अनुपात में कर्म का महत्व विशेष हो गया और कर्म-साधना सब निष्फल हो गए। हम सब स्वार्थी हो गए और कलयुग को चरितार्थ करने में कोई श्रम नहीं छोड़ा।

ऐसी परिस्थिति में यह सुखद आश्चर्य का विषय है कि आचार्य विजयेन्द्र स्नातक कलयुग में सतयुग की आत्मा को धारण कर हमारे बीच आए। ऐसा मैं इसलिये कह रहा हूँ कि अपने शिष्यों के अनुसार, आप जीवनपर्यन्त जन्म, कर्म और कर्म-साधना तीनों के औचित्य से न्याय करते रहे।

मनुष्य की आवधारणा को आपने हमेशा वरीयता दी। मनुष्य के भविष्य की परिकल्पना आपकी दृष्टि में मानवीय सरोकारों की ऐसी उद्भावना है जो व्यक्ति को व्यक्ति से, व्यक्ति को समाज से, व्यक्ति को लोक से, व्यक्ति को देश से यानी व्यक्ति को समष्टि से मिलाती है, जोड़ती है। पश्चिमी संस्कृति जहाँ मनुष्य की उपभोक्ता नहीं सहयात्री है। आचार्य विजयेन्द्र स्नातक इसी सिद्धांत पर चलने वाले ऐसे सहयात्री थे जिन्होंने साहित्य, समाज और भाषा के लिए अपना पूरा जीवन होम कर दिया।

स्वतंत्रता के पश्चात अत्यंत नियोजित माध्यम से भारत की मूल संस्कृति प्रवृत्ति धर्म और अध्यात्म को पाठ्यक्रमों से लेकर समाज तक से गायब करने की प्रवृत्ति बनाई गई। इस प्रवृत्ति के कारण वामपंथ जैसी विचारधारा ने अपनी पकड़ बना ली विशेषकर शैक्षणिक संस्थाओं और शैक्षणिक व्यवस्थाओं पर। इसका परिणाम यह हुआ कि हम साधारण भारतवासी अपने स्वाभिमान से दूर हो गए, अपने इतिहास से दूर हो गए, अपनी गौरवशाली ज्ञान परंपरा से दूर हो गए और अपनी सांस्कृतिक चेतना से दूर हो गए। इस नियोजन को और शक्ति तब प्राप्त हो गई जब इस देश में सेकुलरिज्म अर्थात् धर्मनिरपेक्षता नाम के शब्द का प्रयोग संवैधानिक माध्यम से किया जाने लगा। मुझे आज तक यह बात समझ नहीं आई है कि जब व्यक्ति धार्मिक होता है तो कोई भूमि या कोई भूभाग धर्मनिरपेक्ष कैसे हो सकता है।

यह धर्म ही तो था जिसकी वेदना हमें 1947 में सहनी पड़ी और एक बड़ा भूभाग भारत के हिस्से से भारत के स्वाभिमान से कटकर अलग हो गया। अर्थात् सेकुलरिज्म अपने आप में एक बड़ा संशय है, कंप्यूजन है क्योंकि जो व्यक्ति अपने घर में धार्मिक है अपने समाज में अध्यात्मिक है वह राष्ट्र के स्तर पर धर्मनिरपेक्ष कैसे हो सकता है? इस धर्मनिरपेक्षता की परिकल्पना ने भारत के बुद्धिजीवियों से लेकर भारत की साधारण जनता तक को दो हिस्सों में बांट कर रख दिया। और यही सेकुलरिज्म शब्द को संवैधानिक आवरण देने वालों का लक्ष्य था। इसी सेकुलरिज्म की ओट में अनेक ऐसी चेतनाओं का जन्म हुआ जो हमारे भारतीय संस्कार, भारतीय परंपरा, भारतीय आस्था और भारतीय उत्सव धर्मिता के लिए ठीक नहीं था। पर वोट की राजनीति ने भारतीय लोकतंत्र को एक ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया जहां एक विशेष वर्ग अपने धार्मिक उन्माद और कट्टरता के कारण स्वयं को अल्पसंख्यक श्रेणी में रखकर सभी प्रकार की राष्ट्रीय सुविधाओं का उपयोग, उपभोग

करता रहा वहीं दूसरी ओर बहुसंख्यक हिंदू समाज राजनीति का ऐसा शिकार हुई की दलित महादलित हो गया, आदिवासी महाआदिवासी हो गया और उपेक्षित हो गया। हिंदू होते हुए भी हिंदुओं ने कभी इनकी सुध नहीं ली जिसका परिणाम यह हुआ कि इस वर्ग में बहुत तेजी से धर्म परिवर्तन जैसी कुरीतियां स्वीकार हो गईं। दरअसल सेकुलरिज्म के परदे के पीछे छुपा हुआ एजेंडा भी यही था जो धीरे-धीरे संवैधानिक डंडे के माध्यम से देश पर लागू किया जा रहा था। जेएनयू से लेकर एएमयू तक और कई अनेक महत्वपूर्ण विश्वविद्यालयों ने स्वयं को इस देश का सबसे बुद्धिजीवी वर्ग घोषित कर दिया था। यही वर्ग नीति नियंता बन गया था और इसी वर्ग से निकले हुए लोग भारत के लोकतंत्र को अपने हिसाब से विश्व में लज्जित कर रहे थे। हमारी आंखों में अंग्रेजी के सपने पल रहे थे और हमारे अपने ही अपने धर्म-संस्कार और परंपराओं के विरुद्ध आग उगल रहे थे। जितना सुनियोजित और सुव्यवस्थित रूप से इस कार्य को अंजाम दिया गया यह हम सबके लिए एक शोध का विषय है।

यथार्थ में अगर हम बात करें तो 21वीं सदी का दूसरा दशक भारत के नवभारत बनने के बीच का दशक है। सन 2014 में हुए राजनीतिक परिवर्तन से अनेक वर्जनाएं टूटी हैं, अनेक विचारधाराएं धूल धूसित हो गई हैं। एक ओर राष्ट्रवाद का उदय देश के हर वर्ग में देखने को मिल रहा है वहीं दूसरी ओर भारत से भारत के लोगों का नवजुड़ाव ही नवभारत की नींव का पत्थर बनने वाला है। विकसित भारत की परिकल्पना और 2047 में स्वतंत्रता के शताब्दी वर्ष पर जो सपने देखे गए हैं और दिखाए गए हैं आज उनके बीच घटने वाली घटनाओं का आकलन करने का समय है। अमृत महोत्सव के इस काल में सत्य निष्ठा के साथ अगर राष्ट्र का आकलन किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि विगत 75 वर्षों में देश विश्व के अन्य विकसित देशों के समकक्ष खड़ा हो जाता। परंतु ऐसा नहीं हुआ या फिर स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो ऐसा होने नहीं दिया गया।

मैं यह नहीं कह सकता कि स्वतंत्रता के पश्चात राष्ट्र में विकास नहीं हुआ है परंतु विकास जिस गति से, जिस निष्पक्षता से और जिस ईमानदारी के साथ होनी चाहिए थी वह बिल्कुल नहीं हुआ है। राष्ट्रीय आवश्यकता के अनुसार विकास करना तर्क हो सकता है परंतु किसी भी राष्ट्र के भविष्य के आकलन के अनुसार उस राष्ट्र का विकास करना ही सत्य निष्ठा से राष्ट्र की सेवा है।

भारत ही नहीं किसी भी राष्ट्र की मूल संचेतना को अगर समाज में जागृत नहीं किया जाएगा तो उसका स्वाभिमान स्वतः ही समाप्त हो जाता है। भारत में तो भारतीयों के स्वाभिमान को बहुत ही योजनाबद्ध तरीके से समाप्त करने की प्रक्रिया अपनाई गई। स्वतंत्रता के पश्चात शिक्षा पद्धति इस हिसाब से विकसित की गई ताकि एक वर्ग विशेष को विशेष लाभ हो और भाषा के संदर्भ में भी ऐसी व्यवस्था की गई जिस शासक और जनता की भाषा अलग-अलग रहे।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हमारी छवि एक गरीब देश की बन गई, ऐसे देश की जहां न्यायालय में न्याय नहीं मिलता, शिक्षा व्यवस्था चरमराई हुई है, लोगों को भरपेट भोजन नहीं मिलता। ऐसा करने से एक विशेष वर्ग लंबे समय तक शासक के रूप में भारत पर राज करता रहा। अपने हिसाब से शिक्षा नीति बनाता रहा और अपने हिसाब से भारतीय संस्कृति को तोड़ता-मोड़ता रहा, भारत के गौरवशाली इतिहास को मिटाता रहा।

परंतु संपूर्ण हुए 75 वर्षों में हिंदू, हिंदुत्व, ज्ञान, गायत्री, गंगा, गीता की बात भी कहीं न कहीं जीवित रही। बहुसंख्यक समाज में ऐसे लोग थे जिन्होंने अपनी सनातन संस्कृति और सनातन ज्ञान परंपरा को बचाए रखने के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। इस श्रेणी में अनेक व्यक्तियों का भी नाम लिया जा सकता है परंतु मुख्य भूमिका राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की रही जिन्होंने अपने अथक प्रयास से भारतीय जनमानस पर अपने धर्म अध्यात्म के प्रति, राष्ट्र के प्रति और सामाजिक दायित्वों के प्रति निर्वहन की जागृति करती रही। अनेक विघ्न बाधाओं से संतुलन स्थापित करते हुए संघ ने राष्ट्रीय चेतना के निर्मित में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

नव भारत की परिकल्पना, राष्ट्रवाद का उदय और राजनीतिक व्यवस्था, राष्ट्रवाद के साथ सांस्कृतिक चेतना की अनुभूति, आदिवासी हिंदुओं से लेकर दलित हिंदुओं तक की स्थिति को समझे बिना तथा सेकुलरिज्म से दो कदम आगे की राजनीति और भविष्य में भविष्य के भारत में कमजोर पड़ते सेकुलरिज्म के भविष्य को समझे बिना देश के आत्म गौरव को बढ़ाना कठिन होगा।

भाषा संस्कृति और साहित्य के नवाचार के साथ-साथ इतिहास का नवलेखन भविष्य के लिए हमें अतीत में लौटना होगा। क्योंकि अतीत के अनुभवों में ही भविष्य की कल्पना छुपी होती है। हमारा अतीत जितना गौरवशाली है हमारा भविष्य उतना ही समृद्ध हो सकता है। शर्त बस इतनी है कि आपको अपने गौरवशाली अतीत के बारे में जानकारी हो।

आज के समय में सबसे महत्वपूर्ण है नवभारत की परिकल्पना, एक ऐसे भारत की परिकल्पना जो शैक्षणिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर आत्मनिर्भर हो जाए। कल्पना को संपूर्ण करने के लिए अनेक विचारधाराएं आपस में टकरा रही हैं परंतु जो सबसे महत्वपूर्ण है वह भारत की नई पीढ़ी के बीच में राष्ट्रबोध को जागृत करना।

नव भारत के निर्माण में लोकतंत्र के नवाचार को हमें समझना पड़ेगा। नए भारत की दिशा क्या होगी, नए भारत की दशा क्या होगी, इसका आकलन भी करना पड़ेगा और आने वाले 100 वर्षों के लिए एक योजना बनानी पड़ेगी। मैं यह समझता हूं कि नव भारत के निर्माण

में लोकतंत्र का नवाचार कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर टिका होगा।

एक और विकट समस्या जो हम सबके बीच में खड़ी है वह है आदिवासियों और दलित हिंदुओं की। दलित शब्द का प्रयोग कब से भारतीय संस्कृति में प्रचलित है इस विषय पर बात करने का कोई गंभीर औचित्य नहीं है परंतु दलित शब्द का राजनीतिक प्रयोग जिस स्तर पर किया गया है और जिस प्रकार से उन्हें भारत की मूल धारा यानी हिंदुत्व के एजेंडे से अलग किया गया है यह शोध का विषय है। ऐसी कौन सी परिस्थितियां थी जिसमें हिंदू समाज अपने लोकतांत्रिक व्यवस्था में अपने ही धर्म को मानने वाले लोगों को अलग करने का कार्य करती है।

वर्ग व्यवस्था के विस्तार से जाति व्यवस्था का जन्म हुआ। जाति व्यवस्थाओं का आधार सामान्यतः पूरे देश में व्यवसाय, आर्थिक व्यवहार ही रहा। किसी व्यवसाय विशेष या शिल्प विशेष से जुड़े परिवार धीरे-धीरे कुटुंब में और अपने कुटुंब तक संबंधी व्यवसायिक जातियों में विकसित होते चले गए। तेल का व्यवसाय करने वाले तेली कहलाए, सोने के गहने बनाने वाले सुनार, पुष्प हार बनाने वाले माली तो चर्म सामग्री के निर्माणकर्ताओं को चर्मकार कहा गया इसी प्रकार मिट्टी के कलश बनाने वाले कुम्हार, लकड़ी के सामान की निर्मिति करने वाले बढ़ई और समाज में मनुष्यों के द्वारा फैलाई गई गंदगी को निस्तारित करने वालों को डोम कहकर पुकारा गया। अर्थात् समाज में वह सभी लोग किसी न किसी विशेष शिल्प या कौशल के धनी थे जिसके कारण ही उनका नामकरण किया गया था। इसे हम विशुद्ध रूप से व्यवसायिक व्यवस्था के रूप में देख सकते हैं जबकि बीसवीं और 21वीं सदी में जब हम संचार क्रांति के युग में जी रहे हैं और वैज्ञानिक रूप से इतने समृद्ध हो चुके हैं कि पूरी दुनिया एक गांव के रूप में विकसित हो रही है, ऐसी स्थिति में भारत की समृद्ध परंपराओं का दलित अथवा वंचित के रूप में पहचान करना शर्मनाक स्थिति है। विश्व के अनेक विकसित देशों में इस प्रकार के कार्य करने वाले लोगों का सम्मान उतना ही होता है जितना विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाले एक शिक्षक अथवा एक बड़े व्यवसायी का। अर्थात् विश्व की अन्य व्यवस्थाओं ने हमारी इन व्यवस्थाओं से स्वयं को समृद्ध करने का कार्य किया है और इस व्यवस्था के जनक भारतवंशियों ने दलित और महादलित जैसे विशेषण लगाकर उन्हें समाज की मूल धारा से काटने का कार्य किया है। निश्चित रूप से इस वर्ग को स्पष्ट रूप से कहे तो इस हिंदू वर्ग को अपनी राष्ट्रीय अस्मिता, चेतना और व्यवस्था से सफलतापूर्वक जोड़ना ही लोकतंत्र का नवाचार होगा। यही स्थिति आदिवासियों के लिए भी है परंतु वह अपने कौशल या किसी विशेष ज्ञान के लिए नहीं जाने जाते थे बल्कि आदिवासियों के लिए सरल शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि प्रकृति और पर्यावरण के प्राकृतिक संरक्षक के रूप में विश्व के समस्त भूभाग पर आदिवासियों की उपस्थिति रही है और है। अर्थात् आदिवासी मनुष्यों के द्वारा निर्मित कोई वर्ग नहीं है बल्कि इस प्रकृति की नैसर्गिक चेतना को बचाए रखने के लिए जिस वर्ग की उत्पत्ति हुई है उसे हम आदिवासियों के रूप में जानते हैं। उनकी अपनी न्यायिक व्यवस्था है, उनकी अपनी सांस्कृतिक अवधारणाएं हैं और निश्चित रूप से भारत जैसे विशाल देश में आदिवासियों की भी एक समृद्ध परंपरा रही है। हमारे लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि उन्हें समस्त लोकतांत्रिक अधिकार प्रदान कर उनके सांस्कृतिक और सामाजिक विरासत को संरक्षित रखा जाए तथा उनकी मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं को भी पूर्ण किया जाए। मैं यह समझता हूं कि जब तक लोकतंत्र में बहुसंख्यक समाज की चिंता समरस भाव से नहीं की जाएगी तब तक लोकतांत्रिक नवाचार सुनने में तो अच्छा लगेगा परंतु यथार्थ के धरातल पर बहुत दूर।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में ऐसे शब्दों का प्रयोग इतने व्यापक स्तर पर किया गया कि भारत की समस्त जनता अपने मूल आधार से विचलित हो गई। यह शब्द कुछ और नहीं बल्कि सेकुलरिज्म, धर्मनिरपेक्षता है। इस शब्द के अर्थ को भारत के संदर्भ में कैसे परिभाषित किया जाए यह एक विकट समस्या है परंतु इस शब्द के पास संवैधानिक अधिकार प्राप्त है जिसके कारण एक बड़े राजनीतिक दल नहीं हिंदुओं और हिंदुत्व से संबंधित अनेक जनजातियों, बिरादरियों और परंपराओं को मानने वाले लोगों को मतिभ्रम कर दिया। भ्रम की स्थिति ऐसी उत्पन्न हुई कि हिंदुओं में खुद को तोड़ लेने की, बांट लेने की होड़ मच गई। अभी तक यह नहीं कहा जा सकता कि हिंदुओं ने स्वयं को बांटने की प्रक्रिया को बंद कर दिया है। अर्थात् यह अभी भी जारी है परंतु गति जरूर धीमी हुई है इसलिए मैं अब कह सकता हूं कि सेकुलरिज्म का पर्दा धीरे-धीरे गिर रहा है। सेकुलरिज्म भारत के लोकतंत्र में एक ऐसे नाटक की तरह उभरा और इस प्रकार से उसका मंचन किया गया कि सेकुलरिज्म के आवरण के भीतर लोग अपनी भारतीयता को ढूंढने लगे और अपने मूल सांस्कृतिक विरासत, पारिवारिक संरचना, धार्मिक आस्था, अध्यात्मिक अनुष्ठानों से एक झटके में अलग हो गए। इस नाटक में देश का कितना नुकसान हुआ है इसका आकलन सरल नहीं है परंतु अगर किसी भूल को भूल समझ कर इसे ठीक करने की दिशा में आगे बढ़ने का समय दिखाई पड़ता है तो वह वर्तमान है। अतीत में हुए भूल को वर्तमान में ही ठीक किया जा सकता है ताकि भविष्य सुरक्षित हो। वर्तमान सरकार इस बिंदु पर किस प्रकार चिंतन कर रही है इस बात से मैं अवगत नहीं हूं परंतु भारत की अस्मिता और भारत की मूल पहचान को आने वाले सदियों के लिए अगर संरक्षित करना है तो निश्चित रूप से हमें इस शब्द से भी छुटकारा पाना होगा जैसे कश्मीर से धारा 370 से हमने छुटकारा पाया है।



**डॉ. आशीष कंधवे**

मोबाइल : +91-9811184393

ई-मेल : editor.gagananchal@gmail.com



## श्रीरामचरितमानस

[ सचित्र, सटीक-मोटा टाइप ]



# 75

## आज़ादी का अमृत महोत्सव

संस्कृति-संवाद

### आजादी का अमृत महोत्सव और रामचरित मानस की राष्ट्रीय चेतना

डॉ. गरिमा जैन

“यदि विश्वामित्र चाहते तो समस्त असुर समूह को स्वयं नष्ट कर सकते थे क्योंकि जिन दिव्य अस्त्रों द्वारा राम ने असुरों का वध किया वे समस्त अस्त्र शस्त्र उन्हें विश्वामित्र द्वारा ही प्रदान किए गये थे। लेकिन उन्होंने ऐसा न करके कौशल नरेश दशरथ के पास जाकर राम और लक्ष्मण को मांगा कि वे चलकर असुरों से यज्ञ की रक्षा करें। इसके पीछे सबसे बड़ा सन्देश यही है कि राष्ट्रीयता की भावना को बलवती करने हेतु राष्ट्र की युवाशक्ति को जगाना और उसे सही दिशा प्रदान करना। विश्वामित्र आचार्य थे, शिक्षक थे, उन्होंने राम व लक्ष्मण को मांगकर यह सिद्ध किया कि किसी भी राष्ट्र का नव निर्माण वहाँ के शिक्षालयों में होता है। अतः युवा शक्ति को सही दिशा प्रदान करने हेतु उन्होंने महाराज से जाकर राम व लक्ष्मण को साथ भेजने का आग्रह किया।”

भारत वीर महापुरुषों की धरा है। वीर पुरुषों की सदवृत्तियाँ तेज और सम्मान की रक्षा के लिए हैं। त्याग और क्षमता, वीरों को ऐश्वर्यशाली बनाते हैं। वीर होने का अर्थ है परमार्थ के लिए स्वार्थ का त्याग और विश्व कल्याण के लिए तत्परता। भारत के सभी वीर सपूतों में इन महान गुणों का भण्डार था कि उनके पावन बलिदान ने 15 अगस्त 1947 की वह शुभ बेला ला दी। जब हम सबने सदियों से पशुता का प्रमाणपत्र जो अंग्रेजों द्वारा प्रदान किया गया था, उतार फेंका और मनुष्य कहलाने के पूर्ण अधिकारी बने। 15 अगस्त 1947 की तिथि भारतीय इतिहास के पन्नों पर स्वर्ण अक्षरों में अंकित हुई। भारत का जन - जन तथा कण - कण पूर्ण रूप से खुले आकाश में अपनी जीवनी शक्ति को प्राप्त करने का हकदार बना। तथा यह पावन पर्व स्वतन्त्रता और राष्ट्रप्रेम

की प्रेरणा के प्रतीक के रूप में भारत वर्ष का महापर्व बन गया।

आजादी का यह महोत्सव किसी जाति विशेष या धर्म, सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धित न होकर भारत भूमि पर निवास करने वाले प्राणि मात्र के लिए महत्वपूर्ण है। इसी लिए आजादी के 75 वर्ष पूर्ण होने के उपरान्त इसे 12 मार्च 2021 को अमृत महोत्सव घोषित किया गया और यह अमृत महोत्सव का महापर्व 75 सप्ताह तक चलेगा और 78 वें स्वतन्त्रता दिवस के पावन अवसर पर 15 अगस्त 2023 में इसका समापन होगा। इस प्रकार यह महोत्सव 75 सप्ताह तक सतत् रूप में देश में नई चेतना व नव जीवन का संचार करेगा। अपने अतीत के संरक्षण और भविष्य को उज्ज्वल बनाने की आकांक्षाएं पल्लवित करेगा तथा देश को सार्वभौमिक विकास की मुख्य धारा से जोड़ेगा तभी माननीय प्रधानमंत्री जी ने अपने उद्बोधन में कहा था “ये हमारा सौभाग्य है कि समय ने, देश ने इस अमृत महोत्सव को साकार करने की जिम्मेदारी हम सब को दी है। एक तरह से ये प्रयास है कि जैसे आजादी के 75 साल का ये प्रयोजन, आजादी का ये अमृत महोत्सव, भारत के जन - जन का, भारत के हर मन का पर्व बने।”

अतः आजादी का यह अमृत महोत्सव उच्च राष्ट्रीय मूल्यों का पोशक बनकर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सुख शांति के लिए मील का पत्थर साबित होगा। भारत पुनः एक बार सम्पूर्ण विश्व में अपना परचम लहरायेगा क्योंकि किसी भी राष्ट्र की इमारत को गगनचुम्बी बनाने का कार्य वहाँ के नागरिकों के हाथों में होता है। अतः राष्ट्रीयता की भावना जितनी बलवती होगी राष्ट्र उतनी बुलन्दियों को छुएगा। राष्ट्र शब्द अत्यन्त व्यापक है। राष्ट्र एक ऐसा मानवीय समुदाय है जो भाषायी आधार पर तो एक होता ही है, यह सांस्कृतिक विरासत, नीति नियम, धर्म तथा धार्मिक कार्य कलाप, परम्पराएं और भौगोलिक दशाएं भी प्रायः समान रहती हैं और इन सबको सहेज कर एकता स्थापित करने

का कार्य राष्ट्रीयता का है क्योंकि राष्ट्र निर्माण का मूल बिन्दु राष्ट्र के नागरिकों में एकता की भावना विकसित होना है। “राष्ट्र निर्माण का तात्पर्य ऐसी जागरूक प्रक्रिया से है, जिसके अंतर्गत किसी राष्ट्र के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों व समुदायों में एकीकरण करके राष्ट्रीय पहचान को सुनिश्चित किया जाता है। ताकि एकीकृत समुदाय के रूप में राष्ट्र के विकास को गति प्राप्त हो सके।<sup>2</sup> अतः राष्ट्रीय चेतना नागरिकों में स्वतन्त्रता, भ्रातृत्व, समानता, राष्ट्र के प्रति कर्तव्य निष्ठा जगाने के साथ-साथ उन्हें एकता के धागे में पिरोती है। साहित्य सदैव ही समाज और राष्ट्र के लिए पथप्रदर्शक के रूप में रहा है, मानस इसका अनुपम उदाहरण है।

राष्ट्रीय चेतना के विकास में गोस्वामी तुलसीदास का अविस्मरणीय स्थान है। तुलसी अपने समय के महान पुरुष और युग निर्माता थे। उन्होंने विजातीय शासन काल में, भारत में राष्ट्रीय चेतना और आत्म शक्ति जगाने का कार्य किया। तुलसी भारत की सर्वतोन्मुखी उन्नति चाहते थे, सभी को श्रेष्ठ व सुखी देखना चाहते थे अतः आदर्श समाज की स्थापना के लिए उन्होंने श्रीरामचरित मानस जैसे ग्रन्थ का प्रणयन किया। उनका मानना था कि साहित्य ही ऐसा साधन है जो मानव एकता एवं समानता का संदेश प्रदान कर सकने में सक्षम है। इसलिए उन्होंने मानस में सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक चेतना के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना के दिव्य भाव भरे हैं।

सभी के लिए प्रेम, सभी का सम्मान और सभी के साथ बिना पक्षपात के व्यवहार राष्ट्रीयता के विकास की पहली सीढ़ी है क्योंकि हमारा आपस में जितना संगठन होगा राष्ट्रीयता उतनी ही मजबूत और राष्ट्र के प्रति उच्च समर्पण भाव रखने वाली होगी। तभी तो संविधान के भाग तीन में अनुच्छेद 14 से 18 तक समानता का अधिकार प्रदान किया गया है। तुलसी इस समानता की उद्धोषणा पहले ही करते हैं

सियाराम मय सब जग जानी

करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी<sup>3</sup>

विजातीय शासन में जब समाज के सभी वर्गों को एक करने के लिए मौलिक एकता की आवश्यकता थी क्योंकि यही राष्ट्रीयता का मूलाधार है। यही हमारे और मातृभूमि के सम्बन्ध को और अधिक दृढ़ करती है। अतः तुलसी ने इस एकता को प्रसारित करने के उद्देश्य से मानस के प्रारम्भ में जाति शब्द का प्रयोग करते हुए लिखा -

जदपि कठिन जाति दुःख नाना

सबते कठिन जाति अपमाना<sup>4</sup>

यहाँ जाति शब्द आधुनिक अर्थ में जाति सूचक न होकर विजातीय शासन में सम्पूर्ण भारतीयता का सूचक है। वहाँ तुलसी यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पद दलित होना सम्पूर्ण भारत एवं भारत माता की प्रतिष्ठा का प्रश्न है अतः सब को जागरूक होकर पतन के कगार पर पहुँच रही राष्ट्रीयता को बचाना ही होगा। अतः जाति शब्द भारतवासियों को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए प्रस्तुत हुआ है।

वास्तव में आज भी हम स्वतन्त्रता का तात्पर्य उसका महत्व और उसकी उपयोगिता नहीं जान पाए हैं। आज के परिवेश में लोग स्वतन्त्रता का तात्पर्य अपनी इच्छानुसार कार्य करने को मानते हैं। इसी कारण राष्ट्रीय भावना कमजोर होती है क्योंकि राष्ट्र तभी सबल बनेगा जब हम जियो और जीने दो का सिद्धान्त अपनाएंगे, निष्काम भाव रखेंगे अर्थात् अपना ख्याल कम, दूसरे का अधिक यह संकल्प दोहराएंगे, आपसी द्वेष और कलह राष्ट्रीयता के लिए सबसे बड़ा खतरा है। मानस में इस बिन्दु को बहुत गहराई से सोचा गया और राष्ट्रीय भावों को गति देने के लिए राम द्वारा सभी ऐसे कार्य किए जा रहे हैं जिनसे पुरवासी दुःखी न हों। यहाँ पुर के लोगों से संकेत किया गया है कि प्रत्येक नागरिक का दायित्व है कि वह सर्वजन हिताय का दृष्टिकोण अपनाएं -

जाहे विधि सुखी होंहि पुर लोगा।

करहि कृपा निधि सोइ संयोगा। (5)

हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि उत्साह, स्फूर्ति, कर्मठता, कुछ नव निर्माण की भावना, आत्म विश्वास, निर्भयता साहस आदि गुण राष्ट्रीयता को और अधिक पल्लवित करने के लिए आवश्यक हैं। आज सत्ताधारी राजनीतिज्ञों द्वारा जहाँ एक ओर क्षेत्रवाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद, भाषावाद एवं संकुचित भावनाओं को फैलाकर राष्ट्रीय चेतना को न्यून किया जा रहा है वहीं आतंकवाद, माओवाद, उग्रवाद, नक्सलवाद जैसे असुर मानव समाज को निगल जाने के लिए आतुर हैं। इन सबका मूल कारण है राष्ट्र के प्रति बुद्धिजीवी वर्ग की उदासीनता। जब तक बुद्धिजीवी वर्ग राष्ट्रीय चेतना के विकास हेतु आत्म चिन्तन नहीं करेगा तब तक इसी प्रकार की अमानवीय घटनाएं समाज व राष्ट्र को खोखला करती रहेगी और राष्ट्रीयता को भी निर्मूल करने का भरसक प्रयास करती रहेगी। समकालीन संस्कृति में सबसे प्रबुद्ध वर्ग में ऋषि मुनि आते थे लेकिन उनका कार्य वर्तमान के सन्त महात्माओं जैसा नहीं था। जो केवल आत्म चिन्तन का स्वांग रचें और राष्ट्र के विषय में सोचना अपना दायित्व न समझें उस समय भी भारतीय राष्ट्रीयता को

कमजोर करने के विविध उपाय किये जा रहे थे। वर्तमान आतंकवाद की तरह मारीच, सुबाहु, खर, दूषण, त्रिसरा, ताड़का जैसे लोग यथासम्भव मानवीय मूल्यों को मिटाने के लिए प्रयासरत थे। अपनी वामाचारी क्रियाओं द्वारा राष्ट्र को क्षति पहुँचाने के लिए उद्योगशील थे। उसी समय बुद्धिजीवी वर्ग जाग्रत हुआ और अपने दायित्व को समझा कि उन्हें क्या करना चाहिए। समस्त बुद्धिजीवी वर्ग के प्रतीक के रूप में विश्वामित्र ने क्रूर राक्षसों से समाज को मुक्ति दिलाने का जो संकल्प लिया वह आधुनिक समाज के लिए वृहद् सन्देश है, राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिए सबको आना है -

गाधि तनय मन चिंता व्यापी।

हरि बिनु मरहि न निसिचर पापी॥<sup>6</sup>

यदि विश्वामित्र चाहते तो समस्त असुर समूह को स्वयं नष्ट कर सकते थे क्योंकि जिन दिव्य अस्त्रों द्वारा राम ने असुरों का वध किया वे समस्त अस्त्र शस्त्र उन्हें विश्वामित्र द्वारा ही प्रदान किए गये थे। लेकिन उन्होंने ऐसा न करके कौशल नरेश दशरथ के पास जाकर राम और लक्ष्मण को मांगा कि वे चलकर असुरों से यज्ञ की रक्षा करें। इसके पीछे सबसे बड़ा सन्देश यही है कि राष्ट्रीयता की भावना को बलवती करने हेतु राष्ट्र की युवाशक्ति को जगाना और उसे सही दिशा प्रदान करना। विश्वामित्र आचार्य थे, शिक्षक थे, उन्होंने राम व लक्ष्मण को मांगकर यह सिद्ध किया कि किसी भी राष्ट्र का नव निर्माण वहाँ के शिक्षालयों में होता है। अतः युवा शक्ति को सही दिशा प्रदान करने हेतु उन्होंने महाराज से जाकर राम व लक्ष्मण को साथ भेजने का आग्रह किया -

असुर समूह सतावहिं मोहि।

मैं जाँचन आयउँ नृप तोहीं॥

अनुज समेत देहु रघुनाथा।

निसिचर बध मैं होब सनाथा॥<sup>7</sup>

राष्ट्रीय चेतना की धारा सतत् प्रवाहमान रहे इसलिए हमारा परम कर्तव्य है कि हम सब ऐसा रास्ता खोजें जिससे हमारा युवा वर्ग हताशा, दीनता, आक्रोश एवं आक्रामकता की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से उबर सकें और अपनी उर्जा का सदुपयोग कर सकें। हमारे भारतीय समाज में संस्कारों का विशेष महत्व है। हमारे इन संस्कारों में अपने देश के प्रति सच्चा अनुराग रखना भी एक महान संस्कार है। जैसे सामाजिक जीवन के संस्कार हमारे जीवन के क्रमागत विकास को तो व्यंजित करते ही हैं, साथ ही हमारे समाज की सुव्यवस्था की ओर भी इंगित करते हैं, उसी प्रकार स्वेदशानुराग भी हमारे राष्ट्र के प्रति समर्पण भावना को

व्यक्त करता है। राष्ट्र की उन्नति को अपनी उन्नति, राष्ट्र के सम्मान को अपना सम्मान, राष्ट्र के अपमान को अपना समझता है। मानसकार ने बालकाण्ड में सीता स्वयंवर के अवसर पर इस भाव को अत्यन्त मनोरम ढंग से प्रस्तुत किया। महाराज जनक द्वारा यह खेद प्रकट करना कि समस्त राजागण अपने-अपने राज्यों को वापस लौट जाएँ क्योंकि, अब सबका पराक्रम मैने देख लिया, इतना सुनते ही लक्ष्मण द्वारा रोष प्रकट किया गया। यहाँ इस प्रसंग का केवल यही संकेत है कि जनक द्वारा कहा गया वाक्य न केवल राजा के व्यक्तिगत पुरुषत्व पर प्रश्न चिन्ह लगा रहा था बल्कि इसमें उस राज्य या राष्ट्र की प्रतिष्ठा को भी दाँव पर लगा रहा था, जहाँ का मूल निवासी था, अतः सच्चा नागरिक अपने मान-सम्मान को अपने हानि-लाभ, उत्थान-पतन को अपने देश से जोड़कर देखता है। वह अपना बलिदान देकर राष्ट्र के गौरव को सुरक्षित रखना चाहता है और अपने विशिष्ट कार्यों द्वारा देश का नाम रोशन करना चाहता है।

अतः लक्ष्मण द्वारा रोष प्रकट करना स्वाभाविक था। जो राष्ट्र के प्रति सच्ची निष्ठा प्रदर्शित कर रहा था। उन्होंने भरे दरबार में घोषणा कर दी -

रघुबंसिंह मुहुँ जहँ कोउ होई

तेहि समाज अस कहइ न कोई

कही जनक असि अनुचित बानी

विद्यमान रघुकुल मनि जानी॥<sup>8</sup>

प्राचीन भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। वहाँ राष्ट्र सम्मान में अपना सर्वस्व त्याग की बात कही गयी है -

तजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।

ग्राम जनपदस्यार्थे स्वात्यार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥<sup>9</sup>

अपना मान-सम्मान खोकर राष्ट्र के गौरव को बढ़ाया जा सकता है तो हमें पीछे नहीं हटना है। मानस के सुन्दरकाण्ड में सीता की खोज में लंका गए हनुमान को मेघनाद द्वारा बांध कर दरबार में उपस्थित किया गया, जहाँ उन्होंने अपने मान-प्रतिष्ठा की चिन्ता किए बिना समूचे भारतवर्ष का नेतृत्व करते हुए रावण से भयभीत नहीं हुए। उन्हें दण्ड देने के उद्देश्य से रावण ने उनकी पूँछ जलाने की आज्ञा दी। जब उन्हें बाँधकर लंका की गलियों में घुमाया गया तो उन्हें कोई ग्लानि प्रकट नहीं की वे कहते हैं-

मोहिं न कछु बाँधे कटू लाजा।

कीन्ह चाहौं निज प्रभु कर काजा॥<sup>10</sup>

यहाँ यही सन्देश निहित है कि हम विश्व में वही जाएं हमेशा वही करने का प्रयास करें जिससे देश का मस्तक गर्व से ऊँचा हो। हनुमान को अपने बाँधे जाने या उपहास किए जाने का शोक क्यों नहीं है क्योंकि उन्होंने लक्ष्य पूर्ति में साधन कैसे भी हों यह नहीं बल्कि लक्ष्य की पूर्ति हो यह देखना चाहिए का संदेश दिया है। इसी राष्ट्र प्रेम का परिचय देते हुए उन्होंने भारत की यश पताका को ऊँचा उठाया और देश के अपमान का प्रतिशोध उन्होंने लंका को जलाकर लिया।

राष्ट्रीय चेतना की सर्वोच्च स्थिति का दूसरा नाम है उस समाज और राष्ट्र में नारी का सम्मान क्योंकि अतीत की प्रेरणा हमारे विकास का मूल तत्व है। अतीत के आँचल में ही इतिहास छुपा रहता है। यदि हम गहनता से इस बिन्दु पर विचार करें तो पाएँगे कि किसी भी देश के मानव समाज का इतिहास वास्तव में नारी का ही इतिहास होता है। नारी के बिना किसी देश या समाज की कल्पना नहीं की जा सकती, नारी पुरुष के साथ दूध व पानी की भाँति इस तरह मिले हुए हैं कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों ही समाज की आधारशिला है, दोनों की भागीदारी स्वस्थ समाज के लिए आवश्यक है। अतः नारी का सम्मान और उसकी सुरक्षा प्रत्येक देश व समाज की प्रथम वरीयता होनी चाहिए। तुलसी ने इस मुद्दे पर खुलकर बात की और न केवल मानव अपितु पशु पक्षियों के अन्दर भी मानव की तरह महिला सम्मान और सुरक्षा का मान जागृत किया। सीता का अपहरण कर लिए जा रहे रावण से जटायु युद्ध के लिए प्रस्तुत हुआ और वह अपने प्राण गँवाकर यह सीख दे गया कि स्त्री सम्मान और सुरक्षा राष्ट्र प्रेम की धुरी है।

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा  
करिहउँ जातु धान कर नासा  
चोचन्ह मारि विदारिसि देही  
दंड एक भइ मुरूछा तेही।<sup>11</sup>

हम विश्व में कहीं चले जाएं पर हमें अपनी मातृभूमि से अतुलनीय लगाव रहता है। जन्म भूमि को स्वर्ग की आभा से बढ़कर कहा गया है। श्रीराम स्वयं कहते हैं -

जदपि सब बैकुण्ठ बखाना  
वेद पुरान विदित जग जाना  
अवध सरिस मोंहि प्रिय नहिं सोऊ  
यह प्रसंग जानइ कोऊ-कोऊ ॥<sup>12</sup>

इस प्रकार निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि तुलसी ने राष्ट्रीय

चेतना के सभी अंगों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। यहाँ तो उसका अल्पांश ही प्रस्तुत किया जा सका है। वे श्रेष्ठ चिन्तक, विचारक और मार्गदर्शक थे। उन्होंने अपने युग की विकृत राजनीति और सामाजिक व्यवस्था को भोगा था। परिणामतः उन्हें भविष्य के लिए कुछ कहना था और वह कहना था जिससे जन कल्याण हो सके। तुलसी युगद्रष्टा थे और द्रष्टा जो कहता है वह कल्याण की भावना से ही कहता है। उसका कितना पालन होता है। यह अलग बात है। तुलसी की मान्यताएं आज भी प्रासंगिक हैं और सब काल में रहेंगीं। आज की स्थितियों में जहाँ घुटन, कुण्ठा, विसंगतियाँ, विषमताएं, मूल्यहीनता चारों ओर व्याप्त है, जिसका प्रभाव, परिणाम हमें घुन की तरह खाए जा रहा है। तुलसी का मार्गदर्शन अत्यन्त उपयोगी और लाभदायक है। उन्होंने पर्याप्त लिखा है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए लिखा है। उनकी राष्ट्रीय चेतना सराहनीय है।

#### सन्दर्भ सूची

1. प्रधानमंत्री माननीय नरेन्द्र मोदी जी का भाषण अंश
2. डॉ. पुखराज जैन, नागरिक शास्त्र, साहित्य भवन प्रकाशन - 2019, पृष्ठ - 157, औद्योगिक क्षेत्र - आगरा
3. श्री रामचरितमानस - गीता प्रेस गोरखपुर, मूल मझला साइज, पृष्ठ - 22
4. श्री रामचरितमानस - गीता प्रेस गोरखपुर, मझला साइज, पृष्ठ - 39
5. श्री रामचरितमानस - गीता प्रेस गोरखपुर, मूल मझला साइज बालकाण्ड, पृष्ठ - 110
6. श्री रामचरितमानस - गीता प्रेस गोरखपुर, मूल मझला साइज बालकाण्ड, पृष्ठ - 111
7. श्री रामचरितमानस - गीता प्रेस गोरखपुर, मूल मझला साइज बालकाण्ड, पृष्ठ - 111
8. श्री रामचरितमानस - गीता प्रेस गोरखपुर, मूल मझला साइज बालकाण्ड, पृष्ठ - 130
9. नारायण पण्डित, हितोपदेश, ग्रन्थम प्रकाश कानपुर, पृष्ठ - 49
10. श्री रामचरितमानस - गीता प्रेस गोरखपुर, मूल मझला साइज सुन्दरकाण्ड, पृष्ठ - 379
11. श्री रामचरितमानस - गीता प्रेस गोरखपुर, मूल मझला साइज, पृष्ठ - 339
12. श्री रामचरितमानस - गीता प्रेस गोरखपुर, मूल मझला साइज, पेज - 417



एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग अरमापुर पी.जी. कॉलेज कानपुर, उत्तर प्रदेश  
ईटी-34, अरमापुर इस्टेट, कल्पी रोड, कानपुर, उत्तर प्रदेश 208009  
मो -9935057642

## नर्मदा घाटी का अवगाहन: सामाजिक समरसता के संदर्भ में

आचार्य राघवेंद्र दास

“नर्मदा प्रदक्षिणा या यात्रा करने वालों के लिए शूलपाणि की झाड़ी औत्सुक्य भरा है और कुछ अर्थों में भयावह भी। एक कहावत प्रसिद्ध है कि नर्मदा प्रदक्षिणा त्यागी तपस्वियों के लिये है जो सामान्य तौर पर गृहस्थ आश्रम त्याग चुके हैं। इस प्रदक्षिणा का मुख्य परीक्षण काल झाड़ी से यात्रा करने के क्रम में होता है। अनुभवी जन कहते हैं यदि आप नार्मदीय भील क्षेत्र शूलपाणि में होते किसी प्रकार की संग्रह बुद्धि से ग्रसित हैं तो आपके शरीर पर वस्त्र छोड़ सब कुछ ले लिया जाएगा; इसका एक मात्र कारण कि यदि आप प्रदक्षिणा कर रहे तो तृतीया भाव में रहें। सामान्य तौर पर देखने से यह दस्युओं जैसा व्यवहार लग सकता है पर यह तो एक समाज सुव्यवस्थित करने का तरीका भी हो सकता है। आप जिस आश्रम या व्रत में हो; उसका पालन करें। मुझे लगता है आज तक नार्मदीय भील आदर के ही पात्र रहे प्रदक्षिणा व्रतियों के लिये।”

नर्मदा एक असाधारण नदी है, यह केवल भौगोलिक दृष्टि से ही नहीं सामाजिक दृष्टि से भी है। नर्मदा न केवल कठोर चट्टानों को ही शमित कर अपने प्रवाह को अग्रसारित किया अपितु सामाजिक रूढ़ता को भी उपशमित किया। मैंने नर्मदा के उपत्याकाओं का अवगाहन किया और यायावर होने के कारण अन्यत्र भी भ्रमण किया हूँ। सामाजिक समरसता की ज़मीनी सत्यता से भी अवगत हूँ।

एकमात्र ऐसी नदी हैं जिनकी प्रदक्षिणा अधिकाधिक जन करते हैं; जिनकी संख्या अन्य नदियों के प्रदक्षिणा व्रतियों से हजार गुना अधिक होगी। तीन माह से जीवन पर्यंत प्रदक्षिणा करने वाले श्रद्धालु मिल जाएँगे। नर्मदा ने अपने उपत्यका निवासियों में समरसता का प्रवाह किया

है। इसके कारण में मनीषियों का लम्बे अवधि तक का प्रवास हो सकता है। जिन्होंने सामाजिक समरसता की चेतना से सींचा। जहां दशनामी-वैष्णव-शाक्त-कौल-कापालिक का कोई भेद नहीं, सभी एक पंक्ति में हैं। किसी भी प्रदेश का नागरिक हो, परस्पर आत्मीयता और स्नेह नर्मदा की गोद में द्रष्टव्य है। इतनी परस्परता हिमालय के क्षेत्रों भी में नहीं है।

वनवासी बंधुओं को अंत्यज की श्रेणी में रखने वाले समाज शास्त्रियों के लिए तो यह उपत्यका दर्पण जैसा है; जो आज भी प्राचीन भारतीय सामाजिक एकता और मर्यादा के ध्वज को आकाश में लहरा रहा है। आज भी “गोंड” बंधुओं को ठाकुर कहा जाता है और पारम्परिक रूप से गाँव के चौधरी के रूप में मान्यता है। पौरौहित्य का कर्म करने ठीक उत्तरभारत के विभिन्न क्षेत्रों की तरह ब्राह्मण पुरोहित आते हैं और विधिवत कर्मकांड सम्पन्न होता है। विभिन्न स्मृति ग्रंथों में संस्कारों की संख्या भिन्न-भिन्न है, उसका भी प्रतिफलन यहाँ आंशिक रूप से दिखता है।

प्राचीन और पारम्परिक संप्रदायों के मठों के स्वामियों में भी जनजातीय जन हैं, ऐसा नहीं कि यह केवल प्रतीकात्मक है। पौराणिक स्थल लिखनी, लोक में कथा प्रचलित है कि मार्कण्डेय ऋषि ने अपना लेखन यहीं से प्रारम्भ किया था। यह शोध का विषय है कि इस परिघटना और वर्तमान लिखनी का क्या संबंध है? देवगाँव संगम प्रभृति स्थानों के परमाध्यक्ष भी गोंड समुदाय से हैं। नर्मदा-बुढ़नेर संगम जो देवगाँव संगम से उपाख्यायित है; वहाँ के प्रमुख सेवाश्रम के स्वामी भी जनजाति ही हैं और रामानन्द सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं।

आचार्य रामानन्द के भक्ति प्रस्थान का प्रभाव उनके अनुयायी संन्यासियों के कारण जनमानस पर है। शैव-शाक्त अनुयायी भी हैं पर उनकी संख्या कम है। किसी सम्प्रदाय से बिना जुड़े केवल नर्मदा को

ही सर्वेश्रवा मानने वालों विरक्त संतों की भी संख्या कोई कम नहीं। अनुमानतः सत्तर प्रतिशत सेवाश्रमों की व्यवस्था करने वाले स्वामी प्रदक्षिणा उपरांत बिना किसी सम्प्रदाय से दीक्षित हुए हैं।

यह नर्मदा का वैशिष्ट्य है। तीर्थों में इससे भिन्न व्यवस्था है। वहाँ अधिकांशतः मठों का सम्बंध किसी न किसी प्रवर्तक से है। यहाँ नर्मदा प्रत्यक्ष प्रवर्तक है; ऐसा नहीं की नर्मदा को प्रत्यक्ष प्रवर्तक मानने वालों का अन्यो से कोई सामाजिक या धार्मिक विरोध हो। उनके लिए नर्मदा जगजननी है। वह सृष्टि-पालन-संहार नियंता है। वह विभिन्न रूप और अवतारों वाली हैं।

ऐतिहासिक रूप से यह क्षेत्र गोंडवाना था। गोंडो का प्रभाव वाला क्षेत्र। गोंड और नर्मदा का अन्योन्याश्रय संबंध है। नर्मदा उनकी सभ्यता-संस्कृति और जीवनरेखा है। गोंडबड़ादेव या लिंगदेव को शिवरूप ही मानते हैं। लोक कथाओं में गोंड आदिवासियों के आदिपुरुष पारी कुपार लिंगो हैं और उनके अनुयायियों की संख्या तैतीस कोटि। गोंड राजाओं द्वारा शिवालयों का भव्य निर्माण नार्मदीय क्षेत्र में यत्र-तत्र खूब हुआ है। इससे यह स्पष्ट है कि यह समुदाय नर्मदा-शिवोपासक है। लिंगदेव के रूप में भी शिव को ही मानते हैं। शिव-शक्ति उपासना का एक एक लोकीय स्वरूप।



नर्मदा उद्गम स्थल के समीप ही नर्मदा विश्राम स्थल की महंत गोंड समुदायोत्पन्न हैं और महिला हैं। दशनामियों का प्रसिद्ध अखाड़ा जूना अखाड़ा की महिला नागा भी हैं। नर्मदा क्षेत्र में महिला साध्वियों की संख्या अच्छी खासी है। यह केवल मठ और देवालयों की व्यवस्था में सहायिका के रूप में ही नहीं है स्वामी के रूप में भी है।

सहस्रधारा (मंडला) के तट पर मंडला सदर से लगभग पंद्रह किलोमीटर दूर दक्षिण तट पर शील पुर नामक गाँव है। यहाँ उदासी (श्री गुरु चंद्रदेव) परम्परा की साध्वी ने एक नवीन आश्रम की स्थापना की है। वह भी जनजाति समाज से ही सम्बद्ध हैं।

अमरकण्टक से खम्भात की खाड़ी तक ऐसे संतों-महंतों की संख्या खूब है। यदि सूचीबद्ध किया जाये तो लगभग तीन सौ से अधिक मठ-मंदिर और आश्रमों का प्रबंधन इन लोगों के हाथ में है। जहाँ पश्चिमी विधा से प्रभावित समाजशास्त्री भारतीय समाज के बनावट और स्थितियों पर विभिन्न प्रकार की टिप्पणी करते हैं जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह किसी कमरे में किताबों और आँकड़ों को ही ध्यान में रखकर और पूर्वाग्रह पूर्ण है।

डिंडौरी सदर से लगभग नर्मदा तट से चलने पर सत्तर किलोमीटर की दूरी पर मरवारी घाट है। यहाँ दो सेवाश्रम हैं एक नया बना है और एक पुराना है। दोनों आश्रमों की व्यवस्था व्यक्तिगत तौर पर आदिवासी

समुदाय के लोग ही करते हैं। उनका स्नेह और आतिथ्य स्तुत्य है। सभ्यता की दृष्टि से उन्हें पिछड़ा कहा जा सकता है पर सांस्कृतिक दृष्टि से वे सुसंस्कृत हैं।

नर्मदा के दक्षिण और उत्तर तट पर ऐसे व्रतधारियों के कारण भी नर्मदा प्रदक्षिणा में लोगों की अभिरुचि बनी रही है। तकनीक और प्रौद्योगिकी के युग में इस तरह का एकांतिक यात्रा और यात्रियों की संख्या भी कोई कम नहीं, यह आश्चर्यजनक है।

यद्यपि कौरव क्षत्रिय भिंड-मुरैना क्षेत्र में भी हैं पर इतनी संख्या में नहीं। नर्मदा क्षेत्र के नरसिंहपुर-होसंगाबाद में इनकी संख्या अधिकाधिक है, इन दो जिलों में बहुसंख्यक हैं। कृषि कार्य में निष्णात और गाँव-गाँव रामायण का पारायण का अद्भुत दृश्य आपको अवध-मिथिला में भी नहीं मिलेगा। भव्य और मर्यादित धार्मिक आयोजन, एक व्यक्ति चौपाई गए गायेगा और एक अर्थ। रामचरितमानस के प्रसंग पारायण के पश्चात अन्य ग्रामवासी अपने गाँव में अगले सप्ताह आयोजन के लिये नटी उठाएँगे अर्थात् संकल्पित होंगे, जिसके प्रतीक स्वरूप नारियल के ऊपरी खोल में बूंदी और मूड़ी का प्रसादा चौपाई गायन व अर्थ वाचन ग्रामीण ही करते हैं। सामान्य तौर पर उत्तर भारत में इस तरह की संख्या किसी धार्मिक गतिविधि में प्रत्येक सप्ताह लगातार इतनी संख्या

वाचकों-श्रोताओं का तन्मयता के साथ मैंने तो नहीं देखा है। यह नर्मदा का सामाजिक सौंदर्य है।

नर्मदा प्रदक्षिणा या यात्रा करने वालों के लिए शूलपाणि की झाड़ी औत्सुक्य भरा है और कुछ अर्थों में भयावह भी। एक कहावत प्रसिद्ध है कि नर्मदा प्रदक्षिणा त्यागी तपस्वियों के लिये है जो सामान्य तौर पर गृहस्थ आश्रम त्याग चुके हैं। इस प्रदक्षिणा का मुख्य परीक्षण काल झाड़ी से यात्रा करने के क्रम में होता है। अनुभवी जन कहते हैं यदि आप नार्मदीय भील क्षेत्र शूलपाणि में होते किसी प्रकार की संग्रह बुद्धि से ग्रसित हैं तो आपके शरीर पर वस्त्र छोड़ सब कुछ ले लिया जाएगा; इसका एक मात्र कारण कि यदि आप प्रदक्षिणा कर रहे तो तृतीया भाव में रहें। सामान्य तौर पर देखने से यह दस्युओं जैसा व्यवहार लग सकता है पर यह तो एक समाज सुव्यवस्थित करने का तरीका भी हो सकता है। आप जिस आश्रम या व्रत में हो; उसका पालन करें। मुझे लगता है आज तक नार्मदीय भील आदर के ही पात्र रहे प्रदक्षिणा व्रतियों के लिये। प्रदक्षिणा व्रती अपनी साधना की परीक्षा मानते हैं। कई महात्माओं के साथ सुखद संस्मरण रहे हैं जो कालांतर में बड़े आध्यात्मिक नायक हुए।

‘भाटी देव’ और ‘भीलट देव’ उनके नाग-देवता हैं। ‘बाबा देव’ उनके ग्राम देवता हैं। करकुलिया देव उनके फसल देवता हैं, गोपाल देव उनके देहाती देवता हैं, बाग देव उनके शेर भगवान हैं, भैरव देव उनके कुत्ते भगवान हैं। उनके कुछ अन्य देवता हैं इंद्र देव, बड़ा देव, महादेव, तेजाजी, लोथा माई, टेकमा, ओर्का चिचमा और काजल देव प्रभृति को अपना आराध्य मानने वाला भील समुदाय सांस्कृतिक रूप से सुसंस्कृत है।

पिछले बीस वर्षों से भीलों द्वारा परिक्रमावासियों की परीक्षा लेने वाली घटना में कमी हुई है; इसका मुख्य कारण सरदार सरोवर बांध का निर्माण है। अब यह समुदाय नर्मदा परिक्रमावासियों के लिए सेवा-सुश्रुषा आश्रम चला रहा और मुख्यधारा से जुड़ गया है। आध्यात्मिक रूप से नर्मदा परिक्रमा में भीलों द्वारा परीक्षण का अपना महत्व है।

नर्मदा की प्रदक्षिणा के लिए भी किसी प्रकार की कोई वर्ण या जाति का बंधन नहीं है कि इसे यह समुदाय कर सकता और यह नहीं। यहाँ तक कि इस्लाम से सम्बन्धित जन भी आस्था पूर्वक प्रदक्षिणा करते हैं। यदि यह कार्य अन्य तीर्थ या देवता के समीप हो तो किसी की आपत्ति हो सकती है पर नर्मदा ने तो अपनी गोद में सबको समेटा है।

पुराणेतिहास के ग्रंथों में नर्मदा क्षेत्र ने अन्य स्थान से बहिष्कृत लोगों को सम्मान दिया है। उनके अभियानों को सफल करने की ऊर्जा दी है, और एक भिन्न सभ्यता का जन्म दिया है। संभवतः उसी का यह परिणाम है की सांस्कृतिक संक्रमण के काल में भी नर्मदा ने अपनी समरसता को सुरक्षित रखा है अन्य भारतीय क्षेत्रों के बरक्सा।

आज भी नर्मदा के तट पर ऐसे साधु-संतों और आश्रम संचालक जनों की ऐसी संख्या अधिक है, जिन्हें शेष भारत में अपने व्यक्तित्व का पर्याप्त सम्मान न मिला। वे ऐसा मानते भी हैं कि नर्मदा ने हमको आत्मसात् किया और यथोचित सम्मान उपलब्ध करवाया।

कबीरपंथी लोग पारंपरिक पूजा पद्धति की आलोचना करते हैं, और उनकी अपनी एक पद्धति है। कबीर पंथियों की संख्या भी नर्मदा के उद्गम के समीप और लगभग तीन-चार सौ किलोमीटर तक कोई कम नहीं है। तमाम वैचारिक अवरोधों के बाद कबीरपंथी नर्मदा में अगाध श्रद्धा रखते हैं। नर्मदा केवल एक जल प्रवाह नहीं है सामाजिक-सांस्कृतिक विभिन्नता के एक-एक मनके को एक धागा में क्रमबद्ध कर माला बनाती है।

भारत में धार्मिक विरक्त नायकों से जुड़ी भी बहुत सी जातियाँ हैं, कबीर पंथी, वैरागी, झारियाँ, तेरहपंथी प्रभृति। नर्मदा तट पर ऐसे समुदायों की पर्याप्त संख्या है। इन सब में एक सामान्य बात है नर्मदा उपासना। नदियाँ सांस्कृतिक एकात्मता को सिद्ध करती हैं, यह निर्विवाद सत्य है; पर नर्मदा का योगदान सांस्कृतिक एकात्मकता में कुछ अधिक ही है।

भारतीय एकता और समरसता की अग्रनायिका नर्मदा हैं। परंपरा-पद्धति की विभिन्नताओं के बाद भी समरसता की एकात्मता यहाँ निहित है। भारत का आध्यात्मिक और सामाजिक अध्ययन की वास्तविक परिपूर्णता नर्मदा घाटी के अवगाहन के पश्चात ही पूर्ण हो सकता है।

नदियों की प्रदक्षिणा या क्रमबद्ध यात्रा का अपना महत्व होता है। प्राचीन काल में प्रदक्षिणा की अवधारणा समाज को एक सांस्कृतिक एकता के सूत्र में बांधे रखने के लिए किया गया होगा; और कूपमंडूकता से निकलने के लिए इससे अच्छा साधन कोई और नहीं हो सकता।



(यायावर और भारतीय परंपराओं के अध्येता)

सुंगासन गोदीली, घमखमीरा, मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश

Email: Radhebabab23@gmail.com Mo: 9939200407

## अग्निपाखी

मंजुश्री

“हाँ, तुम तो हो ही और भी बहुत लोग हैं पत्नी, बच्चे, रिश्तेदार, मित्र, मेरे साथ काम करने वाले तमाम लोग लेकिन उनके बीच हंसता-बोलता, मुस्कराता मैं कभी-कभी भीतर से बहुत अकेला महसूस करने लगता हूँ विशेष रूप से तब जब मेरे बहुत अपने मुझे समझ नहीं पाते। इस शोर-शराबे के बीच भी सन्नाटा है। अपने दिल की धड़कन भी जोरों से सुनाई देती है। बात तो मैं सबसे करता हूँ सब की राय से बड़े-बड़े निर्णय भी लेता हूँ पर अंत में है तो मेरी ही जिम्मेदारी। इतनी बड़ी दुनिया में तुम्हारे सिवाय दूर-दूर तक कोई और ऐसा नहीं दिखता जिसके सामने मैं अपना दिल खोल सकूँ, जिससे मैं अपना सब कुछ साझा कर सकूँ, बिना इस बात की चिंता किये कि वह मेरे बारे में क्या सोचेगा। सुनयना तो बिल्कुल ही नहीं, हालांकि मुझे इस बात की बहुत गिल्ट रहती है

ऑफिस के बाहर दरवाजे के पास काउंटर पर बैठी रिशेपस्निस्ट को अंदर उसके आने की सूचना देने के लिए फोन उठाते हुए देखकर विक्रम ने हाथ के इशारे से मना किया और धीरे से दरवाजे का हैंडल घुमाकर भीतर झांका। राघव सामने मेज के उस तरफ रिवाल्विंग कुर्सी पर दरवाजे की तरफ पीठ किये बैठा अपने ऑफिस की बड़ी-सी खिड़की के शीशे से बाहर देखता किसी गहरी सोच में डूबा हुआ था। मेज पर पड़ी फाइलें उसके व्यस्त होने का संकेत दे रही थीं। विक्रम वापस जाने के लिए मुड़ने ही वाला था कि राघव ने उसे भीतर बुला लिया।

राघव के बड़े से सरकारी बंगले में दाहिनी ओर की इमारत के पूरे निचले हिस्से के कई कमरों में उसका बड़ा-सा ऑफिस है ज्यादातर यहीं से राघव काम करता है। रात में काफी देर तक और सुबह बहुत जल्दी

उठकर लोगों के आने से पहले पिछले दिन की फाइलों को देखता है। उस समय बिना किसी व्यवधान के काम करना उसे पसंद है। काम के सिलसिले में अक्सर बाहर भी जाना पड़ता है या बाहर से आये लोगों को भी वक्त देना पड़ता है। हर दिन एक नई चुनौती लेकर आता है

“कहो विक्रम...कैसे हो। तुम्हारा ही इंतजार था। मैं भी तुमसे मिलना चाह रहा था, खुराना साहब ने बताया होगा। समय ही नहीं मिल पा रहा है तुमसे बात करने का। परसों जो फॉरन डेलीगेशन मिलने आ रहा है मैं चाहता हूँ तुम भी साथ में रहो। तुम्हें तो मालूम है कितना बड़ा प्रॉजेक्ट है?” उसकी ओर मुड़ते हुए राघव बोला।

“मैं तो ठीक हूँ पर लगता है तुम किसी गहरी सोच में डूबे हुए हो। प्रॉजेक्ट के बारे में तुमसे कुछ पॉइंट्स भी डिसकस करने थे। उसी सिलसिले में आया हूँ मि. खुराना बाहर मिले थे। कल की पूरी तैयारी है चिंता मत करो।” अपने पीछे दरवाजा बंद करता हुआ विक्रम राघव के पास आते हुए बोला।

खिड़की से बाहर शाम का खूबसूरत नजारा दिखाई दे रहा था। सामने दिखते गुंबद से उतरता सुनहरा सूरज अपने को समेटने की तैयारी में व्यस्त था। आसमान ललछौंहा हो रहा था, लाल सिलेटी मिलाजुला तांबई-सा, धूप का एक छोटा गुनगुना-सा टुकड़ा मेज के कोने पर से सरक कर तिरछा जमीन पर पड़ा अलसा रहा था। घोंसलों की ओर लौटते पक्षियों की लंबी पतली लकीर सामने लगे पेड़ों की ओर बढ़ रही थी। दूर सड़क पर गाड़ियों की लंबी कतार सिगनल के हरे होने का इंतजार कर रही थी। हर कोई अपने-अपने काम में अपने तरीके से लगा हुआ, कहाँ रुकता है कुछ किसी के लिए।

“इतनी खूबसूरत शाम है और तुम भीतर बैठे न जाने क्या सोच रहे हो?”

“आओ बैठो। बस ऐसे ही....अभी एक मीटिंग खत्म हुई है। एक घंटे बाद दूसरी मीटिंग है। दरअसल कई दिनों से एक अजब सी बेचैनी तारी हो रही है। अक्सर यह ख्याल आता है कि यहाँ तक पहुंचने के बाद



मुझे और क्या चाहिए? जो करना चाहता हूँ उसमें बहुत कुछ कर रहा हूँ पर क्या ये काफी है, क्या मैं संतुष्ट हूँ! दिन ब दिन और बहुत कुछ की चाह बढ़ती ही जाती है। मैं बहुत कुछ नया करना चाहता हूँ ऐसा कुछ जो किसी ने न किया हो। जानता हूँ कि मंजिल अभी बहुत दूर है। कभी-कभी सोचने लगता हूँ कि यहाँ इस जगह मेरे आगे-पीछे घूमते इन तमाम लोगों में से बहुतों को क्या फर्क पड़ता है कि इस कुर्सी पर कल मैं होऊंगा या कोई और। ये तो बस हुकम के गुलाम हैं जो बिना अपना दिमाग लगाये आदेशों का पालन करते रहेंगे फिर इनके बाद आने वाले फिर उनके बाद और आने वाले यही करेंगे।” उसकी ओर देखते हुए राघव ने कहा

“तुम क्या कहते हो! क्या सब ऐसे ही चलता रहेगा! ज्यादातर लोगों में अपने काम और सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रति इतनी उदासीनता क्यों है। ठंडे, ठहरे हुए बुझे-बुझे से लोग... लगता है बस होने के लिए होता रहता है जैसे सब कुछ। मैं इस ढर्रे पर नहीं चल सकता। बदलना चाहता हूँ लोगों की सोच को, सोच के पीछे की अव्यवस्था को भी। क्या कहते हो विक्रम क्या मेरा सोचना गलत है? तुम्हें क्या लगता है कि जो मैं सोच रहा हूँ, जो मैं करना चाहता हूँ वह सही नहीं है?”

“तुम्हारी सोच बिल्कुल सही है। किसी न किसी को तो आगे का सोचना ही होगा। तुम तो जानते हो कि व्यवस्था को बदलना कितना कठिन है। लोग वर्षों से एक निश्चित ढर्रे पर चलने के आदी हो चुके हैं। एक बात बताऊं जो तुम लोगों में काम और जिम्मेदारियों के प्रति उदासीनता की बात कर रहे हो मेरा मानना है कि इसके लिए हम ही जिम्मेदार हैं, अगर हम अपने काम में ढीले हैं तो किसी और से उम्मीद कैसे कर सकते हैं। जब वे हमारे तुम्हारे जैसे लोगों को ईमानदारी से घंटों काम करते हुए देखेंगे तो खुद आगे आयेंगे। हमें उनमें जोश भरना होगा। लोगों के सामने कोई आदर्श नहीं है जिसके ऊपर उन्हें विश्वास हो। ऐसे में जहां कोई उन्हें थोड़ी उम्मीद बंधाता है उसके पीछे वे चल पड़ते हैं। वैसे भी भौतिक चीजें जल्दी बदलती हैं, सोच बदलना इतना आसान नहीं है। इसके बावजूद बहुत बड़ी संख्या में लोग पूरे जोश से बेहतर भविष्य के लिए चुपचाप काम कर रहे हैं इसीलिए देश चल रहा है। बहुत से लोग दिखाई नहीं देते पर नींव के पत्थरों की तरह लगे हुए हैं। अभी तो हमें बहुत लंबा रास्ता तय करना है राघव।”

“जानता हूँ कि अभी बहुत दूर जाना है। तुम्हें बताऊं कि मैं जब आंख बंद करता हूँ तो मुझे वर्तमान की आस-पास की छोटी-छोटी चीजें दिखाई नहीं देतीं, बहुत दूर आगे देश के बदलते भविष्य की चीजें दिखाई देती हैं। मैं व्यवस्था के उस गुंजलक को खोलना चाहता हूँ जो आगे बढ़ने की राह पर रोड़े बनी हुई है। आमूल परिवर्तन लाना चाहता हूँ। लोगों को इसमें परेशानी तो होगी। लोग इस सड़ी व्यवस्था के इतने आदी हो गये हैं कि उन्हें मेरा हर नया कदम नागवार है। जानता हूँ कि सफर लंबा ही नहीं कठिन भी है लेकिन मैंने उस ओर कदम बढ़ा लिये हैं।”

“जानते हो न कि अपनी इस यात्रा में तुम मुझे हमेशा अपने साथ पाओगे राघव।” विक्रम ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा।

“हां जानता हूँ तुम तो मेरी ताकत हो। तुम तो देख ही रहे हो कि जब हमने अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए एक-एक सीढ़ियां चढ़नी शुरू कीं तो पाया कि हमसे पहले चढ़ने वालों के कदमों के निशान पहली कुछ सीढ़ियों पर बहुत गहरे और ज्यादा थे। बहुत से लोग वहाँ तक पहुंच पाये हैं पर उसके आगे ऊंची होती सीढ़ियों पर उनके कदमों के निशान धुंधले होते गये हैं, और आज जहां हम पहुंच पाये हैं वहाँ कोई निशान है ही नहीं। उससे आगे की सीढ़ियां धुंध में खोती जा रही हैं। ऐसा नहीं है कि हमसे पहले लोगों ने उन सीढ़ियों पर चढ़ने की कोशिश नहीं की है। लगता है कि लोगों की अपेक्षाओं के बोझ और विरोधियों के दबाव के कारण वे आगे बढ़ने का जोखिम नहीं उठा सके और लौट पड़े।”

“हमें पूरी ईमानदारी और लगन से आगे बढ़ना है राघव पीछे मुड़ने की बात सोचना भी मता। विरोध तो होना ही है। सब को खुश करना संभव नहीं है।”

“विक्रम अक्सर सोचता हूँ कि यहाँ तक पहुंच कर मैंने क्या खोया क्या पाया? हालांकि पाने की चाह मैंने कभी नहीं रखी परंतु जो पाया क्या वही चाहा था! यदि देखा जाए तो यही लगेगा कि वाकई मैंने जो चाहा वह पाया है। फिर क्यों मुझे बेचैनी हो रही है। यह बात सही है कि यहाँ तक पहुंचने के लिए मैंने काफी मेहनत की है इस मुकाम तक पहुंचकर जब पीछे पलटकर देखता हूँ तो पाता हूँ कि कितना कुछ छूट गया है पीछे संगी साथी, घर-द्वारा। यहाँ तक आते-आते भीतर से कितना अकेला हो गया हूँ। पर यही अकेलापन मुझे सोचने समझने और गुनने का मौका भी देता है। कभी-कभी भीतर का यह सन्नाटा मुझे परेशान करने लगता है।”

“अकेलापन...सन्नाटा...तुम ऐसा क्यों सोचते हो कितने लोग तो हैं तुम्हारे साथ, मैं भी तो हमेशा तुम्हारे साथ हूँ।”

“हां, तुम तो हो ही और भी बहुत लोग हैं पत्नी, बच्चे, रिश्तेदार, मित्र, मेरे साथ काम करने वाले तमाम लोग लेकिन उनके बीच हंसता-बोलता, मुस्कराता मैं कभी-कभी भीतर से बहुत अकेला महसूस करने लगता हूँ विशेष रूप से तब जब मेरे बहुत अपने मुझे समझ नहीं पाते। इस शोर-शराबे के बीच भी सन्नाटा है। अपने दिल की धड़कन भी जोरों से सुनाई देती है। बात तो मैं सबसे करता हूँ सब की राय से बड़े-बड़े निर्णय भी लेता हूँ पर अंत में है तो मेरी ही जिम्मेदारी। इतनी बड़ी दुनिया में तुम्हारे सिवाय दूर-दूर तक कोई और ऐसा नहीं दिखता जिसके सामने मैं अपना दिल खोल सकूँ, जिससे मैं अपना सब कुछ साझा कर सकूँ, बिना इस बात की चिंता किये कि वह मेरे बारे में क्या सोचेगा। सुनयना तो बिल्कुल ही नहीं, हालांकि मुझे इस बात की बहुत गिल्ट रहती है कि मैं उससे बहुत कुछ साझा नहीं करता, इसलिए नहीं कि मैं उससे कुछ छिपाना चाहता हूँ बल्कि इसलिए कि हर बात सब से नहीं कही जा सकती। वह बात अपने

तक नहीं रख पाती लोग उन बातों में अपने मतलब निकालने लगते हैं। कभी-कभी तो अपना साया भी अपना नहीं लगता।”

“क्या हो गया है तुम्हें राघव तुम तो हमेशा हम सब को पॉजिटिव रहने और आगे बढ़ने की प्रेरणा देते रहते हो।”

“वह सब सही है, पर इंसान भी तो हूँ कभी न कभी कुछ और भी आ जाता है दिमाग में। सच कहूँ विक्रम अपने चारों तरफ जब नजर घुमाता हूँ तो इन हंसते मुस्कराते चेहरों की ओढ़ी हुई चिपचिपी मुस्कान और चेहरों के हाव-भाव में कोई ताल-मेल नहीं दिखता है। मन में कुछ और है दिखाने कुछ और है। चापलूस हैं सब, मतलबी और घाघा कभी लगता है मेरे खिलाफ सब लामबंद हो गये हैं क्या सिर्फ इसलिए कि मैं बहुत आगे की सोचता हूँ और ये मेरे साथ चल नहीं पा रहे हैं या शायद इसलिए कि मैंने कोई लगे ठहरे पानी में पत्थर फेंक कर हलचल पैदा कर दी है।”

“हां हलचल तो मची हुई है। तुमने सोते जिन को जगा दिया है। कुछ लोग जागने लगे हैं, प्रश्न पूछने लगे हैं। अब हाल यह है कि अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए सब विरोधियों को भी इस दौड़ में हिस्सा लेना ही पड़ेगा, उन्हें अब काम भी तो करना पड़ेगा। लोगों को बेवकूफ बनाकर काम नहीं चल पायेगा अब लोगों की उम्मीदें और आकांक्षाएं बढ़ गयी हैं,” हंसते हुए विक्रम ने कहा।

“विक्रम सफलता की सीढ़ियों पर जैसे-जैसे हम ऊपर चढ़ रहे हैं शिखर तक की चढ़ाई बहुत सीधी और कठिन दिख रही है, जगह इतनी संकरी कि मुश्किल से एक ही व्यक्ति एक समय में खड़ा हो सकता है बाकी एक कदम पीछे ही। जानते ही हो आगे आने की होड़ में सब एक-दूसरे को पीछे खींचने में लगे रहते हैं, इसमें कई वे लोग भी शामिल हो गये हैं जो शुरू से साथ चलने का दावा करते रहे हैं।”

“ऊपर तक हर कोई नहीं पहुंच पाता राघव। खड़ी चढ़ाई चढ़ना बहुत जीवट का काम है तुम आगे बढ़ो मैं तुम्हारे साथ ही खड़ा हूँ।”

“दुनिया सोचती है कि ऊपर शिखर पर खड़ा आदमी कितना खुशानसीब है, दुनिया की हर चीज उसकी पहुंच के भीतर है। जमीन पर खड़े लोगों को उसका ऊंचा उठा सिर दिखाई देता है, नीचे से ऊपर आते वक्त मुश्किलों से भरे ऊबड़-खाबड़ लंबे रास्ते पर बिखरे कांटों से लहलुहान उसके पांव नहीं दिखते। दुश्मनों की साजिशें और चालाकियां नहीं दिखती। उन्हें लगता है कि बिना किसी मेहनत और चिंता फिर के दुनिया के ऐशो-आराम का लुत्फ उठा रहा है। सारी दुनिया उसकी मुट्ठी में है। सारी परेशानियां केवल नीचे वालों को ही है। उन्हें नहीं मालूम कि यहाँ तक पहुंचने में सब कुछ दांव पर लगा कर कैसे-कैसे दुष्कर बीहड़ जंगल और गहरी खाइयों उसने पार की हैं। वर्षों की मेहनत से आज वह यहाँ तक पहुंच पाया है।”

“सही कह रहे हो राघव। उन्हें केवल वह दिखाई देता है जो वे देखना चाहते हैं। वे पर्दे के पीछे की व्यग्रता, उलझनों, तनावों, मुश्किलों को नहीं देख पाते।”

“वे नहीं जानते कि यहाँ तक पहुंचने के लिए उस व्यक्ति को क्या-क्या खोना पड़ता है, कितने लोगों की आंखों में कांटे की तरह चुभ रहा है। कितने लोग उसके एक गलत कदम उठाने और फिसल कर तेजी से नीचे गिरने की प्रार्थना दिन-रात करते रहते हैं। रात दिन उसके अस्तित्व को खत्म करने की साजिश करते रहते हैं, इतिहास पलट कर देखा जाय तो सबसे ऊंची कुर्सी पर बैठा व्यक्ति अपने ही लोगों द्वारा रची साजिशों का शिकार हुआ है चारों तरफ षड़यंत्रों से घिरा हुआ एकदम अकेला सलीब पर लटकाने जाने का इंतजार करता हुआ।”

“तुमने जो संस्थागत बदलाव लाने की बात कह कर हलचल मचायी है राघव उससे घबराकर बहुत लोग अपनी-अपनी ढपली अपने-अपने राग अलापते एकजुट होने की कोशिश में जुट गये हैं। वे आपसी दुश्मन अपने मूल्यों को भूलकर तुम पर चौतरफा हमला करने के लिये तैयारी में लगे हैं, पर उनके व्यक्तिगत स्वार्थ और राजनैतिक महत्वाकांक्षाएं आड़े आ रही हैं वे कभी सफल नहीं हो पायेंगे क्योंकि वे अपने से परे किसी के बारे में नहीं सोचते।”

“यहाँ आओ उधर देखो,” खिड़की से बाहर सड़क पर काफी दूर जाती भीड़ की ओर इशारा करते हुए राघव बोला।

“देख रहे हो वहाँ सड़क पर चलते हुए लोगों की भीड़ को। दूर से लोग कितने छोटे नजर आ रहे हैं बिल्कुल छोटे-छोटे बिंदुओं की तरह। उनको देखकर मेरी आंखों के सामने कॉलेज का अपने लोगों का वह हुजूम सामने आ जाता है जहां लोग हमारी पहली कामयाबी पर मुझे कंधों पर उठाये जोर-जोर से नारे लगा कर जश्न मना रहे थे। लोगों को एक ऐसा आदमी चाहिए था जो उनकी आवाज़ ऊपर तक पहुंचा सके जो उनके आगे चल सके उन्हें रास्ता दिखा सके, उनकी आंख-कान बन सके और मैं ही उन्हें सही लगा। याद है न तुम्हें कैसे शोर-शराबे के उस सैलाब में हम दोनों एक-दूसरे का हाथ थामे बस आगे ही बढ़ते चले गये।”

“सही कह रहे हो तब क्या... आज भी लोगों को रास्ता दिखाने वाला एक आदमी चाहिए। तुममें उन्हें वह दिखा। राघव देखो न आज और भी कितने लोग हमारे साथ जुड़ गये हैं...,” विक्रम ने कहा।

“हां वो तो है कितने लोग जुड़ते चले गये और कितने ही छूटते... जो छूटते चले गये शायद उनके लक्ष्य बहुत छोटे थे। बहुत पहले छूट गये लोग कितनी दूर और छोटे-छोटे बिंदु से लगने लगे हैं। उनका इरादा बहुत दूर तक जाने का नहीं था, उन्हें उस भीड़ में गुम होना ही था क्योंकि वे आसान रास्ते तलाश रहे थे जो भी हो मैं उस भीड़ का हिस्सा कभी भी नहीं था विक्रम, मैं उस भीड़ में गुम नहीं होना चाहता था। मैं भीड़ से अलग अपने-आप को तलाशने की कोशिश करता रहता हूँ।”

“राघव तुम्हारी बात सही है मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ, लेकिन हमें इस भीड़ की जरूरत है इनके बीच मगर इनसे अलग रह कर हमें चलना

है। इन्हीं छोटे-छोटे बिंदुओं को जोड़कर रेखाएं और फिर आकार बनते हैं सपनों को आकार देने में इन्हीं बिंदुओं की भूमिका सबसे मुख्य होती है राघव। हमें इसी भीड़ ने यहाँ तक पहुंचाया है। उनके साथ और उनके लिए ही तो हमें काम करना है। व्यवस्थागत बदलाव लाने के लिए व्यवस्था से जुड़े इन्हीं लोगों को साथ लेकर चलना पड़ेगा। इनसे अलग हमारा कोई वजूद नहीं है।” विक्रम भीड़ को देखते हुए बोला।

“ठीक कह रहे हो लोगों की भीड़ से हमने बहुत कुछ जाना और सीखा है। लोगों की अपेक्षाओं और उपेक्षाओं से रूबरू होने का मौका मिला है। आईना है भीड़ समाज का, भीड़ ताकत देती है। पर भीड़ के कान कितने कच्चे होते हैं एक हल्की फुसफुसाहट और रास्ता बदल लेती है, भेड़ चाल या कहो भीड़ चाल।” एक गहरी सांस लेते हुए राघव ने विक्रम की तरफ देखा।

“तुम्हें तो मालूम है कि मैंने अपना लक्ष्य बहुत पहले ही निर्धारित कर लिया था और देख ही रहे हो जोर-शोर से जुट गया हूँ उसे पाने के लिए। दूर बहुत दूर तक जाने के लिए लोगों के कंधों का सहारा लेकर अपने गंतव्य तक पहुंचने के लिए मैंने कदम बढ़ा दिये हैं। जल्दी से जल्दी पहुंचना चाहता हूँ वहाँ। ऐसा लगता है कि काम बहुत ज्यादा हैं और समय कम... विक्रम मुझ पर जैसे एक जुनून-सा सवार होने लगा है। तुम्हें तो मालूम ही है कि सत्ता और शक्ति इन दोनों के सहारे ही बदलाव लाया जा सकता है, इसीलिए मैंने सत्ता में आने का निर्णय लिया था और चुनाव लड़ा था। आज मेरे पास ताकत है, मौका है तो क्यों न उसका उपयोग किया जाये।”

“इस जुनून को अपना हथियार बनाना है, राघव कमजोरी नहीं। यह कामयाबी की पहली सीढ़ी है। हर सीढ़ी पर कदम संभाल कर रखना, पांव फिसलते देर नहीं लगती। लोग संभलने का मौका नहीं देते वे तो इसी इंतजार में रहते हैं कि कब आदमी का पांव लड़खड़ाये और वे उसे उठाने की बजाय उसको रौंदते हुए आगे बढ़ जायें। याद रखो आगे रास्ता कठिन और संकरा होता जाता है, लोग एक दूसरे को धकियाते हुए आगे बढ़ना चाहते हैं लोग सहारा नहीं देते हैं।”

“तुम हो न इस फिसलन भरी राह पर मेरा हाथ थामने के लिए विक्रम। तुम्हारा साथ मुझे संबल देता है। जानता हूँ सत्ता का नशा बहुत गहरा होता है, एक बार इसकी लत लग जाये तो मरते दम तक नहीं छूटती। तुम्हीं बताओ कितने लोग काम करने के लिए सत्ता में आना चाहते हैं! बहुत कम... अगर काम के लिए आते तो देश का यह हाल न होता। यह भी सच है कि दुनिया के हर देश की यही कहानी है। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है, स्वार्थी और मौकापरस्ता। छोटे-बड़े चुनाव आते ही गली-गली में कुकरमुत्तों की तरह उम्मीदवार उग आते हैं और फिर वही उठा-पटक, साजिशों, सारा खेल सत्ता और उसके साथ मिली ताकत के बल पर कमाई जा सकने वाली दौलत का है।”

“लोगों ने तुम्हारे कंधों पर जिम्मेदारियों का बोझ डाल दिया है राघव। वे तुम्हारी ओर आशा भरी निगाहों से देख रहे हैं।”

“सच कहते हो लोगों की आशाओं और जिम्मेदारियों का बोझ मेरे कंधों पर है पर मैं उसकी शिकायत नहीं कर रहा हूँ बल्कि मैं अपने ऊपर उनके विश्वास के कारण नतमस्तक हूँ। साजिशों से डरे बिना उनकी आशाओं पर खरा उतरना चाहता हूँ।”

“क्या हो गया है! तुम्हें आज कैसी बातें कर रहे हो? साजिशों की बात मत सोचो... लगता है कई दिनों से ठीक से सोये नहीं हो। किस बात का तनाव है मुझसे कहो न”... विक्रम बोला।

“तनाव नहीं है बस ऐसे ही कुछ ख्याल गाहे-बगाहे आ जाते हैं। अच्छा बताओ विक्रम कि बहुत से मेरे अपने लोग जो मेरी इस यात्रा में मेरे साथ चल पड़े थे पीछे क्यों हटते चले गये। वैसे सोचो तो एक तरह से अच्छा ही हुआ व्यर्थ का बोझ कम हो गया।”

“बिल्कुल सही कहा... बोझ जब भार बन जाये और पीछे खींचने लगे तो उसे उतार फेंकना ही बेहतर है। हो सकता है लोग अपने निजी स्वार्थों के कारण तुम्हारे साथ चल पड़े हों या उन्हें लगने लगा हो कि तुम बदल गये हो तुम्हारे साथ आगे नहीं चला जा सकता।”

“क्या कहा...! मैं तो वही हूँ। सच विक्रम क्या तुम्हें भी लगता है कि मैं बदल गया हूँ? वाकई अगर ऐसा है तो मैं ख्याल रखूंगा कि ऐसा न लगे, मैं तो सबके साथ रहना चाहता हूँ अलग नहीं।”

“नहीं... पर सच कहूँ तो तुमने अपने चारों ओर एक अदृश्य घेरा बना लिया है, जहां और कोई नहीं पहुंच सकता। शायद यही तुम्हारे अकेलेपन का कारण है। कभी लगता है मैं भी उस घेरे की दूसरी तरफ ही हूँ।”

“ऐसा तो नहीं है। बस थोड़ा सावधान हो गया हूँ। मेरे चारों ओर घूमते लोग मेरी कही हर छोटी-बड़ी बात यहाँ तक कि उठने-बैठने के तरीके के भी अलग ही मतलब निकालने लगे हैं। हर समय मुझे अपने कंधों पर लोगों की निगाहें चिपकी हुई महसूस होती हैं जासूसी करती सी।”

“सच कहता हूँ विक्रम एक बात की मुझे तसल्ली है कि कठिन और ऊबड़-खाबड़ पथरीला ही सही, पर मैंने सही रास्ता चुना है और कम से कम तुम मेरे साथ हो। चले तो बहुत लोग थे पर इस कठिन रास्ते पर उनकी हिम्मत पस्त होने लगी और वे पीछे सरकते चले गये। काफी लोग बहुत दूर तक आये फिर लौट गये, अपनी जिंदगी में मस्ता।”

“उठो चलो थोड़ी देर बाहर बरामदे में खुली हवा में बैठकर बात करते हैं।” विक्रम ने राघव की ओर हाथ बढ़ाया और दोनों लॉन की तरफ निकल आये।

शाम के साढ़े पांच बज रहे थे। धूप उतरने लगी थी हल्की हवा चल रही थी। लॉन में माली पौधों में पानी डाल रहा था। मिट्टी की हल्की सोंधी खुशबू हवा में घुली हुई थी। दूर काले बादल घिर रहे थे। आसमान का ललछौंहा रंग बदलने लगा था कुछ सिलेटी सा। लगता है बारिश होगी। ऑफिस से कुछ लोग पहली शिफ्ट खत्म करके जा रहे थे तो

कुछ लोग अगली शिफ्ट के लिए आ रहे थे। राघव रात में काफी देर तक काम करता है। पूरे दिन की व्यस्तता के बाद रात में शांति से पूरे दिन के काम-काज और अधूरे रह गये कामों को देखता है इसलिए दो शिफ्टों में ऑफिस में लोग आते हैं।

थोड़ी देर में अर्दली चाय की ट्रे रख गया।

बरामदे में पड़ी बेंच की कुर्सियों पर बैठे राघव ने लॉन को देखते हुए कहा।

“विक्रम मैं तमाम उन लोगों का हाथ थाम कर ऊपर लाना चाहता हूँ जो निचली सीढ़ियों पर खड़े गर्दन उठाये मेरी ओर आशा भरी दृष्टि से ताक रहे हैं। चाहता हूँ कि वे मेरे साथ ऊपर की सीढ़ियां चढ़कर दुनिया को देखें और खुद इन उलझे धागों की गांठें खोलें। मेरे बढ़े हुए हाथों को थामने की कोशिश तो करें, आगे आने के लिए कदम तो उन्हें ही उठाने पड़ेंगे। मैं खड़ा हूँ न यहाँ उन्हें रास्ता दिखाने के लिए पर वे बिना कदम बढ़ाये मेरा हाथ इतनी जोर से थामे हैं कि लगता है कहीं मैं उनके बोझ से नीचे न आ जाऊँ, मैं केवल सहारा देकर दिशा देना चाहता हूँ, पैर तो उन्हें ही बढ़ाने होंगे।”

विक्रम ने उसका हाथ थपथपाया। “पहला कदम उठाना ही तो सबसे कठिन है राघव, एक बार हिम्मत कर ली तब तो रास्ता आसान हो जाता है। हर कोई बने बनाये आसान देखे-सुने परिचित रास्ते पर ही चलना चाहता है। खतरा कोई नहीं उठाना चाहता है।”

“हर कोई बात करता है बदलाव की, व्यवस्था को बदलने की। ऐसा क्यों नहीं, वैसा क्यों नहीं, ऐसा होना चाहिए, वैसा हो सकता है....। पर नया रास्ता खोजने से कतराते हैं। अनजाने भय के कारण कोशिश ही नहीं करते। तुम्हीं बताओ किसी रास्ते पर चले बिना कैसे मालूम पड़ेगा कि आगे क्या है और कितना लंबा है रास्ता।”

“राघव पर आदमी को अपने लिए सोचने और रास्ता चुनने का हक है, तुम क्यों चाहते हो कि तुम्हारे बताये रास्ते पर ही सब चलें और वही रास्ता सही है?” विक्रम ने समझाया।

“ना चलें। मैं कब कहता हूँ कि आंख बंद करके सब मेरे पीछे चल पड़ें या मैं ही सही हूँ पर कम से कम उस पर विचार तो करें। कितने लोग तो कोई नया सुझाव देने से पहले ही विरोध करने लगते हैं। अगर वही सब होता रहना है जो अब तक होता रहा है तो फिर बार-बार सत्ता परिवर्तन की जरूरत क्या है। जो नया व्यक्ति आयेगा अपने साथ कुछ तो नया लाना चाहेगा। नयी राह पर कुछ कदम तो चलकर देखें। किसी अनजाने भय से आंख मूंद लेने से खतरा टल तो नहीं जाता। किसी न किसी ने तो पहला कदम इन अनचीन्हें रास्तों की ओर बढ़ाने का खतरा उठाया ही होगा। मेरा यही कहना है कि कदम तो उठाये, न पसंद हो तो वापस लौट जायें, कोशिश तो करें।”

“तुम कुछ ज्यादा ही सोच रहे हो। लीक से हटकर चलना आसान है क्या...!! कांटों का ताज पहनकर कंधे पर सलीब उठाकर तुम्हें ही

चलना होगा लोगों की गालियां सुनते हुए। रही बात विरोध की तो कुछ लोगों को हर हाल में विरोध करना ही है, नहीं तो उनको लोग भूल जायेंगे। उनका अस्तित्व ही खत्म हो जायेगा। विरोध नये रास्ते का नहीं होता, इस बात का होता है कि उस राह पर उनकी जगह तुम सबसे आगे मशाल लेकर खड़े हो। लोग तुम्हारी तरफ आशा भरी दृष्टि से देख रहे हैं। वे आगे बहुत दूर तक उस रास्ते पर गये ही नहीं और अब डर यह है कि अगर लोग तुम्हारे रास्ते चल दिये तो वे किसे सपने दिखा-दिखा कर बेवकूफ बनायेंगे। सारा खेल कुर्सी का है। म्यूजिकल चेअर जैसा। कुर्सी पर बैठने वाला बदलता रहता है बाकी सब वैसा ही रहता है। तुम उन लोगों की परवाह मत करो।”

“कहते तो तुम सही हो कि हर कोई बने-बनाये रास्ते पर ही चलना चाहता है, सुरक्षित और सहज लेकिन कोई तो व्यक्ति ऊंचे खतरनाक पहाड़ों और घने जंगलों के बीच पगडंडी बनाने के लिए पहला कदम उठाता ही है।” चाय का कप मेज पर रखते हुए राघव बोला।

आओ लॉन में टहलते-टहलते बात करते हैं विक्रम ने अपनी कुर्सी सरकाते हुए कहा।

“सामान्य लोग तो वही हैं केवल कुर्सी पर पहले वे थे अब तुम आ गये हो। जनता के लिए तो जो जिस समय कुर्सी पर बैठा है वही सही है। देख तो रहे हो बैठने वाले के बदलने से उनकी जिंदगी में कोई खास बदलाव कहाँ आता है इसलिए उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता कि कौन, कब, कुर्सी पर कैसे बैठा !!! सच पूछो तो कुर्सी से उनका विश्वास उठ गया है।”

“लोग खुद भी तो मेहनत किये बगैर अल्लादीन का चिराग चाहते हैं जिससे जादू से तुरंत सब कुछ हासिल हो जाये। चारों तरफ बहुत गड़बड़ है। बस सब चलता है कि प्रवृत्ति से सब चल रहा है। विक्रम यह पूरी व्यवस्था एक भूलभुलैया है, बहुत लंबी अंधेरी रहस्यमय सुरंग। रोशनी की तलाश में आगे बढ़ते हुए पीछे के दरवाजे अपने-आप बंद होते जाते हैं आगे बढ़ते जाने के अलावा कोई और रास्ता नहीं है। समझ रहे हो न मैं क्या कह रहा हूँ जितना इस सिस्टम के अंदर घुसता जाता हूँ धंसता जा रहा हूँ गहरे और गहरे। थाह ही नहीं मिलती पैर टिकाने के लिए।”

“ये क्यों नहीं कहते कि तुम खुद भी पीछे नहीं लौटना चाहते। मैं जानता हूँ कि तुम सुरंग के बाहर का रास्ता जल्दी ही ढूँढ लोगे।”

“ठीक कह रहे हो। कुछ लोग वाकई मेरे बताये रास्ते पर साथ चल पड़े हैं उनके लिए मुझे इस सुरंग से बाहर आने का रास्ता खोजना ही है। फिर कभी लगने लगता है कि मैं किसी ब्लैक होल के भीतर खिंचता चला जा रहा हूँ। मैं उससे बाहर आने के लिये हाथ-पांव मार रहा हूँ पर आ नहीं पा रहा हूँ। कभी लगता है कि एक जबरदस्त बवंडर मुझे आसमान की ओर खींच रहा है और मैं ऊपर बहुत ऊपर उड़ता चला जा रहा हूँ हवा से भी हल्का होकर। नीचे लोगों का हुजूम मुंह ऊपर

उठाए उम्मीद का दामन थामे, हाथ फैलाए मुझे ऊपर उठते देख मेरे पांव पकड़कर नीचे खींचने की कोशिश कर रहा है।”

“क्या हुआ दिन में सपना देख रहे हो क्या? मुझे लगता है तुम्हें थोड़े आराम की जरूरत है। रात-दिन केवल काम के बारे में सोचते रहते हो। मुझे लगता है ब्लैक होल चारों ओर फैली अव्यवस्था को सिंबोलाइज़ करता है जिसके भीतर काफी गहरे रास्ते तलाशने की कोशिश में तुम अंदर खिंचते जा रहे हो, और राघव सच मानो लोगों को तुम पर भरोसा है इसीलिए तुम्हें अपनी ओर खींच रहे हैं तुम्हें दूर जाने नहीं देना चाहते। राघव ये कितने अच्छे संकेत हैं। लोगों का भरोसा जीतना ही तो सबसे कठिन काम है।” विक्रम ने उसके कंधे पर हाथ रखा।

“पता नहीं कभी-कभी क्या कुछ दिमाग में आने लगता है लेकिन घबराओ मत मैं अपने रास्ते से जरा भी पीछे हटने वाला नहीं हूँ दिमाग में घूमती ये बातें मुझे बहुत कुछ सोचने पर मजबूर करती हैं। इन्हीं के बीच में रास्ते निकलने हैं। समस्या के भीतर ही तो उसका हल भी छिपा होता है। मुझे पूरा विश्वास है कि मैं इतने सारे लोगों के उठे हाथों के सहारे रास्ते की काफी सारी रुकावटों को दूर कर पाऊंगा। जो लोग आज दूर से मुझे अविश्वास से देख रहे हैं मुझे यकीन है कल मेरे साथ चलने के लिए वे भी कदम आगे बढ़ायेंगे।”

“तुमने अब तक जो फैसले लिये हैं काफी बड़े, साहसी और कठिन रहे हैं जिनके बारे में निश्चित तौर पर पहले भी बहुतों ने सोचा तो होगा लेकिन घबराकर आखिरी समय में पैर पीछे खींच लिये। वे जनता की नाराजगी झेलकर सत्ता से बाहर हो जाने का खतरा नहीं उठा पाये।” विक्रम बोला।

“लोग मुझे तो रात-दिन गालियां ही देते हैं पर विक्रम अगर मैं कुछ कर सकने की स्थिति में होते हुए भी केवल इसलिए कुछ न करूँ कि विरोधी शोर मचायेंगे और लोगों की नाराजगी की वजह से सत्ता चली जायेगी तो क्या उन लोगों के साथ विश्वासघात नहीं होगा जिन्होंने मुझ पर भरोसा किया। जिन्होंने अपने कंधों पर बैठकर मुझे सफलता की सीढ़ियों पर चढ़कर शिखर की ओर बढ़ने की हिम्मत दी, जिनकी आशा भरी निगाहें मेरी ओर लगी हैं, वे नींव के पत्थरों की तरह लगे हजारों लोग भी तो जो दिखते नहीं पर लगे हुए हैं...मैं सब अपने लिए नहीं कर रहा हूँ।”

“बड़े-बड़े कामों में लगे छोटे-छोटे लोगों की हिस्सेदारी क्या कोई मायने नहीं रखती। मैं पीछे नहीं मुड़ सकता विक्रम बिल्कुल भी नहीं। ये मौके बार-बार नहीं मिलते। कोई कुछ भी कहे कितना भी विरोध करे, गालियां दे मैं अपना लक्ष्य पाकर ही रहूँगा। जानता हूँ कि बड़े-बड़े दूरगामी निर्णयों से लोगों को अभी कुछ तकलीफें होंगी पर भविष्य में उनके बहुत फायदे होंगे इस बात का मुझे विश्वास है। हम, तुम शायद न रहें पर मैं उस भविष्य को साकार होते देख रहा हूँ।” राघव बोला।

विक्रम फ्लैमिंगोज़ देखे हैं न तुमने अग्निपाखी...कच्छ के रण में आसमान से उतरते समय नीचे से दिखती उनके पंखों की दहकती आग-सी लालिमा....सारे जब एक साथ नीचे उतरते हैं तो जोश और उत्साह से फड़फड़ाते पंखों का संगीत मन में जोश भर देता है। ये दहकते पंख बहुत ऊंची उड़ान भरने का संदेश देते हैं, जीवन में खुशी और आनंद का..... राघव बोला जैसे वह झुंड में ऊंची उड़ान भरते इन शानदार पक्षियों को यहीं लॉन में सामने देख रहा हो। “महसूस करो अग्निपाखी जैसे सैंकड़ों लोगों के ऊपर उठे हाथों की ताकत। इसीलिए इस विशाल कर्मक्षेत्र में मैं आशाओं के बादलों पर सवार होकर देश के सुनहरे भविष्य को आगे आने वाले उन लोगों के हाथों में सौंपना चाहता हूँ जिनमें इस व्यवस्था के उलझे धागों को सुलझाने की लालसा और आग हो।”

ऊपर आकाश की ओर देखता राघव उन अग्निपाखियों की कल्पना में डूबा हुआ था जिनके दहकते पंखों में वर्तमान और सुनहरे भविष्य को सुधारने की ताकत होगी और जिनके हाथों में देश सुरक्षित होगा। उसे पूरा भरोसा है कि ऐसे लोगों की देश में कमी नहीं है और देखते ही देखते करोड़ों लोगों के ऊपर उठे हाथ दहकते पंखों में तब्दील होने लगे।

विक्रम ने महसूस किया कि बात करते-करते राघव कहीं खो सा गया है जैसे अपने आप से बातें करता देख रहा हो....

असीम आकाश की दूरी नापते,  
सूर्य की तप्त लाल किरणों,  
पर सवार अंगारों से दहकते लपकते,  
विशाल रनक्षेत्र में उतरते वे  
अग्निपाखी.....

जो सौंप जाते जलते भविष्य को  
उन हाथों में जिनकी लाल लपटों में,  
तिरोहित होगा खोखला भूत  
और रीता वर्तमान,  
समाहित होगी अदम्य लालसा  
अनबुझ प्यास सुनहरे भविष्य के  
उलझे ताने-बाने सुलझाने की...  
और विक्रम बंगले से बाहर निकल आया....।।  
आमीन !!!!!



ए – 10 बसेरा, दिन क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-400081  
मो. 9819162949

## प्रसाद

सरिता कुमारी

“जानते हैं, भाईसाहब! हमारी पीढ़ी एक अलग ही समय से गुजर रही है। बेटे - बेटी में कोई भेद नहीं किया हमने कभी, न मैंने, न पत्नी ने। बेटी को खूब पढ़ाया - लिखाया। हर इच्छा पूरी की जैसे बेटे की हर इच्छा पूरी की, बिल्कुल वैसे ही। बड़ी ज़हीन है बिटिया मेरी। खूब अच्छा पढ़ - लिखकर, अच्छी नौकरी में आ गई। मैंने सोचा था कि यह भी बेटे की तरह अपनी पसंद से शादी कर लेगी। अपनी पसंद से करेगी और खुश रहेगी। हमें क्या ऐतराज होगा, भला? जब बेटे में कोई ऐतराज नहीं हुआ तो फिर बेटी में क्यों? पर ये सब बातें भी तो कुदरती होती हैं, न, भाईसाहब। उसे कभी कोई पसंद ही नहीं आया। कहती है कभी इस ओर ध्यान ही नहीं गया, पढ़ाई - लिखाई और नौकरी के चक्कर में सोचा ही नहीं इस बारे में।”

‘अरे...अरे... संभाल कर!’ कहते हुए दो मजबूत हाथों ने उसे थाम लिया। गिरता तो बहुत जोर की चोट लगती। इस विचार भर से वह सिहर गया। उसे संभालने वाले उन मजबूत हाथों के मालिक के चेहरे को उसने आभार भरी नज़रों से देखा। देखते ही पल भर को वह चौंका था। उस चेहरे पर जड़ी हीरे सी चमकीली आंखों ने उसके तन में एक दूसरी तरह की सिहरन जगा दी। जिसके एहसास का रंग कुछ ज्यादा ही गाढ़ा था। और गहरा भी। एक ऐसा रंग जिसके तले में एक अबूझ दर्द की गहरी खाई थी। वह उस दर्द की खाई में यूँ बेवक्त गिरना नहीं चाहता था। इसलिए अपने मन को उसने झट से दूसरे ही एहसास के रंग में घोल लिया। उसे गिरते से संभाल लेने के रंग में। उन हीरे सी चमकती आंखों में डूबते हुए वह बस इतना ही बोल पाया।

‘शुक्रिया, भाईसाहब, आज आप नहीं होते तो ना जाने क्या होता...!’ नीचे बलखाती दसियों सीढ़ियों पर नजर डालते हुए, उसने

सहमकर कहा।

‘भगवान का दर है भाईसाहब, असल संभालने वाला तो वही है। वह नहीं चाहता की आप गिरें। मर्जी उसकी ही थी, मेरे तो बस हाथ थे जिन्होंने आपको ऐन मौके पर संभाल लिए।’ उस अजनबी की आवाज़ में अलग तरह की बेचैनी थी।

वह मुस्कुरा दिया। भगवान का दर, हां, वही तो...कितने दिनों बाद वह मंदिर की इन सीढ़ियों तक फिर से पहुंच पाया था।

वह सीढ़ियों पर लड़खड़ाने के ठीक पहले, मंदिर के चारों ओर फैले घास के मैदान को देख रहा था। मुग्ध - सा।

घास का रंग गहरा हरा था। ऐसा - जैसा बरसात में भीगी धरती की देह पर ही सम्भव होता है। जुलाई के महीने के ये आखिरी दिन थे। बारिश की बूंदों से धरती का सीना लबालब भरा रहता। ऐसे में हरियाली का एक अलहदा रंग - रूप, आँखों में हर वक्त तैरता रहता। मानस की आँखें भी हरियायी रहती थीं इन दिनों। घर में पड़ा वह खिड़की से बाहर बिखरे हरे रंग के सैकड़ों जादुई रूप देखता रहता। उसे बरसात पसंद थी, हमेशा से। और इसीलिए हरा रंग भी पसंद था। एक पसंद से जुड़ी दूसरी पसंद। उसे केसरिया रंग भी पसंद था। क्योंकि उसे मंदिर जाना पसंद था, हमेशा से। बिल्कुल बरसात, हरी घास और हरे रंग की तरह। शाम की आरती के समय मंदिर जाना उसे भाता था। वह मंदिर हर रोज जाता, चाहे मौसम कोई भी हो। यह सिलसिला कब से बना हुआ था, उसे ठीक से याद नहीं। मंदिर जाना भी, बरसात, हरी घास, हरे रंग, मंदिर और केसरिया रंग की ही तरह, बस उसे पसंद था।

यह जगह थी ही ऐसी, यहाँ से लगभग पूरा शहर दिखता था। थोड़ा ऊँचाई पर था यह मंदिर। पेड़ - पौधों से घिरा। एक बहुत पुराने बरगद के पेड़ के साथ - साथ। बरसों से वह यहाँ खड़ा होकर शहर को निहारता रहा था।

इस पुराने मंदिर की तरह शहर में आते धीमे बदलाव का साक्षी रहा था वह भी। कच्ची से पक्की होती सड़कें, एक मंजिले मकान - बहुमंजिली इमारतों में ढलते, घोड़ागाड़ी से टैक्सी तक का सफ़र, यूँ

छोटे – बड़े सब बदलाव; शहर के, शहर की आबोहवा के। यहाँ की खुली हवा सारी थकान मिटा देती थी।

आज भी अच्छी बारिश हुई थी। मंदिर में शाम की आरती का समय था। और वह मंदिर तक चुपचाप चला आया। बिना किसी को बताए। घर पर किसी को बताता तो वह यहाँ आ नहीं पाता। यह बात वह अच्छी तरह जानता था। पत्नी दुःखी होकर कह उठती,

‘मंदिर...मंदिर क्या रटते रहते हैं, जी! कौन से भगवान, कौन से मंदिर ने इस हाल में पहुंचने से बचाया आपको? पहले ठीक तो हो जाइए, फिर जाइएगा मंदिर!’

ऐसे में मानस पत्नी से कुछ नहीं कह पाता। रात - दिन सेवा में लगी रहती है वह! मरते से जिला लिया है उसने अपनी सेवा से। इन बातों पर क्या बहस करे वह उससे। बात भी गलत तो नहीं कहती थी वह। पर वह अपने मन को भी कैसे समझाए, मानस समझ नहीं पाता। बरसों की आदत है। तो आज मौका निकालकर वह बिना किसी को बताए, अकेले ही चुपचाप अपने मन की हूक से बंधा, सपेरे की बीन पर सांप सा खिंचा चला आया, मंदिर के द्वारा। मंत्रमुग्ध सा। कई महीनों बाद। पिछले तीन महीने से, बरसों से रोज मंदिर जाने का उसका सिलसिला एक झटके में मनकों की माला सा टूट कर बिखर गया था। उसके पैर पर अब भी प्लास्टर चढ़ा हुआ था। वह तन की तकलीफ़ भूलकर मन की गुहार पर चला आया। बैसाखी के सहारे खट् - खट् करता हुआ।

सीढ़ियां चढ़ना हिमालय की बर्फीली चोटी चढ़ने से कम मुश्किल नहीं। तिस पर बरसात के कारण सीढ़ियों पर फैले पानी की फिसलना वह भूल गया कि उसके पैर पर चढ़ा प्लास्टर उसके मन की हूक पर भारी था। तब भी, वह किसी तरह घिसटते - घिसटते, जैसे - जैसे आधी से अधिक सीढ़ियां चढ़ चुका था। बस कुछ सीढ़ियां और, और वह मंदिर के खुले प्रांगण में पहुंचने वाला था। कांख में बैसाखी की कठोर चुभन इस अद्भुत दृश्य के दर्शन के लिए एक तपस्या मानकर, वह सहता जा रहा। हालांकि बैसाखी की चुभन के दर्द से उसकी आंखें डबडबाई हुई थीं। पर उल्लसित मन के सात घोड़ों पर सवार सूरज सा वह बढ़ता ही जा रहा। सीढ़ियां चढ़ता ही जा रहा। और पानी से भीगी अगली सीढ़ी पर अचानक न जाने कैसे उसकी बैसाखी रखते ही, फिसल गई। सीढ़ियों की स्टील की रेलिंग को मजबूती से थामे, उसके हाथ भी रेलिंग से दूर छिटक गये। मानस को इन अजनबी हाथों ने संभाल न लिया होता तो वह लुढ़कता हुआ नीचे घास के हरे रंग में अपने खून का लाल रंग मिला चुका होता।

‘इस हाल में मंदिर क्यों आए आप?’ उस अजनबी ने कुछ झिझक के साथ उससे पूछा। इधर - उधर देखते हुए उसने आगे जोड़ा, ‘आप अकेले ही हैं, आप के साथ कोई और नहीं है?’

मानस कुछ नहीं बोल पाया। उस अजनबी ने उसे मंदिर की सीढ़ी

के कोने में बैठा दिया। उसकी बैसाखी हटाकर उसके बगल में रख दी। बैसाखी हटाते ही मानस को तेज दर्द का एहसास हुआ। अभी तक जोश में वह, यह दर्द भुलाए बैठा था। उसकी बगलें छिल गई थीं।

‘इस हाल में मंदिर आना क्या इतना ज़रूरी था?’ उस अजनबी की आवाज़ में इस बार सहानुभूति की रेशमी डोर की सरसराहट थी।

मानस थोड़ा झेंप गया।

‘ज़रूरी तो नहीं था! बस भाईसाहब, बरसों की आदत है, बड़े दिन हो गए थे मंदिर आए! खुली हवा में जीभर कर साँस लिए! आज मन बिल्कुल ही बेकाबू हो गया...बस तो चला आया, मंदिर के द्वारा। घरवाले आने नहीं देते, इसलिए चुपचाप चला आया।’

‘आने क्यों नहीं देते, आप इच्छा बताते तो इस हाल में ज़रूर पूरी करने की कोशिश करते, घरवाले!’

इस बात पर मानस हंस दिया।

‘बताता तो इधर का रख तक नहीं करने देते!’

‘अरे, पर क्यों भला?’ वह अजनबी चौंका था।

‘ऐसे में तो लोग बरबस ही जाते हैं, मंदिर! मन को सहारा मिलता है कि जल्दी ठीक हो जायेंगे।’ उस अजनबी ने फिर कुछ झिझक के साथ अपनी बात कही।

इस बात पर मानस उदास हो गया। उस अजनबी की हीरे जैसी चमकीली आंखों को पल भर टटोलता रहा फिर गहरी सांस छोड़कर बोला।

‘क्या सच में मन को सहारा मिलता है या सिर्फ हमारे मन का वहम है यह सब?’

मानस के इस सवाल पर वह अजनबी सिटपिटा गया। उसे असमंजस में देखकर मानस अपनी ही रौ में बोलने लगा,

‘पत्नी और बेटा - बेटा कहते हैं कि बरसों से तो मंदिर जा रहे हो, फिर क्यों इस हाल में पहुंचे? कहां था भगवान तुम्हारा, जब तुम पर हमला हुआ? बचाने क्यों नहीं आया? पत्नी खासा नाराज़ है इन दिनों, भगवान से, मंदिर से। ज़्यादा कुछ कहता हूं तो रोने लगती है कि हम तबाह हो गए और तुम्हारा भगवान हाथ पर हाथ धरे, बैठा देखता रहा।’

मानस एक सांस में ही बोल गया, मानो सब कुछ कह देना चाहता हो। दोबारा मन की खदबदाहट यूँ निकालने का मौका मिले या ना मिले।

‘मेरा ये हाल कैसे हुआ, आप जानते हैं भाईसाहब?’ मानस ने जवाब देने के अंदाज में सवाल दागा। वह अजनबी कुछ कहता, उसके पहले ही वह बोल उठा।

‘उस दिन भी मैं पहले मंदिर ही आया था, भाईसाहब! ज़मीन के सौदे का बयाना लेने जाना था। नगदा। ज़मीन, वही पुश्तैनी ज़मीन। बड़ी अच्छी थी। बेचना नहीं चाहता था। पर बिटिया की शादी के लिए

पैसे जुटाने थे। क्या करता? मैंने मन पर पत्थर रखकर पुरतैनी जमीन का सौदा किया। दहेज ना जुटा पाने के चक्कर में बिटिया के लिए इतना बढ़िया रिश्ता नहीं गंवा सकता था।

कहते - कहते मानस चुप हो गया।

ना जाने क्या सोचकर बोला।

‘आपकी शादी हो गई, भाईसाहब! बाल - बच्चे हैं क्या?’

इस अप्रत्याशित सवाल से वह अजनबी चौंका। थोड़ा संकोच में दबा हुआ सा मिमियाया।

‘शादी हो गई है और बच्चे भी हैं।’

मानस हंस दिया।

‘थोड़ा व्यक्तिगत सवाल पूछ लिया, आपसे, घबराइए मत। बाल - बच्चे वाले लोग इन बातों को अधिक अच्छे से समझते हैं, बस इसीलिए पूछा आपसे।’

वह अजनबी मुस्कुरा दिया, ‘हां, काफी हद तक सच बात है।’

‘हम्म!’ कहकर मानस थोड़ा चुप हो गया। मानो मन ही मन खुद को तौल रहा हो कि वह इस अजनबी से इतनी मन की बातें बांटे की नहीं। थोड़ा हैरान भी था मानस, खुद के इस तरह यूं वाचाल होने पर। वह इतना बातूनी नहीं है, पर इस अजनबी के सामने वह ऐसे मुखर क्यों हो रहा है? वह समझने की कोशिश कर रहा। वह अजनबी, मानस के बगल में चुपचाप बैठा हुआ था। उसकी बातों को गौर से सुनता हुआ। वह प्रतीक्षा कर रहा था कि मानस कुछ आगे बोले। अपनी उधेड़बुन में उलझा कुछ पलों बाद ही मानस बोल उठा।

‘जानते हैं, भाईसाहब! हमारी पीढ़ी एक अलग ही समय से गुजर रही है। बेटे - बेटों में कोई भेद नहीं किया हमने कभी, न मैंने, न पत्नी ने। बेटों को खूब पढ़ाया - लिखाया। हर इच्छा पूरी की जैसे बेटे की हर इच्छा पूरी की, बिल्कुल वैसे ही। बड़ी ज़हीन है बिटिया मेरी। खूब अच्छा पढ़ - लिखकर, अच्छी नौकरी में आ गई। मैंने सोचा था कि यह भी बेटे की तरह अपनी पसंद से शादी कर लेगी। अपनी पसंद से करेगी और खुश रहेगी। हमें क्या ऐतराज होगा, भला? जब बेटे में कोई ऐतराज नहीं हुआ तो फिर बेटों में क्यों? पर ये सब बातें भी तो कुदरती होती हैं, न, भाईसाहब। उसे कभी कोई पसंद ही नहीं आया। कहती है कभी इस ओर ध्यान ही नहीं गया, पढ़ाई - लिखाई और नौकरी के चक्कर में सोचा ही नहीं इस बारे में। पर मां - बाप को तो सोचना पड़ता है, ना। पर पढ़ी - लिखी, नौकरीशुदा बेटों के लिए भी रिश्ते, दहेज पर अटक जाते हैं, भाईसाहब! मोबाइल से क्षण भर में दुनिया खंगाल डालने वाले, खूब बड़ी - बड़ी बातें करने वाले, हमारे समय और समाज का सच है, ये। इस वाले रिश्ते में भी शादी के खर्च और दहेज पूरा करने के लिए ही यह ज़मीन बेचने की कोशिश की थी। बेटों को नहीं बताया था, भाईसाहब! नहीं तो वह साफ मना कर देती कि नहीं करनी शादी - वादी! आजकल के पढ़े - लिखे बच्चे नहीं समझना

चाहते कि यही तो ज़िन्दगी का असल सुख है, घर - परिवार - बच्चे! है कि नहीं भाईसाहब! आप ही बताइए?’ मानस बड़ी उम्मीद से उन चमकीली हीरे जैसी आंखों में झांक रहा था।

‘सच है, भाईसाहब! आपकी बात सोलह आने सच है!’

उस अजनबी ने थोड़ा संकोच में डूबे सुर में कहा।

अपनी बात का समर्थन पाकर, मानस मुस्कुरा उठा, मानो उसे लगा था कि यह अजनबी उसकी बात को सिर से खारिज कर देगा। मानस ने गौर किया कि वह उससे आठ - दस बरस छोटा ही होगा उम्र में, ऐसे में जरूरी नहीं कि वह उसकी सोच से इत्तेफाक रखे। आजकल तो चार - पांच साल की उम्र के फर्क में ही ‘जेनेरेशन गैप’ महसूस होने लगता है।

मानस फिर से चुप हो गया था। किसी उधेड़बुन में गुमा। इस बार यह चुप्पी कुछ ज़्यादा ही लंबी थी। अजनबी का धीरे-धीरे जवाब देने लगा तो वह पूछ ही बैठा,

‘फिर क्या हुआ, भाईसाहब! आपने बताया नहीं की आपकी यह हालत कैसे हो गई?’ उसकी आवाज़ बेचैन थी। ना जाने क्या कुछ जानना चाहती थी।

मानस कुछ महीने पहले घटी, उस दुःखद घटना की गिरफ्त में था। उदासी के भंवर में फंसी उसकी घुटी - घुटी आवाज़ खराब नल से बूंद - बूंद टपकते पानी सी झरने लगी।

‘होनी को कौन टाल सकता है? वह घटना भी बदा थी, जीवन में शायद! उस दिन बयाना लेने जाने के पहले, मैं, इसी मंदिर में आया था आदतन। यहाँ आकर मुझे हमेशा अच्छा लगता है। यहाँ की खुली हवा, शांत वातावरण, सारी बेचैनी सोख लेती है। मंदिर आया था तो भगवान के सामने हाथ जोड़कर विनती की थी कि यह काम निर्विघ्न संपन्न हो। सौ रुपए का नोट दानपेटी में डाला था।’

कहते - कहते मानस चुप हो गया था।

‘फिर - फिर क्या हुआ, भाईसाहब?’ न जाने क्यों उसकी आवाज़ में एक अजीब तरह की घबराहट थी। मानस ने चौंक कर उसे देखा था। उसकी चमकीली आंखें कुछ पल निरखता रहा फिर धीरे से बोला।

‘उन रुपयों पर हमारा हक नहीं था, शायद। जिनका था वे ले गए थे। बयाना लेकर जब हम, अपने साले नरेन के साथ लौट रहे थे। रास्ते में दो नकाबपोश, हथियारबंद आदमियों ने हमारा रुपयों से भरा बैग लूट लिया। लूट लेते बस तो ठीक था। उन्होंने गोली चला दी। नरेन इतनी आसानी से बैग कैसे ले जाने देता? वह भिड़ गया था उनसे। एक गोली हमारे दाहिने पैर पर लगी और दूसरी कंधा छूती निकल गई थी। पर नरेन के सीने में दो गोली लगी थी। हम तो बच गए जैसे - तैसे। नरेन नहीं बच पाया।’ मानस कहते कहते पल भर को ठिठका, उसका गला भर आया था। पल भर बाद छलकती आवाज़ में वह फिर बोल उठा।

‘रुपये - पैसे का क्या है? हाथ का मैल है, आता - जाता रहता है।’



पर हमारा नरेन तो अब कभी लौट कर नहीं आ पाएगा। ये गम हम सब को अंदर - अंदर खाए जा रहा है। पूछते रहते हैं हम हर पल अपने आप से, मन ही मन कि क्यों हुआ ये सब हमारे साथ? हमारी पत्नी का चचेरा भाई था। सारे भाई - बहनों में सबसे छोटा। सबका दुलारा। एक महीने पहले ही, इसी शहर में नौकरी लगी थी। हमारे पास ही ठहरा हुआ था। उस दिन हम दोनों साथ ही निकले थे। अकेले जाना ठीक नहीं लगा था। और ये सब हो गया। अभी तो शादी भी नहीं हुई थी उसकी।' मानस की आंखें सावन के काले बादलों सी बरसने लगी थीं।

वह अजनबी चुप था, घबराया सा मानस का करुण विलाप देख रहा था।

'किसी की हत्या कोई कैसे कर देता है, भाईसाहब? यह पहेली मैं आज तक नहीं समझ पाया। आप ही बताइए, भाईसाहब, कोई कैसे कर लेता है, ऐसा? आप तो भले मानुष लगते हैं, आप कैसे बता पाएंगे?' मानस भीगी आवाज़ में बड़बड़ा रहा था।

'मैं.... मैं.... भला मानुष....कोई किसी की हत्या...कैसे?' वह अजनबी ऐसे अचानक मानो तोप से दागे गए गोलों जैसे सवालियों से घबराकर, हकला रहा था। मानस चुप हो गया था। मंदिर की सीढ़ियों पर बैठा मानो जीवन की अबूझ पहेली, सुलझाने की जद्दोजहद में लगा था।

'उस दिन के बाद आप मंदिर आज आ पाए हैं, भाईसाहब!' उस अजनबी की आवाज़ मानो किसी गहरे कुएं से आ रही थी। जिसकी गूँज पूरे ब्रह्मांड में फैलती जा रही थी।

'हां, भाईसाहब! उसके बाद आज ही आ पाया हूं। वह भी इस हाल में कि ऊपर मंदिर के प्रांगण तक भी जाने लायक नहीं हूं।' मानस अपने पैरों पर चढ़े प्लास्टर को घूर रहा था।

'अगर आप चाहें तो मैंसहारा देकर ऊपर मंदिर के अंदर ले चलता हूं....!'

'आप ले चलेंगे, ऊपर मंदिर के अंदर तक...सहारा देकर...आप पहले ही कितनी देर से मेरा बेकार का दुखड़ा सुनकर, अपना समय बरबाद कर चुके हैं...अब ऐसी मदद से आपका कीमती समय और नष्ट होगा।' मानस अनिश्चय से बोल उठा।

'यकीन मानिए, मुझे अच्छा लगेगा। आपके साथ एक बार और ऊपर मंदिर हो लूँगा।' इस बार मानस कुछ नहीं कह पाया। वह अजनबी उसे सहारा देकर ऊपर मंदिर तक ले गया। दोनों ने एक साथ मंदिर के दर्शन किए। मानस ने आज फिर से सौ रुपये का प्रसाद चढ़ाया। प्रसाद का दोना लिये, दोनों साथ ही मंदिर से बाहर आए। मंदिर की सीढ़ियां उतरने के बाद, उस अजनबी ने मानस को घर तक छोड़ देने की पेशकश की तो मानस कह उठा।

'भाईसाहब, मेरे लिए आप आज भगवान का रूप बनकर आए। आपने इतना मेरे लिए किया, यही बहुत है। अब मेरे लिए और परेशान मत होइये। घर पास ही है, मैं आराम से घर चला जाऊंगा।'

मानस के बार - बार कहने पर उस अजनबी ने उसे घर तक छोड़ने की ज़िद छोड़ दी। मानस अपनी बैसाखी की ठक् - ठक् के साथ घर की ओर चल दिया। आज उसका मन हवा में उड़ती पतंग सा हल्का होकर मुक्त भावों के गगन में उड़ रहा था। बड़े दिनों बाद वह इतना खुश था। मन में जमा कितना कुछ चीकट मानो साबुन - पानी के घोल संग धुलकर बह गया था। एक अजनबी ने अचानक उसे कितनी ताज़गी से भर दिया था। 'अजनबी!' मानस सहसा चौंका था।

'अरे वह उसका नाम पूछना तो भूल ही गया। इतना कुछ कहा - सुना, और नाम नहीं पूछा! नाम के बिना वह अजनबी, अजनबी ही रह गया।' मानस ने गहरी सांस छोड़ी, भगवान, अजनबी रूप धरकर ही आते हैं, शायद।

वह घर के दरवाजे पर पहुंचा ही था कि पत्नी कमला का बेचैन स्वर गूँजा था,

'कहां चले गए थे अकेले?' माथे पर लगे सिंदूरी टीके को देखकर बरबस ही बोल उठी,

'अरे, मंदिर गए थे क्या आप? इस हाल में, हद है!'

'हां, आज मन नहीं माना, कमला! किसी भी तरह तो....!' मानस संकुचित हो उठे थे। उन्हें गहरी नज़रों से तोलती उनकी पत्नी बस इतना ही बोल पाई।

'अच्छा लगा आपको? इतनी सीढ़ियां कैसे चढ़े अकेले!'

वह मुस्करा दिया।

'जिसने बुलाया था उसी ने सीढ़ियां भी चढ़वा ली।'

'आप और आपका मंदिर?' कमला उनकी पत्नी ने गहरी सांस छोड़ते हुए कहा तो वह समझ नहीं पाए कि वह नाराजगी दिखा रही थी या उस पर तरस खा रही थी। वह चुप ही रहा।

'अच्छा, प्रसाद लिए क्या!' कमला के इस सवाल पर वह चौंका।

'प्रसाद...प्रसाद...तो भगवान के पास ही रह गया।' मानस खिलखिलाकर हंस दिया।

'क्या... कुछ भी कहते हैं, जी आप!' कहते हुए कमला कुछ सोचकर मुस्करा दी। इतने महीनों बाद वह मानस को खुश देख रही। उसे अच्छा लग रहा था।

उसे गिरने से संभालने वाले हाथों वाला वह अजनबी उसे उदास जाते हुए देखता रहा, तब तक, जब तक मानस उसकी आंखों से ओझल नहीं हो गया। वह भी तो मानस की ही तरह ठीक तीन महीने बाद मंदिर आ पाया। पिछली बार जब मंदिर आया था तो साथ में उसका साथी भी था। वही तो खींच लाया था, उसे, उस दिन यहाँ। वह समय के किले के पिछले दरवाजे की ओर चल दिया। और वह देख रहा मंदिर में आरती के समय खुद को, मानस के ठीक पीछे खड़ा हुआ। मानस ने उसे नहीं देखा था। पर उसकी नजर जब मानस पर गई तो कैसा चौंक गया था वह। वह लगातार उस पर नजर जमाए रहा। सुनता

रहा वह मानस के मन की पुकार, 'हे प्रभु! सब सकुशल सम्पन्न करो! कृपा करो यह कार्य निर्विघ्न पूरा हो!' मानस के श्रद्धा से जुड़े हाथों का सेंक उसका मन झुलसा रहा था, किसकी सुनेंगे भगवान, मानस की या उसकी? वह भी तो यही मांग रहा था, भगवान से! हाथ जोड़े, सिर नवाए, ठीक मानस के पीछे खड़े हुए।

दोनों के काम जुदा कहाँ थे? वे तो ऐसे घुले मिले थे ज्यों सिक्के के दो पहलू। उस दिन मानस के बयाने के रूपों से भरा बैग तो, उसने और उसके साथी ने ही छीना था। दोनों ने न जाने कितने दिनों से मानस की गतिविधियों पर नजर जमा रखी थी। उन्हें खूब पता था कि मानस उस बयाने के नगद रुपये लेकर आने वाला था। उनकी योजना पुख्ता थी, मजबूत किले की पथरीली नींव सी। उसमें नरेन का इस लूट का पुरजोर विरोध, योजना की पुख्ता नींव को भुरभुरी मिट्टी सा दरका देगा, बस, उन्हें यही नहीं पता था! उन्हें यह भी कहां पता था कि इसी हड़बड़ाहट में, उन्हें, इन पर गोली चलानी पड़ेगी। नरेन मारा जाएगा और मानस बुरी तरह घायल होगा। मंदिर में उस दिन मानस के पीछे खड़े, प्रार्थना करते, वह और उसका साथी, नियति के इस रूप से कहां वाकिफ थे। वाकिफ तो वह इस बात से भी नहीं थे कि बैग लूटने के बाद अगले मोड़ पर उनकी मोटरसाइकिल सामने आती गाड़ी से टकरा जाएगी। और वह अपने बचपन का साथी हमेशा के लिए खो देगा। और वह खुद कई दिन कोमा में गुम जाएगा। रूपों से भरा बैग कहां गिरा, किसको मिला, नहीं मिला, किसी को कोई खबर नहीं। और अब कुछ दिन पहले ही वह अस्पताल से डिस्चार्ज हुआ था। न जाने मन की कौन सी हूक थी जो आज वह मंदिर खिंचा चला आया था। शायद उसके मृत साथी की याद।

कोमा से बाहर आते ही उसे सबसे पहले अपने साथी का ही खयाल आया था। और यह खयाल, मिठे दूध से खट्टे दही की तरह अकथनीय दुःख में ढल गया, हमेशा के लिए। पीड़ा का नुकीला तार उसका हृदय चीरता रहता, हर पल। जिससे चुहचुहाती रक्त की गाढ़ी बूँदें थीं कि सूख ही नहीं रही थीं। उसका मन गीला रहता। न तो वह रो पा रहा, न किसी से कुछ कह पा रहा। घुटन इतनी थी कि वह ठीक से साँस तक नहीं ले पा रहा।

न जाने कितनी वारदातों को उन्होंने साथ अंजाम दिया। कभी तो कुछ गलत नहीं हुआ उनके साथ! क्या सफ़ाई से काम करते थे दोनों मिलकर! सोचते हुए वह दर्द में भी मुस्करा देता। कभी पकड़े नहीं गए। इस घटना में, वह अपना साथी खो देगा, हमेशा के लिए! यह तो अकल्पनीय था।

वह इसी मंदिर में आते थे। किसी भी घटना को अंजाम देने के ठीक पहले। एक अनकहा नियम था यह उनका मानो। मंदिर के प्रांगण में बैठकर वारदात की एक - एक बात पर खूब गम्भीर विचार - मंथन करते। उसका साथी कहता कि मंदिर के इस खुले प्रांगण में उसका दिलोदिमाग सुकून से भर जाता है। और फिर उसके दिमाग के घोड़े बड़ी जोर से दौड़ते हैं। एक से बढ़कर एक उम्दा विचार सूझते हैं, उसे

यहाँ। वह हंस देता। उसे भी भला इससे क्या तकलीफ़ ? उसे तो उसके उम्दा विचारों से मतलब था। मंदिर में उपजें या कहीं और? क्या फर्क पड़ता है? तो वे दोनों घंटों बैठे रहते यहाँ। उसके साथी के मन में विचार, बुलबुलों से उभरते फूटते। एक से बढ़कर एक योजनाएँ बनती जातीं।

होश आने के बाद से वह अब बेतरह छटपटा रहा। अपने साथी को बस यूँ ही खो देने का दुःख, उससे सहन नहीं हो रहा। किसी करीबी को खो देने की ऐसी पीड़ा से वह पहली बार दो चार हो रहा था। आज मंदिर वह इसी पीड़ा से बचने के लिए ही चला आया था। प्रांगण के अपने चिर परिचित कोने में चुपचाप देर तक बैठा, वह अपने साथी के साथ बिताए समय को मानो फिर से घूंट घूंट पीता रहा। बीते समय को फिर से जीता रहा। उसके मन पर जमा दुःख का गाढ़ा रेशा पिघलता रहा। बड़े दिनों बाद मन की शांति, उसकी अंगुली थामकर उसे दिलासा देती रही।

लौटते हुए जब वह सीढ़ियाँ उतर रहा था तभी उसे मानस दिखा था, अचानक! और लड़खड़ा कर गिरते मानस को, उसके बाजुओं ने ऐन मौके पर थाम लिया। और अब मानस और उसके साथ हुई बातचीत, उसका मन मोम सा पिघला रही। ओह! यह क्या था? जिस पीड़ा से वह बूंद बूंद रिस रहा, बिल्कुल उसी पीड़ा, हाँ, हाँ! एकदम उसी पीड़ा से तो मानस भी गुजर रहा। बिल्कुल उसी की तरह। किसी अपने को सदा के लिए खो देने की पीड़ा! दर्द के तराजू में दोनों एक बराबर तुल रहे, न ज़्यादा न कम। उसे मानस के प्रति समभाव महसूस हुआ। यह अनुभव अनोखा था।

मानस को उसने उसकी बैसाखी पकड़ाई और दम साधे उसे जाता देखता रहा। उसमें ही एकाकार हुआ सा। कहां फर्क था उसमें और मानस में! यह एहसास किसी नशे से कम न था। नरेन और उसके मृत साथी का चेहरा उसकी आंखों के आगे कौंधता रहा। उसकी हीरे की चमक वाली आंखें महीनों बाद डबडबा आईं। उस दिन तो उनका पूरा चेहरा कपड़े से ढका था। केवल आंखें ही थीं जो खुले में थीं। मानस ने लूट के समय उसकी आंखों में जिस शिद्दत से झांका था, वह नजर वह कभी नहीं भूल पाया। आज मानस से हुई यह मुलाकात, बातों का खुलासा, उसका दिलोदिमाग सुन्न किए दे रही।

वह बेख्याली में ही, मंदिर के मोड़ पर मुड़ा और सामने शाम के धुंधलके में डूबती गली में, तेज कदमों से चलते हुए घुलकर गायब हो गया। प्रसाद के दोनों - दोने उसके हाथ में थे। वह मानस के हिस्से का प्रसाद, उसे देना भूल ही गया। तभी पीछे मंदिर में किसी ने जोर से घंटी बजाई। जिसकी टनटनाहट शहर का सीना दूर तक चीरती चली गई।



501 टावर न. 25 कॉमन वैलथ गेम्स विल्लेज,  
अक्षरधाम मंदिर के नजदीक, दिल्ली 110092

ईमेल - sarita.kumari.irs @gmail.com मो. - 09422122083

## बहादुर की हथेली

नीरज नीर

“जिंदगी के इसी उजड़े दयार में उसकी मुलाकात नेहा से हुई थी। नेहा से उसकी मुलाकात एक नाटक के क्रम में हुई थी। वह अपनी टीम के साथ एक नुक्कड़ नाटक करने राजीव के मुहल्ले में आई थी। वहीं कुछ मनचले लड़कों ने नेहा को देखकर फब्तियाँ कसी थी। राजीव ने उन लड़कों का विरोध किया। लड़के राजीव से डरते थे। उसके बाद से राजीव एक तरह से उनकी नाटक टीम का हिस्सा ही बन गया था। जहाँ-जहाँ नाटक की टीम जाती वह भी वहाँ चला जाता। वह नाटक की प्रस्तुति में कुछ मदद करता। धीरे-धीरे वह छोटे-मोटे रोल भी करने लग गया।

राजीव अनजाने ही सूते हुए नाक वाली साँवली नेहा के प्रेम आकर्षण में खींचा चला गया था। दुनिया उसे अब एक बेहतर जगह लगने लगी थी। राजीव के लिए आकाश अब अधिक नीलप्रभ हो गया था। देह को छू कर जाती हवा शीतल लगती और वातावरण में संगीत की स्वरलहरियाँ गूँजती प्रतीत होती।”

बँतूचौक पर सिंहजी की चाय दुकान ऐसे लोगों का अड्डा है, जो बतकही के उस्ताद हैं। चाय की चुस्की के साथ देश की राजनीति, इतिहास, भूगोल और अर्थनीति सभी विषयों के एक्सपर्ट वहाँ समय-कुसमय उपस्थित होते रहते हैं। पार्षद से लेकर प्रधानमंत्री तक और कभी कभी तो रूस, अमेरिका और नाटो तक सबके क्रिया-कलापों का हिसाब-किताब वहाँ किया जाता है। जब राजनीति में गर्मी बढ़ती है तो प्रायः सिंह जी की चाय दुकान में भी गर्मी बढ़ जाती है। बहस-मुबाहिसे में लगे लोगों के टोन मध्यम से ऊँचे सुर में लगने लग जाते हैं। हालाँकि चाय बेचने वाले सिंहजी को बुद्धत्व प्राप्त है। वे इन तमाम बातों से निरपेक्ष रहते हैं। ज्यादा से ज्यादा वे बस इतना ही बोलते हैं: “होऊ कोउ नृप हमें का हानि। हमरा तो चाइए बेचे के बा”। वर्ष के ज्यादातर समय

में धोती को लूंगी की तरह लपेटे और गंजी को पेट पर मोड़कर चढ़ाए, वे चाय की पत्तियों को खोलाने में व्यस्त रहते हैं। दुकान के बाहर और भीतर चार-पाँच लकड़ी की बेंचें लगी हैं, जिस पर लोग बैठते हैं या कुछ लोग खड़े भी रहते हैं।

इसी अड्डे पर दो अन्य प्राणी भी उठते-बैठते हैं, जो उम्र के पाँचवे दशक में जा पहुंचे हैं और दोनों बचपन के मित्र हैं। एक दूसरे को अच्छे से समझते हैं। उपलब्धियों के हिसाब से दोनों का जीवन औसत है एवं अब कुछ बड़ा पाने और करने की चाहत भी नहीं है। राजीव प्रसाद पत्रकार हैं और मनोहर किराने की छोटी सी दुकान चलाते हैं। वे अमूमन वहाँ होने वाली बहसबाजी से परहेज करते हैं और आपसी बातचीत में ही मशगूल रहते हैं।

“मौसम का मिजाज भी कितना अजीब हो गया है न मनोहर ! सर्दी पड़ती है तो इतनी ज्यादा सर्दी कि लगता है सभी कुछ जम ही जाएगा, बरसात वैसी ही होती है, लगता ही नहीं कि कुछ बचेगा, सब बहा कर ले जाएगा। अभी देखो मार्च का महीना है और लगता है कि मई-जून की गर्मी आ गयी है।” राजीव प्रसाद अपने मित्र मनोहर के साथ शाम में सिंह जी की चाय दुकान पर चाय पीने आए थे और कह रहे थे।

यह उनका करीब-करीब रोज का ही काम था। शाम में थोड़ी देर की जब फुर्सत मिलती थी तो दोनों वहाँ चाय पीने और गप लड़ाने पहुँच जाते थे। चाय दुकान पर आने वाले सभी करीब-करीब एक दूसरे को जानते पहचानते थे एवं एक दूसरे से दुआ सलाम भी कर ही लेते थे।

“असली गर्मी तो माहौल में आ गयी है भाई। जिधर देखो उधर लोग एक दूसरे का सर फोड़ने के लिए लाठी लेकर बैठे हैं।” मनोहर ने कहा।

“सो तो है चारों तरफ नफ़रत की ऐसी हवा बह रही है कि क्या करें। हर आदमी लगता है पगलाया हुआ है। अब तो सिनेमा भी सिनेमा

न होकर, मेरा सिनेमा और तेरा सिनेमा हो गया है। जैसे सत्य आज, मेरा सत्य और तेरा सत्य हो गया है।“ राजीव प्रसाद ने चिंतित स्वर में कहा।

“लेकिन तुमको क्या लगता है, ऐसा क्यों हुआ, इसके लिए जिम्मेवार कौन है?” मनोहर ने पूछ लिया।

“जिम्मेवारी किसकी कही जाए? जिम्मेवारी उसी की कही जाएगी जिसके पास शक्ति है, ताकत है। अमन और भाईचारा ऐसा लगता है समाज से खत्म हो जाएगा। सारा कुछ अब घृणा को केन्द्र बिन्दु बना कर किया जा रहा है। राजीव ने उद्विग्न होकर कहा।

“भाई.... चारा!!! ह ह ह ..... इसी भाई चारे में हम सैकड़ों वर्ष गुलाम रहे।” राजीव अपनी बात कह ही रहे थे कि एक नवयुवक जो पास ही बैठे युवकों की झुंड का हिस्सा था और इन दोनों की बातें सुन रहा था, बीच में बोल पड़ा।

उसकी बातों में एक खिसियाहट थी और गुस्सा उसकी भावभंगिमा से समझा जा सकता था।

बीच में किसी का इस तरह बोल पड़ना यूँ तो राजीव प्रसाद को नागवार गुजरा पर वह युवक भी स्थानीय था और उससे लगभग रोज की भेंट थी। वह उसके बाप-चाचा को भी जानते थे, अतः उन्हें कुछ कड़ा बोलते नहीं बन पड़ा।

“भाईचारा और प्रेम के बिना कोई समाज नहीं चल सकता है, मेरे छोटे भाई। चारों तरफ नफरत और घृणा का माहौल हो तो न समाज प्रगति कर सकता है और न सुरक्षित रह सकता है। आपसी प्रेम और विश्वास ही वह स्तम्भ है, जिस पर किसी देश का भवन खड़ा होता है। इतिहास को खोदने बैठेंगे तो हमारे हाथ बस विध्वंस ही लगेगा। इतिहास की कोई सीमा नहीं होती। एक रेखा मिटाएंगे तो उसके बाद दूसरी रेखा आकर खड़ी हो जाएगी।” राजीव प्रसाद ने समझाने की कोशिश की।

बहस भारतीय समाज का सार्वजनिक एवं सर्वप्रिय शगल है। युवक और राजीव प्रसाद के बीच हो रहे इस बहस का हिस्सा बनने के लिए या यूँ कहें कि बहस का मजा लेने के लिए आस-पास खड़े लोग, उनकी ओर मुड़ गए और उनकी बातें सुनने लगे।

“ऐसा आप बुद्धिजीवियों की सोच है अंकल। इतिहास हमें सिखाता भी है, आगाह भी करता है कि उसकी पुनरावृत्ति भी संभव है। जो लोग इतिहास से नहीं सीखते हैं, इतिहास उन्हें सिखाने के लिए स्वयं को दुहराता है। जब देश पर आंतरिक और बाह्य संकट हों तो देश को बचाना सबसे पहला कर्तव्य है। जब हम बचेंगे तब ही तरक्की करेंगे। जब हमारा अस्तित्व ही संकट में होगा तो प्रगति लेकर हम क्या करेंगे?”

युवक ने अपनी दलील पेश की।

राजीव प्रसाद और मनोहर उस युवक का मुँह ताकते रह गए थे। क्या हो गया है, इन युवकों को? कहाँ से ऐसी बातें सीख रहे हैं?

“सब सोशल मीडिया की माया है राजीव भाई। सोशल मीडिया अनियंत्रित राक्षस हो गया है। जो उसके पास जाएगा, उसे निगल जाएगा। सारा ज्ञान आजकल वहीं से मिल रहा है। किताबें कौन पढ़ता है। सोच-विचार भी कौन करता है। सोशल मीडिया पर इन्स्टेन्ट नूडल्स की तरह ज्ञान मिलता है।” मनोहर ने राजीव को फुसफुसाते हुए कहा।

समय के साथ राजीव प्रसाद और मनोहर ने महसूस किया था कि युवाओं के बीच बहस में गरमागरमी रोज बढ़ती ही जा रही थी। वे लोग अब बहस करने में किसी से भी उलझ जा रहे थे। वे अब इन युवकों से एक तरह से डरने लग गए थे कि जाने कौन सा लड़का क्या बोलकर बेईज्जत कर दे।

उन्होंने कोशिश तो की कि अब चाय के अड्डे पर जाया ही नहीं जाए। कुछ दिनों तक उन्होंने जाने से परहेज भी किया। लेकिन यह वर्षों की आदत थी, सो जीवन में कुछ कमी सी लगने लगी थी। कुछ दिन रुक कर वे फिर जाने लगे।

इसी बीच राजीव प्रसाद ने फेसबुक पर एक पोस्ट डाली कि कैसे देश में बढ़ रहा धार्मिक उन्माद, आपसी रंजिश और वैमनस्यता देश के सर्वांगीण विकास के लिए नुकसानदायक है। इसी क्रम में उन्होंने एक फिल्म की आलोचना कर दी, जिस पर समूचा देश दो धड़ों में बँटा हुआ था।

उस दिन राजीव प्रसाद और मनोहर अपने रोज के समय पर जब चाय दुकान में पहुँचे तो वहाँ युवकों की टोली मानो उनका ही इंतजार कर रही थी। राजीव ने ऐसा सोचा भी नहीं था। जो बात उचित न लगे उस पर अपनी बेबाक राय देना उन्हें पसंद था और वह ऐसा हमेशा से करते आए थे। लेकिन युवकों की जो नई पौध थी, उन्हें ऐसा करना पसंद नहीं था। युवकों ने आते ही उन्हें थाम लिया।

“आप ऐसा कैसे लिख सकते हैं? क्या फिल्म में सत्य नहीं दिखाया गया है? वो हिंसा करें उससे नफरत नहीं फैलती और कोई हिंसा पर फिल्म बना ले तो नफरत फैल जाती है? कैसी बीमार सोच है आपकी?” राजीव के आते ही सवालियों की बौछार कर दी गयी।

आज सारे युवक इकट्ठा उग्र हो रहे थे। उनके चेहरे-मोहरे का भाव बदला हुआ था और बड़ों की मान -मर्यादा ऐसा लगता था, सब भूल बैठे थे।

राजीव को ऐसी अपेक्षा नहीं थी। वे सब उसके मुहल्ले के ही युवक थे। पहले तो वे शांत रहने की कोशिश करते रहे। लेकिन जब युवकों ने उन्हें लगातार भला बुरा कहना जारी रखा तो उन्होंने कहा:

“देखो नफरत का जवाब नफरत तो नहीं हो सकता, उन्होंने हिंसा की तो हम भी बदले में हिंसा करें, इससे तो हिंसा और बढ़ेगी। इसका कोई अंत नहीं होगा। आग से कभी आग नहीं बुझाई जा सकती। आग का प्रतिकार पानी से ही करना होगा। हिंसा मानव की मूल प्रवृत्ति नहीं है। मानव की मूल प्रवृत्ति प्रेम है”।

“वे हिंसा करें तो हम क्या उनकी आरती उतारें, इससे हिंसा थम जाएगी? यह सब गाँधी जी पहले ही करके देख चुके हैं। उनकी हिंसा कभी बंद नहीं होगी क्योंकि हिंसा उनकी मूल प्रवृत्ति है, यह जेहाद है।” एक युवक ने उग्र होकर कहा।

राजीव प्रसाद ने मनोहर की ओर देखा, मानो पूछ रहे हों, इन बच्चों को यह सब कौन सिखाता है, क्या हो गया इन बच्चों को?

मनोहर क्या कहते चुपचाप चाय पीते रहे।

लेकिन युवक चुप नहीं रहे। उनके भीतर गुस्सा भरा था। इस बीच कई दूसरे लोग भी तमाशाइयों की भीड़ में शामिल हो चुके थे। यह भीड़ भी युवकों की बात से सहमत दिखाई देती थी। वे भी कहने लगे.... ये लड़के ठीक कहते हैं।

“जानते हैं, अंकल यह प्रेम -अहिंसा, आग-पानी की बात जो आपलोग करते हैं न, आप लोग वास्तव में कायर हैं, कायरों वाली बात करते हैं।” युवकों के बीच से आवाज आयी।

भीड़ हँसी... उपहासात्मक हँसी ....

अभी तक राजीव प्रसाद जो सारी बातें शांति से सुन और कह रहे थे, अपने लिए “कायर” सम्बोधन सुनते ही विचलित हो गए। शांति और प्रेम की बात करना कायरता नहीं है। अहिंसा के लिए हिंसा से ज्यादा दृढ़ता की जरूरत होती है। वे कायर नहीं हैं। उनके चेहरे पर तनाव आ गया और मुट्टियाँ भींच गयीं। वे उठे, मानो वर्षों से ठहरा हुआ लावा जमीन फोड़ कर निकलना चाहता हो... उस युवक की ओर झपटे और गुस्सा से फड़कता हुआ उनका हाथ अभी उस युवक के गाल पर पड़ता उसके पहले ही मानो किसी अदृश्य शक्ति के वश, हाथ वहीं थम गया।

मनोहर ने यह सब देखा ... युवकों ने देखा ..... वहाँ खड़ी भीड़ ने देखा ....

राजीव का एक हाथ विद्रूप है, चितकबरा, जैसे कभी आग से जल

गया हो और उसके निशान बुरी तरह शेष रह गए हों।

मनोहर ने राजीव को पकड़ का बिठाया। मनोहर के पकड़ते ही राजीव की मुट्टियाँ ढीली पड़ गयीं। जैसे आंच दिखाते ही मोम ढीले पड़ जाते हैं।

मनोहर जानता है राजीव सब कुछ है, कायर नहीं है। वह बहादुर है, साहसी है। वह उसके बचपन का साथी है, उसके साहस का साक्षी।

मनोहर ने राजीव की आँखों में इस आश्चर्य के साथ देखा कि तुम कायर नहीं हो।

राजीव ने अपने हाथों की ओर देखा, चितकबरा रंग, विकृत, झुलसी हुई एक दूसरे पर चढ़ी हुई चमड़ी। वह अपने हाथों को उठाकर ऊपर अपने चेहरे के पास ले गया और गौर से देखने लगा..... फिर वह धीमे से हँसा “कायर की हथेली”!!!

कहीं दूर अवचेतन से आवाज आयी “बहादुर की हथेली!!”

उसे याद आया, जब वह अपनी हथेलियों की कुरूपता को लेकर दुःखी होता था तो नेहा उसकी हाथों को अपने हाथों में लेकर कहती थी, “बहादुर की हथेली”। बहादुर की हथेली ऐसी ही होती है राजीव। सुंदर और नाजुक हथेलियाँ तो कमजोरों और कायरों की होती हैं। लेकिन वादा करो कि अब तुम लड़ाई-झगड़े, दंगे-फसाद नहीं करोगे।

नेहा मीठी हवा के झोंके की तरह थी। वह तो एक आवारा की जिंदगी जी रहा था। दिन भर दोस्तों के साथ घूमना, गाँजा, सिगरेट धूकना। इन्हीं दोस्तों में एक था प्रेम शर्मा। वही प्रेम शर्मा जो आजकल नेता है। तब तक वह दो कल्ल कर चुका था। उसी प्रेम शर्मा के साथ उसका घूमना फिरना था। पहाड़ टोली के नीचे हरमु नदी के मैदान में जुआ खेलना और प्रेम के साथ मिलकर मार -पीट करना, यही तो उसका काम था। और उसका सबसे प्रिय काम था बम बांधना। वह इतनी तेजी से और इतनी कुशलता से देशी बम बांधता था कि उसके दोस्त उसे राजीव बम कहते थे।

वह 1992 की बात थी। एक नए धार्मिक नारे का खूब प्रचलन हुआ था। एक बड़े नेता देश भर में रथ लेकर घूम रहे थे और एक मस्जिद को ढहा कर मंदिर बनाने की बातें हो रही थीं। इन सबकी परिणति 6 दिसंबर को हुई, जब मस्जिद सचमुच ढहा दी गयी।

लेकिन इसकी प्रतिक्रिया अत्यंत तीक्ष्ण हुई। मस्जिद को ढहा देने के बाद कितने ही मंदिर और उससे बढ़कर देह मंदिर देश-विदेश में ढहा दिए गए।

ऐसी ही प्रतिक्रिया राँची के हिन्दपीढ़ी मुहल्ले में हुई थी।

नारा-ए-तकबीर और अल्लाह हूँ अकबर करती हुई हजारों लोगों की भीड़ हिन्दपीढ़ी की गलियों में उतर आयी थी।

वहाँ रहने वाले हिन्दू, जो कि मुहल्ले में अल्पसंख्यक थे, अपने घरों में दुबके थे।

आगजनी की घटनाएं हो रही थी। लोगों के घरों पर पत्थर फेंके जा रहे थे, दरवाजे तोड़े जा रहे थे। माहौल भयावह था। पुलिस प्रशासन स्थिति को नियंत्रण करने में असफल था। हिन्दपीढ़ी के पश्चिम में स्थित किशोरगंज मुहल्ले के कुछ नवयुवकों ने तय किया कि किसी तरह हिन्दपीढ़ी के हिंदुओं की रक्षा की जाए। लेकिन कैसे? चंद युवक उतनी बड़ी भीड़ का सामना कैसे करेंगे, वो भी निहल्ले?

ऐसे ही मैं याद आया था राजीव बम।

राजीव बम को बुलाया जाए। लेकिन राजीव ने साफ मना कर दिया कि नहीं वह बम नहीं बांधेगा।

“लेकिन हिन्दू के बात हऊ भयवा। नयं बांधवे तो सब खत्म हो जैतवा।” प्रेम शर्मा ने बहुत चिंतित स्वर में कहा था।

इस बात पर न जाने क्या प्रेरणा मिली कि राजीव बम बांधने के लिए तैयार हो गया। लेकिन उसने साफ कह दिया कि इससे आगे वह कुछ नहीं करेगा।

तय हुआ कि राजीव बम बांधेगा और बाकी लड़के जाकर हिन्दपीढ़ी में बम फेंक कर भाग आएंगे।

राजीव जल्दी-जल्दी बम बांधने लगा। असर भी हुआ। जैसे ही दंगाई भीड़ को लगा कि सामने वाला पक्ष भी अब लड़ने पर आ गया है, उनके पास भी बम है, वे पीछे हट गए।

लेकिन इस बीच जो हुआ, वह नहीं होना था। बम बांधने के क्रम में एक बम पर रस्सी का दवाब ज्यादा हो गया और बम राजीव के हाथों में फट गया।

राजीव का हाथ बुरी तरह घायल हो गया। बुरी तरह लहलुहान राजीव ने लेकिन फिर भी हिम्मत नहीं हारी थी। रुमाल से हाथ को लपेट कर वह पैदल ही घर चला गया था। मामला पुलिस में जाते-जाते बचा था।

उसके पिता ने बहुत मुश्किल से मामला पुलिस में जाने से रोका था। अपनी गाड़ी कमाई का एक हिस्सा उन्होंने इन सबमें खर्च कर दिया था। हाथ ठीक होने में कई महीने लग गए। लेकिन हथेली की कुरूपता

सदैव के लिए रह गयी।

राजीव के माता-पिता जो पहले उससे दुःखी रहते थे अब उसके भविष्य की चिंता में गलने लगे। इसी चिंता में एक दिन उसकी माँ चल बसी। इस घटना ने राजीव को झकझोर कर रख दिया। वह ज़िंदगी से भागने लगा। किसी भी बात में उसे अब रुचि नहीं रही। उसे कोई चीज अच्छी नहीं लगती।

ज़िंदगी के इसी उजड़े दयार में उसकी मुलाकात नेहा से हुई थी। नेहा से उसकी मुलाकात एक नाटक के क्रम में हुई थी। वह अपनी टीम के साथ एक नुक्कड़ नाटक करने राजीव के मुहल्ले में आई थी। वहीं कुछ मनचले लड़कों ने नेहा को देखकर फबितियाँ कसी थी। राजीव ने उन लड़कों का विरोध किया। लड़के राजीव से डरते थे। उसके बाद से राजीव एक तरह से उनकी नाटक टीम का हिस्सा ही बन गया था। जहाँ-जहाँ नाटक की टीम जाती वह भी वहाँ चला जाता। वह नाटक की प्रस्तुति में कुछ मदद करता। धीरे-धीरे वह छोटे-मोटे रोल भी करने लग गया।

राजीव अनजाने ही सूते हुए नाक वाली साँवली नेहा के प्रेम आकर्षण में खींचा चला गया था। दुनिया उसे अब एक बेहतर जगह लगने लगी थी। राजीव के लिए आकाश अब अधिक नीलप्रभ हो गया था। देह को छू कर जाती हवा शीतल लगती और वातावरण में संगीत की स्वरलहरियाँ गूँजती प्रतीत होती। नेहा की हर बात में एक सम्मोहन था, ऐसा सम्मोहन जो राजीव के दिमाग को पूरी तरह अपने कब्जे में ले लेता था।

हालाँकि नेहा उम्र में उससे पाँच वर्ष बड़ी थी। इसलिए उसकी भूमिका कभी कभी अभिभावक की तरह भी हो जाती थी।

राजीव तुम आवारा दोस्तों के साथ उठना बैठना बंद क्यों नहीं कर देते?” एक दिन नेहा ने राजीव से कहा था।

राजीव ने फिर कभी उन दोस्तों की ओर रुख नहीं किया। यद्यपि कि प्रेम शर्मा ने कई बार साथ में खाने-पीने की दावत देकर उसे ललचाया था।

हालाँकि राजीव आज भी सिगरेट पी लेता है पर गाँजा और शराब उसने फिर कभी हाथ नहीं लगाया।

“राजीव तुमको क्या करना अच्छा लगता है? किस बात से तुमको सबसे ज्यादा खुशी मिलती है?” नेहा ने एक दिन उसका वही जला हुआ हाथ अपने हाथों में लेकर पूछा था।

राजीव के पास इसका कोई जवाब नहीं था। उसे क्या अच्छा लगता है, उसने तो कभी इस तरह से सोचा ही नहीं था। सिगरेट पीना, लड़ाई करना इसके अलावे भी कुछ अच्छा लग सकता है, उसे पता नहीं था।

लेकिन तभी उसे लगा नेहा के साथ रहना तो उसे अच्छा लगता है। वह कहना चाह रहा था कि उसका साथ उसे बहुत अच्छा लगता है। लेकिन कह नहीं पाया। उसने कहा उसे नाटक में रोल करना अच्छा लगता है।

छोटे-छोटे रोल से लेकर अंधायुग में अश्वत्थामा तक की भूमिका राजीव ने शीघ्र ही तय कर ली थी। उसके अभिनय कौशल की सभी तारीफ करते। नेहा तो उसकी प्रशंसा करते नहीं अघाती। उसे खुद भी यकीन नहीं होता कि वह इतना अच्छा अभिनय कर सकता है। लेकिन यह प्रतिभा उसके अंदर छुपी थी जो समय पाकर प्रस्फुटित हुई थी। उसने अपने भीतर इस दौरान बहुत बदलाव देखा। उसके जीवन के प्रति दृष्टिकोण में बहुत बड़ा परिवर्तन आया।

इस दौरान नेहा मजबूत स्तम्भ की तरह उसके साथ खड़ी रही थी। जैसे लता वल्लरियां मजबूत वृक्ष का सहारा पाकर तेजी से ऊपर की ओर बढ़ती है। राजीव अभिनय में नए सोपान तलाशता रहा। उसे जीवन सार्थक लगने लगा था। यह समय बहुत तेजी से बीता।

लेकिन जीवन सीधे रास्ते पर चलने का नाम नहीं है। एक दिन नेहा गैस भरे गुब्बारे की तरह आकाश में उड़ गयी और वह किसी बच्चे की तरह बेबस बस देखता रह गया।

नेहा को मुंबई तब के बंबई में सिनेमा में काम करने का अवसर मिल गया था और नेहा किसी भी तरह वह अवसर गँवाना नहीं चाहती थी। राजीव क्या करता? उसने मन को समझाया कि यही नियति है। प्रेम की यही नियति होती है। कृष्ण और राधा के प्रेम का अंत भी तो यूँ ही विछोह में हुआ था।

नेहा चली गयी और साथ ही चला गया राजीव के नाटकों का शौक भी। पर विछोह समय के रथ को धीमा नहीं कर पाता है। समय की अपनी गति है, अपना आयाम है। समय बीता और राजीव पत्रकार बन गया। उसने कोशिश करके पुरानी स्मृतियों को खुरच-खुरच कर निकाल दिया। उसका पुराना जीवन अब इतिहास बन गया था। पर पुराने जीवन के स्मृति चिह्न के रूप में कुरूप हथेली उसके पास रह गयी थी। इन हथेलियों पर नेहा की छुआन का नर्म अहसास कभी-कभी पीड़ बनकर दिल में उठता रहता था।

आज उसे अपने लिए कायर का सम्बोधन सुनकर दिल में जोर की हुक उठी थी।

उसे नेहा की याद किसी चुभन की तरह महसूस हुई थी। आज नेहा होती तो कहती, यह कायर की नहीं, बहादुर की हथेली है। इसी हथेली ने कई लोगों की जान बचायी थी। जाने के पहले नेहा उससे वचन लेकर गई थी कि वह कभी मार-पीट नहीं करेगा। राजीव तो उसके आगे सर्वस्व देने को तैयार था, यह वचन तो बहुत छोटी सी चीज थी।

“यह दुनिया प्रेम से भी जीती जा सकती है और लड़ाई से भी, लेकिन प्रेम की जीत चिरस्थायी होती है और लड़ाई की जीत की उम्र बहुत कम होती है। दुनिया को प्रेम से जीतने की कोशिश करो। तुम बहादुर हो। जब एक बहादुर इंसान प्रेम की बात करता है तो उसका प्रभाव ज्यादा होता है। दुनिया को तुम्हारे प्रेम की जरूरत है।” नेहा ने जाने से पहले उसे समझाया था।

मनोहर ने उसके कंधे पर हाथ रखा और उसकी आँखों में देखा, मानो कहा हो मैं जानता हूँ तुम कायर नहीं, बहादुर हो।

“चलो अब घर चलें।” मनोहर ने कहा।

क्या हुआ अंकल ? आप आग का प्रतिकार तो आग से करने लगे थे। आपको तो गुस्सा आ गया। प्रेम की बात करते-करते आप क्रोध की आग में कूद पड़े।” युवक ने कटाक्ष किया।

“लेकिन प्रेम ने क्रोध का हाथ थाम लिया, यह तुम नहीं समझ पाए बच्चे”। मनोहर ने कहा।

“राजीव कायर नहीं है, बहादुर है। बहादुर होकर प्रेम की बात करना बड़ी बात है। कमजोर होकर हिंसा और नफरत की बात करना बहुत सरल है।” मनोहर ने आगे कहा।

युवक उन्हें अपलक, निहारता रहा। मानो निर्द्वंद्व होने की कोशिश कर रहा हो।

दोनों उठकर वहाँ से चले गए।

आसमान में कहीं से टहलता हुआ बादल का एक टुकड़ा बँतू चौक के ऊपर आकर ठहर गया था। आसमान में टिमटिमाता एक तारा बीच से झाँककर अपनी उपस्थिति का एहसास करा रहा था।



आशीर्वाद, बुद्ध विहार, पो ऑ - अशोक नगर, राँची - 834002 झारखंड  
मो. - 8789263238 ईमेल - neerajcex@gmail.com

## निक्कड़े फंगडू, उच्ची उडान (छोटे पंख, ऊँची उडान)

डॉ. निशा नाग

“अर्थात् तेरी चूड़ियों को आग लगे, तेरा सतलड़ा हार नदी में बह जाए जब गोरी का पति घर आएगा तभी सुख भाग होंगे। गीत का उपसंहार इस रूप में होता है...धन्न धन्न तेरे माँ बाप गोरिये जिना तू धेतडी जाई/धन्न धन्न तिस रसिए दा भाग /जिस दे तू लड लाई”। अर्थात् तेरे माता पिता धन्य हैं जिन्होंने तेरी जैसी पुत्री को जन्म दिया। वह पति धन्य है जिसके साथ तेरा परिणय हुआ। जैसे मर्दों के लिए चौपाल होती है वैसे ही गाँवों में स्त्रियों के लिए कुँए रहे हैं। यह अनायास नहीं है कि लोक गीतों में अनेक के प्रसंग कुँए पर पानी भरती स्त्रियों के साथ जुड़े रहे हैं। कुँए पर पानी भरती एक ऐसी स्त्री के गीत, कांगड़ा के गीतों के सिरमौर हैं। ‘खूहे पर बैठी हाँ नी मुटियारे/ इक गल सुणदी जाईयाँ नी मुटियारे’। इस तर्ज पर अनेक गीत मिलते हैं

मनुष्य के अभिव्यक्ति कौशल के साथ ही लोक साहित्य और उसमें भी संभवतः गीत ने सबसे पहले जन्म लिया। इसकी परंपरा उतनी प्राचीन है जितनी मनुष्य की। अर्नेस्ट फिशर श्रम से कलाओं का जन्म मानते हैं। उनके अनुसार आदिम समाज की अवस्था में वैयक्तिक प्रतिभा से संपन्न कोई कृति नहीं थी वरन एक समष्टिगत उत्पादन थी। आदिम समाज परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध, सघन समष्टिवाद का रूप था। कला अपने सभी रूपों में अर्थात् भाषा, नृत्य, लयात्मक रागों, जादुई समारोहों आदि में सर्वोत्तम सामाजिक गतिविधि थी, जो सबके लिए समान थी”। श्रमपूर्ण और अकृत्रिम जीवन अंतरावलंबित सम्बन्ध से लोक गीतों को जन्म देता है। लोक-गीत जनसामान्य हृदय की अकृत्रिम अभिव्यक्ति हैं।

आज यह सामाजिक और साहित्यिक अध्ययन का केन्द्र बनते जा रहे हैं क्योंकि सामान्य जनता की सोच, अनुभूति और स्मृत इतिहास को जानने का ठोस आधार यह लोकगीत हैं। यह निरंतर गतिशील होते हैं। इसीलिए लोकसाहित्य को गतिशील और ऐतिहासिक विज्ञान स्वीकार किया गया है। भारत के उत्तर में शिवालिक पर्वतों की गोद में बसे काँगड़ा घाटी के लोकगीतों में पर्वतों की सुन्दरता का चित्रण प्रमुख रूप से है। इन लोकगीतों की भाषा डोगरी है। यह भाषा प्रमुख रूप से पोठोहारी, लहँदा और कुछ हद तक राजस्थानी का मिश्रण है। यह बहुत मिठास भरी है शायद अपने खूबसूरत प्राकृतिक परिवेश के कारण इसमें यह मिठास आ गई हो। पारदर्शी ठंडी हवा, शीशे सी चमकती नदियाँ और छोटी छोटी जल धाराएँ (जिन्हें कूलें कहा जाता है) गहरे खड्ड, कल-कल करते झरने, जंगली फूलों की छटा, बाँस के सघन कुँज, देवदारू, सरू, चीड, अखरोट के पेड, अलगोज़ा तथा बाँसुरी बजाते चरवाहे, सुंदर चारागाह, हरे-भरे सीढीदार खेत और बागान, और इन सबसे बढ़कर काँगड़े की सुन्दर गोरियाँ (जिन पर अज्ञेय ने अपना प्रसिद्ध गीत लिखा है) इन सबका काँगड़ा के लोक गीतों में खुलकर वर्णन मिलता है।

काँगड़ा के अधिकतर लोकगीतों में प्रदेश के प्रति गहरा प्रेम झलकता है। इन लोकगीतों में ‘जीणाँ पहाडा दा जीणाँ’ की टेक मिलती है। अर्थात् वास्तविक जीवन तो पहाड पर ही है। इस टेक के अनेक गीत मिलते हैं

“पहाड बूटे कन्ने जगमग करदा दिक्खी दिक्खी मनेगी छैल उच्चे लगदा”

(अर्थात् पहाड पेड पौधों के साथ जगमग करता है। ऊँचा पहाड देख देख कर मन प्रसन्न होता है।) कुछेक गीतों में पहाडों और शहरों मध्य अंतर भी दर्शाया गया है।



‘शहराँ शहराँ बिच नालू जे बगदे/पहाडाँ च बगदियाँ गंगा’

अर्थात् शहरों में नाले बहते हैं और पहाड़ों पर गंगा बहती है। काँगडा व्यास नदी की घाटी है। यहाँ नाटी-नाटी पहाड़ियों और छोटे छोटे घरों, बंगलों, मंदिरों के बीच सुन्दर सीढीदार खेत और चाय बागान हैं। लहरों की तरह लहराते इन खेतों के किनारे अक्सर जंगली गुलाब के फूलों की मेड़े हैं। काँगडा के लोकगीतों में वहाँ की सुन्दरता के अनेक गीत गाए गए हैं।

“अथे वगदी विआसा वे अडिया.....खडी है धौलाधार वे अडिया/सुहाना साडा देस काँगडे द टीला” (यहाँ व्यास नदी बहती है धौलाधार की चोटियाँ यहाँ खड़ी हैं।)

किसी प्रदेश की सुन्दरता का कारण और उसके प्राकृतिक दृश्य ही नहीं उसके निवासी भी होते हैं। काँगडा घाटी का सौंदर्य इसमें बसने वालों के कारण और भी बढ़ जाता है। इस रमणिक परिवेश का प्रभाव कहिए या वहाँ के निवासियों का सहज निश्चल स्वभाव यहाँ के अधिकांश गीत प्रेम के रंग में रंगे हैं। इन गीतों में मिलन और विरह के सुन्दर चित्र हैं, रमणियों का चकाचौंध कर देने वाला रूप है, उनके प्रेम संदेश हैं साथ ही आभिजात्य पर गहरी चोट भी है। ‘यहाँ बीसियों प्रेमगीत प्रचलित हैं। इनमें फुल्मू-राँझू, कुँजु-चँचलों और राजा-गिदाँ प्रसिद्ध है। ये दिलकश प्रेम-गीत नौजवान दिलों के दुखों और खुशियों का वर्णन करते हैं। ‘राजा गदाँ’ गीत राजा संसारचंद द्वारा गदण नोखू को फुसलाने की कहानी कहता है। सुन्दर गदाँ राजा की प्रियतमा होने के भाग्य को तो स्वीकार लेती है पर उसे अपने पहले पति को भूलने में कठिनाई होती है जो आदिवासी गद्दी है।’ ऐतिहासिक तथ्य है कि सुन्दर नारी पर रीझकर शक्तिशाली राजाओं /सामंतों द्वारा उन्हें बलात् अपने महलों में ले आने की परंपरा रही है। काँगडा के राजा संसारचंद ने भी बंदला की भेड़ें चराने वाली गदण नोखूपर रीझकर उसे अपनी रानी बना लिया था। इस घटना से संबंधित अनेक गीत गाए जाते हैं। जहाँ राजा राजसी सुख देकर नोखू को रिझाना चाहता है।

‘लूणे दा खाणा गदणी छोडी देणा? सोने दे थाळा जो आवो/

ओ मेरी बाँकिए गदणे/

थालियाँ दा खाणा राजाजी राणियाँ जो बणिया

रेशमी पुशाकों राजाजी राणियाँ जो बणियाँ/

लूणे दा खाणा पियारा’ उनाँ दा चोला पियारा” नोखू गदण स्वच्छंद जीवन जीने वाली है उसे रेशमी पोशाक और सोने के थाल से अधिक मूल्यवान अपनी स्वतंत्रता है।

काँगडा के प्रेम गीतों में एक और परंपरागत प्रेमियों की गाथा है। जैसे चम्बा की प्रसिद्ध प्रेमकथा कुँजु चँचलो, ‘राति बो बराती मत आऊंदा कुँजुआ बैरियाँ भरियाँ बंदूकाँ हो) इसी तरह राँझू फुल्मों, गंगी सोहणा पृथ्वी सिंह-इंदर देईकी कथाएँ थी। चिनाब नदी के आशिक-माशूक तथा माहिया की तरह ये गीत प्रेमाख्यानकों पर आधारित हैं। प्रेम में जाति-पाँति तथा वर्ग की समस्या को ये गीत सामने रखते हैं। एक अन्य तरह के गीत भी चाव से गाए जाते हैं, जहाँ इस बात का जिक्र आता है कि एक राजपूत मियाँ ने मैना नाम की अवर्ण जाति की स्त्री से विवाह कर लिया। विवाह के बाद उसे वह सारे काम करने पड़े जो उसकी हैसियत के विरुद्ध थे। ‘थोड़े मियेँ हल भी नी बाँहदे हो /मियाँ चपली बणादे तेरी सौँहँ’ अर्थात् मियाँ लोग तो हल भी नहीं चलाते यहाँ मियाँ चपल बना रहा है।’ प्रेम में इस तरह के समर्पण की प्रशस्ति बिरले ही देखने को मिलती है जहाँ व्युत्क्रमानुपात से पुरुष स्त्री के लिए अपनी जात- बिरादरी सब कुछ त्याग दे और फिर भी वह गर्वीले भाव से जीवन यापन करे। दूसरी ओर सहज प्रेम की गाथाएँ भी यहाँ हैं जहाँ जिनमें कभी प्रेमी अपनी प्रेमिका को पेड की टंडी छाह तले सुस्ताने के लिए बुलाता है, तो कभी कोई विरह पीड़िता दूर देश बसे अपने प्रियतम को काग के माध्यम से संदेश भेजना चाहती है। इन प्रेम गीतों में शिकायतों, उलाहनों, मजबूरियों और हृदय में बसी कसक की कथाएँ हैं। वियोग गीतों में अधिकांशतः परंपरागत रूप से स्त्री के हृदय की पीडा का बखान है। रोजी-रोटी की तलाश में शहरों को पलायन करने वाले पतियों-प्रेमियों की पत्नियों-प्रेमिकाओं के मनोभाव यहाँ मिलते हैं।

‘कळेजुए लग्या वो दाग बीती गल्लाँ याद आवदी /

मन नहीं चैन पाँदा ओ पाँदा /बडे बुरे होए भाग ओ’। (कलेजे पर दाग लग गया है। मन कहीं भी चैन नहीं पाता। बीती बातें याद आती हैं। भाग बिगड़ गया है।)

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों के लिए बंधे बंधाए विधान में घर का काम करना तथा अपने सत और पत की रक्षा करना है। स्त्री के सत का मूल्य वही है जो समाज ने निर्धारित कर दिया है। लोकगीत भी इससे अछूते नहीं हैं। समाजार्थिक सम्बन्धों में जिस मात्रा में जटिलता और विशेषीकरण के तत्व आए हैं उसी तरह मनुष्य की सामूहिक चेतना भी प्रभावित है। पहाड़ी पुरुष का पहाड़ से पलायन का एक अन्य कारण फौज में नौकरी रहा है। मुगल काल से लेकर आज तक यह परंपरा चली आ रही है। वियोग की इस लम्बी अवधि में विविध आपदाओं से गुजर करसतीत्व को संभाल कर रखने वाली स्त्रियों के गुण भी गाए जाते हैं।

इस लोक स्वीकृत आदर्श अर्थात् 'सत' की रक्षा करने वाली यह स्त्री कुँए पर जल की याचना करने वाले किसी ढोल सिपाही की लाख प्रार्थनाओं से भी नहीं पसीजती चाहे उसे सतलडे हार के या आभूषणों के लाख प्रलोभन दिए जाएँ।

जिसका उत्तर वह देती है- "अग्ग ता लग्गे तेरी चूडियाँ/जो नदिया रूडिया सतलडी/जद घर आहूँगा लाल गोरी दा / ताँ हल करनी सुख घडी"।

अर्थात् तेरी चूडियों को आग लगे, तेरा सतलडा हार नदी में बह जाए जब गोरी का पति घर आएगा तभी सुख भाग होंगे। गीत का उपसंहार इस रूप में होता है...धन्न धन्न तेरे माँ बाप गोरिये जिना तू धेतडी जाई/धन्न धन्न तिस रसिए दा भाग/जिस दे तूँ लड लाई'। अर्थात् तेरे माता पिता धन्य हैं जिन्होंने तेरी जैसी पुत्री को जन्म दिया। वह पति धन्य है जिसके साथ तेरा परिणय हुआ। जैसे मर्दों के लिए चौपाल होती है वैसे ही गाँवों में स्त्रियों के लिए कुँए रहे हैं। यह अनायास नहीं है कि लोक गीतों में अनेक के प्रसंग कुँए पर पानी भरती स्त्रियों के साथ जुड़े रहे हैं। कुँए पर पानी भरती एक ऐसी स्त्री के गीत, काँगड़ा के गीतों के सिरमौर हैं। 'खूहे पर बैठी हाँ नी मुटियारे/ इक गल सुणदी जाईयाँ नी मुटियारे'। इस तर्ज पर अनेक गीत मिलते हैं जहाँ एक बाँका सिपाही पानी भरती स्त्री से जल पिला देने का अनुरोध करती है। किसी-किसी गीत में यह नारी उसे पानी पिला भी देती है लेकिन उसका 'अन्य' अनुरोध स्वीकार नहीं करती। चाहे वह सिपाही बाद में उसका पति ही क्यों न निकले।

लगभग सभी बोलियों के लोकगीतों में विरह गीतों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। स्त्रियों की व्यथा विरह गीतों में विशेष रूप से अभिव्यक्त होता रहा है। परदेस गये साजन की नव विवाहिता को उसकी सास और भी अधिक सताती है। सपत्नी का भय भी ऐसी विरहणी नारी को निरंतर सताता है कि परदेस गए पति का क्या भरोसा। यह दुख इतना गहरा है कि वह गा उठती है –

‘चोली फटे तां में टाँकियाँ लावां/अम्बर फटे किहाँ सीणाँ/

गल्ल सुणी जा हो/दिखदियाँ दिखदियाँ गुजरियाँ रातां/

पता नी तिज्जो कुण जिन्हाँ रोकया'?" चोली फटे तो टाँकी लगाई जा सकती है पर आकाश फट जाए तो क्या हो? पता नहीं कौन है जिसने तुम्हें रोका है। इन गीतों में नारी का समस्त दुख समाया हुआ है। इस याचना के साथ " नाम कटाई घर आ आपणे"। यह सच है कि पहाड़ का पानी और पहाड़ की जवानी उसके काम नहीं आते रोजी-रोटी की

तलाश में पहाड़ का युवा निरंतर शहरों अथवा सेना की ओर जाता रहा है। लोकगीतों में इसका निरंतर आख्यान मिलता है "भला सिपाहिया डोगरेया /दो दिन छुटियाँ आईजा /तेरे बिना मंदा लगदा"। (प्यारे डोगरे सिपाही दो दिन के लिए छुट्टी लेकर आ जाओ आपके बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता।) यह विरह गीत बारहमासा की तर्ज पर भी मिलते हैं- "सावण महिने पींघा परईयाँ/ तुसी गए परदेस असीं झूट न लईयाण?--कतिक महिने आई दिवाली/ तुँसाँ रहे परदेस /असाँ मुल्ल न मनाई"।

ससुराल में रहती हुई स्त्री के दुखों का वर्णन लोकगीतों का प्रमुख विषय रहा है, काँगड़ा के गीत भी इसका प्रमाण हैं। ससुराल का वर्णन करते हुए स्त्री कहती है-

‘निककडे फंगडू उच्ची उडान/

जाईयँ थंबणा कियाँ शमाण /

चान्दनी आग कियाँ लान्दियाँ/

ससू नणानू दे झूठे बयान/

निककी मूँदी कने सुणे ए जान/

झूटियाँ रमजाँ कियाँ सहनियाँ।

अपने देसे तो मार उडारियाँ /

बिछुडी आईयँ धियाँ कुआरियाँ/

बूटे कने नईयाँ जान पछान/

बखलियाँ गैलीं कियाँ खैणियाँ"। (छोटे पंख है उँची उडान आसमान कैसे थामा जाये? सास और ननद के झूठे आरोपों को मैं चुपचाप सोने का बहाना किए सुनती रहती हूँ। अपने देश से उड़ान भरकर कुँवारी बेटियाँ ऐसी जगह पहुँच जाती हैं। जहाँ उनकी जान-पहचान किसी नन्हे पेड़ से भी नहीं होती।) इन गीतों की भाव सरणि वही है जो अन्य प्रदेशों के लोकगीतों में भी पाई जाती है क्योंकि ससुराल में रहती हुई स्त्री की स्थिति लगभग पूरे भारत में एक सी है। किसी गीत में भाई से लिवा लाने का अनुरोध है तो कहीं मायके में माँ के प्यार का जिक्र है। भाई के यह पूछने पर कि तुम्हारी सास और ननद कैसी हैं? बहन उत्तर देती है " सास आग का पूला है और ननद बिजली। 'ननदिया बिजुलिया होए' की कहावत यहाँ भी सिद्ध है। परंतु बहू का अपना पाला हुआ धर्म भी है जहाँ वह कहती है 'चंदे दी चाँदनी चंदे कने/ मैं मंद नहीं बोलणा नन्दे कने' पहाड़ का सरस दृश्य इन गीतों में भी उभर आता है जहाँ बहू घर-भर में सबसे अनुरोध करती है कि उसे मायके जाने दिया

जाए पर उसकी बात कोई नहीं सुनता। अंत में हारकर वह पहाड़ की चोटी से ही अनुरोध करती है कि वही झुक जाए ताकि वह उसके पार स्थित अपने मायके को देख सके। "पाली ओ धारे ओ रूग बुगिए कि थोडी भैणे निवदी होई जा तुज्झ पिच्छे मेरा पेईया पियोका मिंजो मुईये देखणे दा चाँ"।

पहाड़ कीचोटी से यह बहनापा प्रकृति और नारी दोनों के समवाय का प्रतीक हैं। दोनों का ही दोहन स्वार्थ के लिए किया जाता है।

संस्कार गीत, लोक गीतों का महत्वपूर्ण अंग रहे हैं। अन्य भाषाई प्रदेशों के लोकगीतों की तरह काँगड़ा के लोक में भी जन्म (यहाँ बेटे के जन्म पर 'पँजाप' और बेटे के जन्म पर 'गूतर' की प्रथा है दोनों में ही गीत गाए जाते हैं।) यज्ञोपवीत और विवाह के अवसर पर परंपरागत गीत गाए जाते हैं। विवाह गीतों में सेहरे तथा घोड़ियाँ, समूहत और हल्दी के गीत, जैसे "नबाबा बाबा कटोरा बंटणे दा" बेटे की विदा के दुख भरे गीत और बारातियों को दी जाने वाली मधुर गालियाँ शामिल हैं। भाग-सुहाग मनाने के गीतों में अक्सर मिथकीय जोड़ियों राम-सीता, विष्णु-लक्ष्मी, राधा-कृष्ण, ब्रह्म-सावित्री, शम्भु-पार्वती की वंदना की जाती है। जैसे-

'स्वर्ग ते उतरयो देवतयो सांदी आई बयो'।

काँगड़ा के गीतों में शौर्य गान की परंपरा रही है। शूरवीर रामसिंह पठानिया जैसे वीरों के शौर्य सैनिकों की दृढ़ता और साहस का परिचय गान, रण भूमि में जूझ पड़ने वाले बाँकुरे सैनिकों की याद में ढोलरू गाए जाते हैं। 'जिहदे ऐसे लडदे जवान / जिन्ह रजपूतों दी रखाई लाज/असौं नहीं दे मूल भूखे/असौं करनी ए लडाई/असौं नूरपुर लेणा बचाई/राजा कोई ऐसा पठानिया जोर लडिया"। (जिसके ऐसे वीर राजपूत लडते हैं। हम इनाम के भूखे नहीं हैं। हमें लडकर नूरपुर बचाना है) ये वीर गीत ढोल पर डंके की चोट से लम्बी लम्बी तान लेकर गाए जाते हैं। काँगड़ा के लोकगीतों में गद्दियों के लोकगीतों का विशिष्ट स्थान है। उन्मुक्त वातावरण में रहने और परिश्रमी जीवन व्यतीत करने के कारण इनके गीतों में भी हर्षोल्लास की प्रमुखता है।

"मिंजो बडी छैल लगदी/ चम्बे दियाँ उच्चियाँ धारा चम्बे दा चौगान पियारा हो"। (मुझे चम्बा की ऊँची चोटी बड़ी प्यारी लगती है। मुझे चम्बे का चौगान पियारा है।)

इन गीतों में अपनी भूमि से प्रेम के साथ गहरा रूमानी भाव भी है। इस तरह के ढेरों गीत हैं जहाँ उन्मुक्त जीवन की सराहना के साथ साथ प्रेम का गहन भाव है। गद्दी लोग खुले आकाश के नीचे रहने को महलों

में रहने से कहीं ज्यादा अच्छा समझते हैं। इन गीतों में बार बार यह प्रकट होता है कि कम से कम जरूरतों के साथ, भेड-बकरियाँ चराते हुए, खुले चारागाहों और वनस्थलों में विचरते, खुले चारागाहों में रहते हुए भी रूखा – सूखा खाकर खुशगवार जीवन कैसे जिया जा सकता है? खुरदरे ऊनी चोले के सामने राजसी रेशमी पोशाकों को तुच्छ समझना कहीं न कहीं राजसत्ता का विरोध ही है। समय की गति के साथ इन गीतों के स्वर भी बदले हैं। अभी हाल ही में एक विवाह गीत में सुनने को मिला "छप गईयाँ अखबाराँ वीरा वे तेरे शगन दियाँ"। मीडिया का प्रभाव यहाँ भी नज़र आए तो आश्चर्य क्या? एक अन्य गीत में अपने बच्चों को स्कूल जाने की प्रेरणा देती और शिक्षा का महत्व समझाती दिखाई देती है। काँगड़ा के लोक-गीत वहाँ के लोक जीव, प्रकृति और समाज का दर्पण हैं। काँगड़ा की सहज भाषा में एक खास तरह की मिठास और लयात्मकता है तो फिर यहाँ के गीतों का तो कहना ही क्या? रामधारी सिंह दिनकर ने डोगरी लेखिका पद्मा सचदेव के काव्य संग्रह की भूमिका लिखते हुए कहा - "डोगरी के गीत कितने विलक्षण होते हैं यह देखकर आजकल मैं दंग हूँ"। इन गीतों में अनूठी सादगी है। प्रेम, बिछोह, आशा-निराशा, वीरता, हर्ष-उलास से भरे यह गीत काँगड़ा के जन का वह स्वर है जो अपने छोटे पँखों से ऊँची उड़ान भरता है।

#### संदर्भ सूची

1. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली : डॉ. अमरनाथ: पृ.464
2. सदानारा भाग 1 अज्ञेय कविता काँगड़े की छोरियाँ पृ. 246
3. कागडा ; महेन्द्र सिन्ह रन्धावा:साहित्य अकादमी पृ 161:द्वितीय संसक-रण 1984।
4. वही :पृ. 163
5. वही पृ.164
6. हिमाचल प्रदेश: हरिकृष्ण मित्रू पृ. 62 राष्ट्रीय पुस्तक न्यास : सातवाँ संस्करण 2017
7. काँगडा: महेन्द्र सिंह रंधावा पृ.123
8. वही पृ. 174
9. काँगडा :महेन्द्र सिंह रंधावा पृ: 188
10. डोगरी गीत रचयिता पद्मा सचदेव:मेरी कविताएँ मेरे गीत पृ. 64: प्रथम संस्करण 1974:साहित्य अकादमी
11. वही भूमिका पृ: 7 रामधारी सिंह दिनकर।



1 सी, पॉकेट -ए, एम. आई. जी फ्लैट्स,  
हरीकुंज हरी नगर, नई दिल्ली-110064  
मो. 9810790680

## चंद्रधर शर्मा गुलेरी का भाषा विवेक

कृष्ण बिहारी पाठक

“हम ऊपर कह आए हैं कि परवर्ती अध्येता अपने पूर्ववर्ती विद्वानों की सम्मतियों को प्रायः निश्शंक होकर यथावत स्वीकार लेते हैं। हम आचार्य रामचंद्र शुक्ल का संदर्भ उठाते हैं। हिंदी के हजार वर्षों के साहित्य और साहित्यकारों के प्रति जैसी या जो धारणा उपस्थित हैं उन पर बहुत हद तक आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रभाव लक्ष्य किया जा सकता है। एक और दीगर बात यह भी है कि आचार्य श्रेष्ठ ने स्वयं स्वीकार किया है कि साहित्येतिहास में रीतिकाल के अधिकांश विवरण उन्होंने मिश्रबंधु विनोद से लिये हैं, ऐसे में मिश्रबंधुओं की कही, बतायी और लिखी प्रत्येक बात को सहर्ष अंगीकार कर लेना कितना विवेकपूर्ण है, यद्यपि यह भी एक विवशता है कि पूर्ववर्ती साहित्य के लिए उपलब्ध सामग्री और संसाधनों को स्वीकारने के अलावा और विकल्प भी क्या हो सकता है।”

साहित्य के निर्माण का सर्वोपरि और सर्वप्रथम उद्देश्य मानव, मानवीय प्रकृति तथा मानवेतर प्रकृति का हितसाधन है। साहित्य का यह महत उद्देश्य कोई साहित्यिक कृति लिख देने मात्र से पूर्ण नहीं होता, यह परिपूर्ण होता है साहित्य के सार्वजनीन संप्रेषण से।

सामाजिक तक संप्रेषित होकर ही साहित्य उसकी संवेदनाओं को सहेज, संवार सकता है, उसमें जीवन मूल्यों को प्रतिष्ठित कर सकता है, उसके भाव संवेगों का परिष्कार कर सकता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस सार्वजनीन संप्रेषण का उत्तरदायित्व केवल साहित्य की भाषा पर होता है।

साहित्य में भाषा की इसी केंद्रीय स्थानीयता के कारण एक सफल रचनाकार बोलचाल की औपचारिक और समाचार की सतही भाषा

से कुछ भिन्न, कुछ विशिष्ट भाषा का प्रयोग करता है। ऐसी भाषा जो उच्चतम प्रभाविता और अधिकतम प्रसार का गुण रखती हो। भाषा को साहित्यिक और विशिष्ट बनाने में वह ज्ञात और उपलब्ध कोश में से उपयुक्ततम शब्दों का चयन कर उनका प्रयोग करता है, बन पड़ा तो सीधे सीधे नहीं तो उन्हें संस्कार देते हुए, उनका परिष्कार करते हुए।

इस तरह अपनी रचनात्मकता में भाषा के प्रयोग का विवेक और किसी अन्य की रचनात्मकता में, उस रचनाकार द्वारा प्रयुक्त भाषा की पहचान का विवेक, ये दोनों बातें किसी साहित्यकार या समालोचक की सामर्थ्य की परिचायक हैं। पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी ऐसे ही समर्थ विद्वान थे, भाषा के प्रयोग और पहचान दोनों में निष्णात।

गुलेरी जी का भाषा सम्यक विवेक उनकी संपूर्ण वाग्मिता में प्रकर्ष के साथ वर्तमान है। भाषा की प्रकृति और उसकी अर्थ सम्पृक्ति को जाने समझे बिना ही किस प्रकार हिन्दी के गंभीर अध्येता, इतिहासकार, आलोचक और लेखक अक्षम्य भूलें करते जाते हैं, भ्रमित होते जाते हैं, भ्रमित करते जाते हैं यह पहले-पहल गुलेरी जी ने ही उजागर किया है, न केवल उजागर किया है बल्कि सप्रमाण, सतर्क उन त्रुटियों के निस्तारण का रास्ता दिखाया है, भ्रमों का निवारण किया है।

भाषागत हस्तलाघव और भाषा विषयक आग्रह गुलेरी जी के संपूर्ण कृतित्व में उसी तरह अस्तित्वगत है जैसे फूल में सुगंध। उनकी प्रायः हर रचना में भाषागत संदर्भों के प्रति प्राथमिकता को लक्ष्य किया जा सकता है, यहाँ तक कि किसी किसी रचना की तो पूरी संरचना और भावभूमि ही आद्यंत इन भाषागत संदर्भों और विमर्शों को काटती छूती चलती है।

उनका एक निबंध है - ‘जालहंस की सुभाषित मुक्तावली और चंद की षड्भाषा’, इस निबंध में गुलेरी जी ने चुलबुली शैली में लेखकों की भाषा संबंधी असावधानियों पर चुटकी ली है। कैसे संस्कृत भाषा और साहित्य से अनजान कोई सामाजिक, प्रसिद्ध कवि ‘जल्हण’ को जालहंस लिख बैठा है, कैसे अंग्रेजी की रोमन लिपि में ‘का, के, की, के संबंध वाचक ‘एस(S) ‘ को ‘जल्हण का’ के अर्थ में jalhan ‘ s लिखा

देखकर एक नये कवि जालहंस का आविष्कार होता है, कैसे भाषागत अज्ञान और असावधानी से भ्रम तैयार होते हैं, क्यों प्राचीन साहित्य संबंधी स्थापनाओं के मार्ग में बहुत सावधानी तथा सजगता से कदम रखना चाहिए और क्योंकर विशेष रूप से गवेषणात्मक साहित्य के क्षेत्र में भाषा के अधिकृत विद्वान का हस्तक्षेप आवश्यक होता है, यह इस निबंध में पूरे कौशल के साथ उद्घाटित हुआ है।

निबंध की शुरुआत सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित शिवदास गुप्त के उस लेख की चर्चा से होती है जिसमें उन्होंने 'जालहंस की मुक्तावली' का उल्लेख किया है। जल्हण को जालहंस बनाने वाले गुप्त जी पर गुलेरी जी ने चुटकी लेते हुए कहा है -

“यह जालहंस बवजन राजहंस या कालहंस.. संस्कृत साहित्य में नया नाम है।.. शिवदास जी से प्रार्थना है कि इस जालहंस का और उसकी सुभाषित मुक्तावली का और पता दें। इस परिचय के लिए हम तरस रहे हैं।”<sup>1</sup>

इस मृदुल स्पर्श के बाद गुलेरी जी ने इस गुत्थी को सुलझाया है। भाषा के बर्ताव की गंभीरता और उसके महत्व की ओर संकेत किया है -

“ जालहंस - बालहंस कोई नहीं है, रोमन लिपि का चमत्कार है। और संस्कृत साहित्य न जानने वालों की अंग्रेजी या बंगला सूँघकर गवेषणापूर्ण लेख लिखने की लालसा पूर्ण करके पाँचवे सवार बनने की धुन का परिहास मात्र दुष्परिणाम है। जल्हण की मुक्तावली प्रसिद्ध है”..<sup>2</sup>

यहाँ गुलेरी जी की उस भाषा पर भी ध्यान देना आवश्यक है जिसमें वे एक ओर भाषा की शुद्धता का पक्ष रखते हैं वहीं दूसरी ओर भाषा से खिलवाड़ करने वाले वर्ग के प्रति अमर्ष की व्यंजना करते हैं। जालहंस के वजन पर राजहंस, कालहंस, बालहंस, जालहंस का जाल लिखना या छेड़छाड़ करने वाले को 'पाँचवाँ सवार' कहती भाषा कितनी चमकदार और भावाभिव्यंजक है।

गुलेरी जी की भाषासम्मत प्रज्ञा इतनी प्रगल्भ है कि वे कार्य-कारण संबंध के साथ ऐसी त्रुटियों की अभियांत्रिकी का विश्लेषण भी अद्भुत शैली में करते हैं। गलती क्या हुई के साथ-साथ वे यह भी सतर्क प्रमाणित करते हैं कि गलती कैसे हुई -

“अंग्रेजी में रोमन लिपि में जल्हण की jalhan's (षष्ठयंत ) प्रयोग लिखा था।.. रोमन लिपि के तुफैल से और संस्कृत की जानकारी न होने से जालहंस का जाल बिन जाने रचा गया, जैसे कि सोनगरा राजपूतों का नाम.. बंगाली अनुवादक ने सौ नगरों के स्वामी.. न समझकर अंग्रेजी अक्षर और बंगालियों के गोलमोल उच्चारण के भरोसे 'शनिग्रह राजपूत' कहकर अटकल लगाई।”<sup>3</sup>

भाषा के क्षेत्र में अनुवाद का कार्य कितनी सजगता और गंभीरता की मांग रखता है, यह इस उद्धरण से समझा जा सकता है। अनुवादक की असावधानी कैसे अर्थ का अनर्थ कर सकती है, उच्चारण के क्षेत्रीय

संदर्भों के बीच से भाषा के अक्षत लिपिगत स्वरूप को ही क्यों निर्णायक मानना चाहिए आदि आदि।

भाषा के सभी विभाग चाहे वह उच्चारण स्तर के हों, लिपि अनुवाद या अर्थ आधारित हों, सभी गंभीर अध्ययन और सावधान दृष्टि की मांग रखते हैं। यह सावधानी और सजगता इसलिए और भी आवश्यक हो जाती है कि परवर्ती अध्येता अपने से पहले उपलब्ध स्थापनाओं को आधार स्रोत के रूप में काम लेता है।

वह प्रायः उपलब्ध स्थापनाओं का परीक्षण किये बगैर उन स्थापनाओं पर कार्य शुरू कर देता है या आगे बढ़ा देता है। पूर्वजों के कार्य को वह प्रश्न भरी नजर से नहीं देखता। जैसे उपरोक्त प्रसंग में हुआ। बंगाली अनुवादक ने सोनगरा को शनिग्रही बना ही दिया था तो परवर्ती मुरादाबादी अनुवादक ने इस बेसिरपैर की धारणा को यह कहते हुए और पृष्ठ कर दिया कि जैसे सूर्य और चंद्रवंशी राजपूत होते हैं वैसे ही शनिवंशी भी हुए हो तो क्या आपत्ति है?

आँखें मूंद कर अतीत में व्यतीत होने वालों को न सही किंतु भाषा की वैज्ञानिक प्रकृति से उसकी संरचना और स्वरूप का विश्लेषण करने वाले मूर्धन्य भाषाविद पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी को ऐसे खिलवाड़ों से सख्त आपत्ति है। आपत्ति दर्ज करने वाली भाषा भी आपत्ति की व्यंजना लेकर गुलेरी जी के लेखन में सिद्ध होकर सामने आती है -

“मुरादाबादी अनुवादक ने भी हिंदी व बंगला की वही साढ़ेसाती शनिश्चर की दशा राजपूतों पर ढा दी वैसे ही लेखक के मन में जालहंस की किलोलें आरंभ हो गयीं।”<sup>4</sup>

हम ऊपर कह आए हैं कि परवर्ती अध्येता अपने पूर्ववर्ती विद्वानों की सम्मतियों को प्रायः निश्चक होकर यथावत स्वीकार लेते हैं। हम आचार्य रामचंद्र शुक्ल का संदर्भ उठाते हैं। हिंदी के हजार वर्षों के साहित्य और साहित्यकारों के प्रति जैसी या जो धारणा उपस्थित हैं उन पर बहुत हद तक आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रभाव लक्ष्य किया जा सकता है। एक और दीगर बात यह भी है कि आचार्य श्रेष्ठ ने स्वयं स्वीकार किया है कि साहित्येतिहास में रीतिकाल के अधिकांश विवरण उन्होंने मिश्रबंधु विनोद से लिये हैं, ऐसे में मिश्रबंधुओं की कही, बतायी और लिखी प्रत्येक बात को सहर्ष अंगीकार कर लेना कितना विवेकपूर्ण है, यद्यपि यह भी एक विवशता है कि पूर्ववर्ती साहित्य के लिए उपलब्ध सामग्री और संसाधनों को स्वीकारने के अलावा और विकल्प भी क्या हो सकता है।

हिन्दी के संपूर्ण साहित्य का आधार इतिहास ग्रंथ 'मिश्रबंधु विनोद' और साहित्यकारों के मूल्यांकन और श्रेणीकरण का प्रस्थानक 'हिन्दी नवरत्न' लिखने वाले मिश्रबंधुओं के भाषागत संदर्भों पर गुलेरी जी की दृष्टि पड़ी है।

गुलेरी जी ने लिखा है कि मिश्रबंधुओं ने आदिकवि चंदबरदायी

द्वारा लिखित - 'षट्भाषा पुराणं च कुरानं कथितं मया' पंक्ति को पढ़कर यह निश्चय कर लिया कि चंद को छह भाषाओं का ज्ञान था, और यह भी तय कर लिया कि अरबी, संस्कृत के अलावा चंद द्वारा व्यवहृत छह भाषाओं का अन्वेषण करना चाहिए यहाँ तक कि दर्जनों भाषाओं की परेड कराते हुए वे छह भाषाएं भी ढूँढ लाए। मजे की बात तो यह हुई कि इन बंधुओं के अनुकरण में ऐसी चाल भी चल पड़ी कि चंद की कविता का प्रत्येक अध्येता छह भाषाओं को अपनी तरह से ढूँढता फिरने लगा यह जाने बगैर कि छह भाषा का यह सूत्र संख्यावाची न होकर कवियों की गुणवत्ता का टकसाली संकेत मात्र था। गुलेरी जी ने चुटकी लेते हुए लिखा है -

“यह भांग कुएं में ऐसी घुली कि चंद की छह भाषाएं पहेली बन गईं लालबुझकड बूझिया और न बूझा कोया.. जो हिन्दी भाषा के मन्यमान आदिकवि की बात करता है, वही इस षट्भाषा पर सिर धुने लगाता है। अरे बाबा! षटरस, सप्तदीप, पंचमकार की तरह षट्भाषा कवियों का टकसाली संकेत है। त्रयी कहने से तीन वेदों का ही ग्रहण होता है, तीनों मिश्रबंधुओं का नहीं। षट्भाषा नियत है, रूढ है, परिचित है.. संस्कृत साहित्य में जगह-जगह छह भाषाओं का मुहावरा है.. चंद की भाषा में छह भाषाओं के प्रयोग छाँटने बैठना बाल की खाल निकालना है। चंद मुहाविरे के पुराने ढंग पर षट्भाषा कह गया।”<sup>5</sup>

गुलेरी जी ने हिन्दी की इसी महात्रयी को जो यह चुनौती दी है तो निराधार नहीं है, इसके पीछे छह भाषाओं के इस प्राचीन श्लोक का बलाबल दम भर रहा है -

“संस्कृत प्राकृत चैव शूरसैनी तद्भवा।

ततोऽपि मागधी प्राग्वत पैशाची देशजापि चा।”

षट्भाषा कविसिद्धि है, रूढि है। इसी निबंध में एक और महत्वपूर्ण भाषा विमर्श गुलेरी जी ने उठाया है। सूर ने जिस ब्रजभाषा में श्री कृष्ण का लीलागान किया है वह भाषा सूर के अपने समय की भाषा है, न कि द्वापर युग की। इस तथ्य सत्य पर विचार किये बगैर कुछ विद्वानों ने सूरयुगीन ब्रज को ही द्वापर युगीन कृष्ण की भी भाषा मान लिया है। सत्यनारायण कविरत्न ने जब खड़ी बोली के पक्षकारों के प्रत्युत्तर में ब्रज को मिठास भरी भाषा बताते हुए यह कहा कि ब्रजभाषा को कौन गंवारी कहता है जिसमें हरि ने माखन रोटी मांगी तब गुलेरी जी ने लिखा है -

“उस समय कविरत्न यह सोचने न ठहरे कि जब कृष्ण रूप हरि माखन रोटी मांगते होंगे उस समय यहाँ की भाषा सूरदास की भाषा न थी।”<sup>6</sup>

सूर, तुलसी, मीरा, रसखानादि भक्तिकालीन कवि, भक्त पहले हैं, कवि बाद में। कविता इनकी ऐसी भावपूर्ण और सजीव है कि इनके काव्यों में खेलते, बोलते राम, कृष्ण इतने सजीव और साकार हो उठें हैं कि भाषागत तथ्य सत्यों पर एकाएक ध्यान नहीं जाता।

भावों की इस अभिन्न एकात्मकता के बीच भाषा की कालगत दूरी और विकास क्रम को देखने, सोचने का अवकाश भला किसे और कब मिलता। ऐसे में गुलेरी ऐसे भाषाविदों का महत्व और आवश्यकता साहित्य के स्वरूप निर्धारण, भाषा की वैज्ञानिक क्रमानुक्रमिकता और कालगत विकास की सूक्ष्म पड़ताल की दृष्टि से कितना महत्वपरक प्रतीत होता है।

मिश्रबंधुओं के बहाने गुलेरी जी ने भाषा में आदरसूचक एकवचन को बहुवचन में पुकारने की प्रवृत्ति पर भी तंज कसा है -

“हिंदी भाषा के इतिहास के अंधकारमय गगन के त्रिशंकु, नवरत्नों के पारखी, 'विनोदकार' श्रीयुत मिश्रबंधु लिखते हैं (बहुवचन का प्रयोग यहीं सार्थक होता है).. जैसे 'वीरमणि' में मिश्रबंधु.. पात्रों से.. चौपाईयाँ कहलाते हैं (यह द्विवचन है, हाय! हिन्दी में द्विवचन है ही नहीं)।”<sup>7</sup>

गुलेरी जी की भाषा यहाँ फिर आकर्षित करती है। चंद के षट्भाषा प्रकरण में जैसी असावधानी मिश्रबंधुओं ने बरती है वह उनकी गंभीर छवि को कंपित करती है, इस पर गुलेरी जी ने व्यंजना की है और 'मिश्रबंधु विनोद' के लेखकों को 'विनोदकार' कहते हुए श्लेष के चमत्कार और भाषा की भंगिमा से भाषा छवि को भंग करने वाले बंधुओं की अच्छी खबर ली है।

भाषा के व्यवहार एवं उसके प्रति हमारे दृष्टिकोण में होने वाले परिवर्तन पर भी गुलेरी जी का ध्यान गया है। प्राचीन और आधुनिक शिक्षा पद्धतियों की तुलना करते हुए इन दोनों पद्धतियों में अंतर्निहित भाषागत विवेक और भाषा की केंद्रीय स्थानीयता में क्रमशः घटित होते क्षरण पर वे लिखते हैं -

“पहले भाषा के जानने पर.. जोर.. था, अब विषयों पर ध्यान है.. अब भाषा पढाई जाती है तो वह ज्ञान का लक्ष्य नहीं मानी जाती, ज्ञान का साधन मानी जाती है।”<sup>8</sup>

साध्य से हटाकर भाषा को केवल साधन बना देने के दृष्टिसंकोच के दुष्प्रभाव सामने आने लगे हैं। यह बहुत हद तक ठीक है कि विभिन्न ज्ञान अनुशासनों के बीच भाषा की स्थिति एक माध्यम या साधन के रूप में ठहरती है पर सब दिन भाषा को इसी रूप में देखते रहना कितना ठीक है, तब जबकि आज भाषा का एक स्वतंत्र, समर्थ भाषा विज्ञान है, तब जबकि आज अकेले भाषा की ही अंतर्वस्तु और प्रकृति पर उल्लेखनीय और पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है।

ऐसे में भाषा की उपयोगिता, स्थिति और महत्व, ज्ञान- विज्ञान और साहित्य के विकास क्रम, गतानुगतिकता और आपसदारी को समझने, परखने की दृष्टि से असंदिग्ध है, और यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि गुलेरी जी की संपूर्ण रचनात्मकता में यह बात रह रहकर उठती रही है।

लोक और संस्कृति में भाषा का अस्तित्व कैसे एकरस होकर चलता है, कैसे भाषा की प्रकृति और लोक की संस्कृति पारस्परिकता

का निर्वहन करती हैं और क्यों आखिर भाषा को सजीव और चैतन्य विमा माना जाता है, यह उन्होंने 'अमंगल के स्थान में मंगल शब्द' शीर्षक निबंध में दर्शाया है।

दुख, मृत्यु, शोक, अश्लीलता, अशिष्टता आदि के अस्तित्व को मिटाना संभव नहीं है ये सदा से हैं और रहेंगे। दिवस और प्रकाश है तो रात्रि और अंधकार भी रहेंगे ही किंतु इन दुखांत विमाओं की नकारात्मक, अवसन्न छाया मानव की रचनात्मक, जिजीविषा को आच्छादित न कर ले इसलिए भारत ऐसे जीवनधर्मी देश में ऐसे प्रसंगों में भी भाषा का शुभ, और शिव पक्ष व्यवहृत किया जाता है।

'बुझने ' में मृत्यु की गंध पाकर दिया - बुत गया, नद गया, बढ गया, ठंडा हो गया, बडा हो गया शब्दों का प्रचलन लोक के बीच है। लोक में सहर्ष स्वीकृत भाषा के इन रूपों को सिद्ध वैयाकरण और साहित्यकार भी अपना लेते हैं। बिहारी का दोहा - 'दिया बढाये हूरहत.. गुलेरी जी ने सामने रखा है।

रहीम ने भी इस लोकमान्य प्रवृत्ति को अपनाया है -

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोया

बारे उजियारो लगे, बढे अँधेरो होया॥

जलना शब्द शवदाह के अर्थ में नकारात्मक संदर्भ और ऊर्जा रखता है इसलिए होली जलने के स्थान पर ' मंगरना' (मगल गई), चूल्हा जलने /जलाने या बालने की बजाय 'चिताना' और फिर चिताने शब्द में भी 'चिता' आने से 'चूल्हा जगाना ' प्रचलन में आया। बहुत संभव है कि ईर्ष्या जैसे नकारात्मक भाव के परिभाषीकरण के लिए इसीलिए 'जलना' शब्द काम लिया जाने लगा हो।

दैनंदिन जीवन और लोक व्यवहार के अनेक अनेक उदाहरण और प्रसंग गुलेरी जी ने इस रूप में सामने रखे हैं कि भाषा की प्रकृति और परिवर्तनीयता के विकास क्रम और उसके संबंधों को लक्ष्य किया जा सकता है।

बंद करने में रोजगार खत्म होने का अर्थ भासित होता है इसी से 'दुकान बढाना', फूटने के स्थान पर 'घड़ा उतरना', पानी देने के स्थान पर पानी पिलाना, चूड़ी टूटना के स्थान पर मौलना, मुरकना या बढ जाना व्यवहृत किया जाता है। मृत्यु सूचना के लिए रूढ 'चिट्टी' के स्थान पर 'कागद', न्हाण या स्नान मृत्यु से जुड़ा होने के कारण प्रसूति के शुद्धि स्नान को 'जलवा पूजन' कहने का प्रचलन है।

महत्वपूर्ण बात यह है कि गुलेरी जी ने इस पूरे निबंध में लोक व्यवहार पर शास्त्र की सम्मति की मुहर लगाकर भाषा की सजीवता को सिद्ध किया है कि किस प्रकार भाषा अपने संपर्क में आने वाली घटनाओं, प्रसंगों और क्रियाओं के स्वभाव को अपने अस्तित्व में विलीन करती आगे बढ़ती है ठीक उसी तरह जैसे कोई सजीव प्राणी अपने आस पास के

अन्य प्राणियों, प्रकृति और वातावरण से संस्कार ग्रहण करता चलता है -

“बाल मुंडाने का संपर्क मरण से होने के कारण.. इसी अशुभ चर्चा से रात को क्षीर या नापित का नाम नहीं लिया जाता और संस्कृत कोशों में नाई का नाम 'दिवाकीर्ति' हो गया है।”<sup>9</sup>

भाषा एक सजीव, चैतन्य और गतिशील विमा है, वह जिन लोगों द्वारा व्यवहृत की जा रही है उनके सांस्कृतिक संदर्भों को आत्मसात करती आगे बढ़ती है। इस निबंध में विविध प्रसंगों और उदाहरणों से गुलेरी जी ने भाषा का यह स्वरूप दिखाया है कि भारत ऐसे उत्सवधर्मी, रचनाशील, शुभकामी और सकारात्मक जिजीविषा संपन्न देश में भाषा की प्रकृति भी उत्सवधर्मी और शुभता से संस्कारित है। अशुभ, अमंगल, हानिप्रद या दुखात्मक प्रसंगों और घटनाओं की व्याख्या के लिए भी भाषा ऐसे संस्कार के साथ सामने आती है कि नकारात्मक वातावरण तिरोहित हो सके।

अमंगल और अश्लीलता के गोपन का आग्रह भाषा के शिष्टाचार से देश के सांस्कृतिक शिष्टाचार और लोक व्यवहार को भी परिभाषित करता है। यह शिष्टाचार लोक से लेकर शास्त्र तक, ग्राम्य से नागर तक स्वीकृत और संचालित है। संस्कृति के रंग में रंगी भाषा की इस सार्वजनीन स्वीकृति और मान्यता को गुलेरी जी शास्त्रों और वैयाकरणों के आलोक में पुष्ट करते हैं -

“इसी अर्थ में भद्राकरण (भद्र=कुशल) भी है, परंतु उपचार से भद्र होने (भद्र कराने) का फिर भी अमंगल अर्थ हो जाने पर 'भद्राकरण' भले अर्थ में आने लगा, जिसका कि पाणिनी ने उल्लेख किया है।”<sup>10</sup>

बिहारी की कविता से लेकर संस्कृत के ग्रंथों तक, पाणिनी से पतंजलि तक, और उपनिषद, गृह्यसूत्रों के प्रमाण उठाकर गुलेरी जी ने भाषा की इस प्रवृत्ति को उद्घाटित किया है, न केवल उद्घाटित किया है बल्कि भाषा के स्वरूप निर्धारण का यह निष्कर्ष कथन भी प्रस्तुत किया है कि -

“प्रयोजन यह कि शब्दों का अर्थ और प्रयोग लोक व्यवहार के अधीन है, वैयाकरणों के अधीन नहीं। व्याकरण को छोड़कर उपमान, कोश, आप्तवाक्य, व्यवहार, सानिध्य आदि भी तो शक्तिग्रह के कारण हैं।”<sup>11</sup>

गुलेरी जी अपनी रचना और विवेचना दोनों में भाषा के इसी आदर्श को लेकर चले हैं। भाषा अपनी शक्ति कहाँ से और कैसे अर्जित करती है या कर सकती है, इसका पूरा अनुमान और अभ्यास उन्हें था, इसी से वे अपनी कालजयी कहानी 'उसने कहा था' में लोक में प्रचलित 'धत्त' जैसे लघुप्राण, अर्थहीन और व्याकरणविहीन शब्द में पुनर्नवा अर्थ, भाव और रस की सिद्धि में सफल होते हैं। लड़की की धत्त में थोड़ी चुल्ल, थोड़ा रूप गर्व, थोड़ी लज्जा, थोड़ा आमंत्रण थोड़ी दुत्कार और थोड़ी मर्यादा के साथ न जाने कितने अपरिभाषित भाव अभाव एक दूसरे को काटते छूते चलते हैं।

'डिंगल' शीर्षक निबंध में गुलेरी जी न केवल डिंगल- पिंगल के भेदाभेद को परिभाषित करते हैं अपितु भ्रमपूर्वक चली आ रही बहुत सी

बातों का भी निवारण करते जाते हैं। ये दोनों ब्रजि हैं.. इधर सुकुमारता के साथ श्रृंगार प्रकरण में पिंगल और उधर कर्कशता के साथ दान-स्तुति, निंदा और वीरता के प्रकरण में डिंगला -

“एक महाशय ने तो डिंगल को प्राचीन राजस्थानी भाषा का नाम मान लिया है और राजस्थानी की चटशालाओं की अखरावट को ‘डिंगल’ की वर्णमाला कह दिया है। इसका अत्यासक्ति को छोड़कर कोई प्रमाण नहीं। कुछ लोग ‘डिंगल’ का अर्थ ‘डगर की बोली’ करते हैं पर डगर क्या है और कहाँ है इसका कुछ पता नहीं। पहाड़ी या रेतली भूमि अर्थ करने से भी डिंगल कविता के क्षेत्र का यह नाम होना सिद्ध नहीं होता। एक चारण महाशय इसकी व्युत्पत्ति में कहते हैं.. मिट्टी के टेढ़े मेढ़े डगल .. से डिंगल बन गया। इस निर्वचन में श्रुतिसाम्य के अतिरिक्त कुछ नहीं।”<sup>12</sup>

भाषा के स्वरूप, संरचना और व्यवहार निर्धारण में गुलेरी जी इतने तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक दृष्टिसंपन्न हैं कि किसी नई मान्यता की स्थापना में या चले आ रहे भ्रमों के खंडन में वे शास्त्र, उपनिषद, आदि मान्य ग्रंथों के साथ लोक में सर्वमान्य व्यवहार प्रतिमानों को बहुत सटीकता के साथ रखते चलते हैं। भाषा की वैज्ञानिकता को परखते हुए, चौकन्नी दृष्टि से और सम्यक विवेक से वे स्थायी निष्कर्ष पर पहुँचाते हैं -

“मेरे मन में ‘डिंगल’ केवल अनुकरण शब्द है। ‘काफिया न मिलेगा तो बोझो तो मरेगा’ की कहावत के अनुसार पिंगल के भेद दिखाने के लिए बना लिया गया है.. निश्चित अर्थ के वाचक किसी शब्द से, उससे भेद दिखाने के लिए उसी की छाया पर दूसरा अनर्थक शब्द बनने और उसके दूसरे अर्थ के वाचक हो जाने के कई उदाहरण मिलते हैं।”<sup>13</sup>

भाषागत संदर्भों के निरीक्षण परीक्षण में गुलेरी जी की यह उद्गरणी कितनी महत्वपूर्ण और प्रसंगपूर्ण है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। भाषा में न चाहते हुए भी अनर्थक शब्दों का निर्माण और निर्वहन क्योंकि होता है इसे गुलेरी जी ने अनेक उदाहरणों से स्पष्ट किया है, एक देखना अलम होगा -

“कुमार का अर्थ बालक है। उसके तद्भव कुंवर का अर्थ उस मनुष्य के लिए रूढ़ हो गया है जिसका पिता जीता हो। किसी राजपूत को पिता के जीते कंवर न कहकर ठाकुर कहना.. गाली समझा जाता है। कवर.. पिता के मरने पर ठाकुर हो जाएगा। अब यदि कंवर के पुत्र हो जाए तो वह क्या कहलावेगा? उसका पिता स्वयं कंवर है। इसलिए दादा के सामने पोते के लिए सांकेतिक नाम बनाया गया- भंवर। भंवर का कोई अर्थ नहीं है, न भ्रमर से संबंध है, यह केवल कंवर से भेद करने के लिए मिलता-जुलता शब्द है। वैसे ही पड़दादा के जीते जी दुर्लभ पडपोते को तवर या टवर कहते हैं।”<sup>14</sup>

जैसे कुंवर या कंवर के वजन पर भंवर और तंवर आदि शब्द भाषा में बेरोकटोक निर्गमन कर रहे हैं संभवतः वही कहानी पिंगल के साथ डिंगल की है। इसी तरह दासी के पुत्रों से बना शब्द दस्सा कब दस की संख्या से अपना संबंध स्थापित कर गया और कब इस दस्सा की तुक पर बीस बिस्वा की पूर्णता के उपचार एक और जाति द्वारा अपना नाम

बीसा रख लिया गया। भाषा के इस करतब और करामात को बताते गुलेरी जी की अपनी भाषा भी करतब की ढब में फबती हुई सामने आती है। देखें-

“रुकका का अर्थ पत्र है.. नीचे के अधिकारी के नाम ऊँचे अधिकारी की लिखावट के अर्थ में रूढ़ हो गया है। ‘रुकके’ से नीचे दर्जे की लिखावट के लिए ‘सुकका’ नाम बनाया गया है। सुकके का कोई अपना अर्थ नहीं, न इसका सूखे से कोई संबंध है। केवल रुकके से भेद बताने के लिए यह सुकके का तुक्का चलाया गया है।”<sup>15</sup>

भाषा की संरचना, विकासक्रम और व्यवहार प्रवृत्ति के संदर्भ में गुलेरी जी की दृष्टि विज्ञानसम्मत और तर्कपूर्ण रही है। ‘अपभ्रंश’ शीर्षक निबंध में उन्होंने पहले यह स्थापना प्रस्तुत की है कि विक्रम की सातवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश की प्रधानता रही फिर वह पुरानी हिन्दी में परिणत हो गई। और इस स्थापना के बाद दो निकटवर्ती भाषाओं में परिवर्तन के कारण को उन्होंने सोदाहरण स्पष्ट किया है-

“पुरानी हिन्दी का गद्य बहुत कम लिखा हुआ मिलता है। पद्य दो तरह रक्षित हुआ है, मुख से और लेख से। दोनों तरह की रक्षा में लेखक के हस्तसुख और वक्ता के मुखसुख से इतने परिवर्तन हो गए हैं कि मूल शैली की विरूपता हो गई है।... जो कविता मुख से कान, मुख से कान चलती है उसमें तो बहुत ही परिवर्तन हो जाते हैं।.. अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी में सीमारेखा बहुत ही अस्पष्ट है।”<sup>16</sup>

भाषा के उद्भव को लेकर गुलेरी जी ने सर्वथा मौलिक और स्थायी मान्यताएं प्रस्तुत की हैं, इस दृष्टि से उनका ‘पुरानी हिन्दी’ शीर्षक निबंध बहुत काम का है। वे बहुत स्पष्ट होकर अनेक प्रचलित विश्वासों का खंडन करते हुए सर्वथा अभिनव और तर्कसंगत सम्मतियाँ प्रस्तुत करते हैं।

इस महत्वपूर्ण निबंध में सबसे पहले उनका ध्यान इस बात पर जाता है कि कैसे पीढ़ी दर पीढ़ी आँख मूँदकर इस धारणा पर मुग्ध विश्वास दृढतर होता जाता है कि संस्कृत पूर्णतः मौलिक आदिभाषा है, सभी भाषाओं की जननी।

वे आँखे खोलने का उपक्रम करते हैं यह बताकर, पूछकर कि क्या मानव भाषा का संज्ञान होते होते ही इतनी परिमार्जित, व्याकरण सिद्ध, परिष्कृत और व्यवस्थित भाषा बोलने लग गया होगा। उत्तर है नहीं। संस्कृत भी भाषा के कुछ पूर्व रूपों की व्यवस्था, परिमार्जन के परिणाम के रूप में हमें मिली है, वैसे ही जैसे विविध अपभ्रंशों के परिमार्जन से आज की प्रचलित भाषाएँ। इस निबंध की प्रस्तावना ही जागरण के मंजुघोष के साथ धूम से उठती है -

“हिंदुस्तान का पुराने से पुराना साहित्य जिस भाषा में मिलता है उसे ‘संस्कृत’ कहते हैं। परंतु जैसा कि उसका नाम ही दिखाता है.. वह मँजी, छटी, सुधरी भाषा है।.. किस ‘कृत’ से वह संस्कृत हुई यह जानने का कोई साधन नहीं बच रहा है।”<sup>17</sup>



गुलेरी जी ने बहुत प्रखर होकर कहा है कि यह भाषा अपने पूर्व प्रचलित मौलिक, स्वाभाविक भाषा रूपों का विकसित किंतु औपचारिक रूप है अतः यह उनकी अपेक्षाकृत कृत्रिम है, किंतु भारतीय मनीषा लंबी अवधि से इसे इसी रूप में देखते सुनने के कारण मौलिक और प्राकृतिक मानने की भूल करती रही है, यहाँ तक कि हेमचंद्र ऐसे सिद्ध आचार्य ने संस्कृत को प्रकृत कहकर उससे बनी भाषा को प्राकृत कहकर संबोधित किया है। ध्यान देने की बात यह है कि गुलेरी जी ने हेमचंद्र आदि पूर्वजों की बातों को ज्यों का त्यों नहीं मान लिया है, वे भाषा विषयक मान्यताओं को विवेक की कसौटी पर कसते हैं और महत्वपूर्ण स्थापना उपस्थित करते हैं। -

“सदा इस ‘संस्कृत’ नहर को देखते देखते हम असंस्कृत या स्वाभाविक, प्राकृतिक नदियों को भूल गए।.. हम यह कहने लगे कि नहर से नदी बनी है, नहर प्रकृति है और नदी विकृति - हेमचंद्र ने अपने प्राकृत व्याकरण का आरंभ ही यों किया है कि संस्कृत प्रकृति है, उससे आया इसलिए प्राकृत कहलाया। यह नहीं कि नदी अब सुधारकों के पंजे से छूटकर फिर सनातन मार्ग पर आई है।”<sup>18</sup>

भाषाओं की चक्रीयता और विकास क्रम को समझने के लिए गुलेरी जी का यह रूपक कितना विश्वसनीय और विज्ञानसम्मत है। विविध प्राकृतिक क्षुद्र धाराओं से मिलकर नदी बनती है, स्वतः बनती है इसलिए प्राकृतिक है, मौलिक है। फिर सुधारक उसे अनुशासित करके समतल, व्यवस्थित नहर बनाते हैं और कालांतर में नहर का पानी अनुशासन के बंधों को तोड़कर फिर स्वतंत्र, क्षुद्र, मौलिक धाराओं, उपधाराओं में बदलता है जो आगे चलकर उपयुक्त आश्रय और ढलान पाकर फिर से नदी बन बहने लगती है। भाषा में भी यही चक्रीयता चलती है।

विविध प्राकृतिक भाषाओं को व्यवस्थित करके, संस्कारित करके ‘संस्कृत’ बनाया गया होगा, कालांतर में संस्कृत से अपभ्रंश बनी होंगी और फिर अपभ्रंशों से आधुनिक भाषाएं। गुलेरी जी ने यह क्रम दिया है -

मूल भाषा- छंदस की भाषा - प्राकृत - संस्कृत - अपभ्रंश।

भाषा में मौलिकता ही चिरंतन विस्तार पाती है। गुलेरी जी ने लिखा है -

“संस्कृत अजर अमर तो हो गई किंतु उसका वंश नहीं चला, वह कलमी पेड़ था। हाँ, उसकी संपत्ति से प्राकृत, और अपभ्रंश और पीछे हिन्दी आदि भाषाएं पुष्ट होती गईं और उसने भी समय-समय पर इनकी भेंट स्वीकार की।”<sup>19</sup>

गुलेरी जी ने प्राचीन ग्रंथों से अनेक उदाहरण उठाकर यह दिखाया है कि वैदिक या छंदस की शब्दावली प्राकृत में प्रवाहमान रही किंतु संस्कृत में आकर जड़ हो गई। उदाहरणों को उतारने का यहाँ अवकाश नहीं है। लोक में प्रचलित हर्ष ध्वनियों ‘उल्लू’ और ‘हुर्’ आदि का भी

वैज्ञानिक प्रमाण देकर वे अपने अद्वितीय भाषा लाघव और भाषा विवेक का प्रमाण देते हैं।

भाषा की प्रवृत्ति, संस्कृति, उद्भव, विकास, संरचना और सैद्धांतिकी पर जैसा गंभीर विमर्श गुलेरी जी ने किया है वह अद्भुत है। उनकी मान्यताएं मौलिक और विज्ञान सम्मत हैं। वे अपनी बात को वायवीय कल्पनाओं पर छोड़ कर आगे नहीं बढ़ जाते अपितु युक्तिसंगत तर्क के साथ स्थायी विकल्प प्रदान करते हैं।

भाषा के विविध संदर्भों को जैसे कौशल से उन्होंने इन सैद्धांतिक निबंध में व्याख्यायित किया है ठीक वैसे ही कौशल और हस्तलाघव से भाषा का विनियोग अपनी रचनात्मकता में किया है। वे भाषा और उसके अवयवों की अंतःप्रवृत्ति को आत्मसात करते हुए उसे सर्वाधिक अर्थक्षम रूप में प्रयोग करने वाले विरल रचनाकार हैं। साहित्य की भाषा के विचार और विनियोग में उनके अवदान का महत्व सदा बना रहेगा।

#### संदर्भ

1. कपूर, मस्तराम, 1993ई., चंद्रधर शर्मा गुलेरी (भारतीय साहित्य के निर्माता), साहित्य अकादमी दिल्ली, पृष्ठ 80 से 82
2. पूर्वोक्त
3. पूर्वोक्त
4. पूर्वोक्त
5. पूर्वोक्त
6. पूर्वोक्त
7. पूर्वोक्त
8. कपूर, मस्तराम, 1993ई., चंद्रधर शर्मा गुलेरी (भारतीय साहित्य के निर्माता), साहित्य अकादमी दिल्ली, पृष्ठ 73-79
9. संपादक - डॉ मनोहर लाल, 1984ई., गुलेरी साहित्यालोक, किताबघर प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 273
10. पूर्वोक्त, पृष्ठ 273
11. पूर्वोक्त, पृष्ठ 276
12. पूर्वोक्त, पृष्ठ 269
13. पूर्वोक्त, पृष्ठ 270
14. पूर्वोक्त, पृष्ठ 270
15. पूर्वोक्त, पृष्ठ 271
16. पूर्वोक्त, पृष्ठ 268, 269
17. पूर्वोक्त, पृष्ठ 258
18. पूर्वोक्त, पृष्ठ 258
19. पूर्वोक्त, पृष्ठ 259



व्याख्याता हिंदी

तिरुपति नगर, हिंडौन सिटी जिला करौली राजस्थान पिन 322230  
मोबाइल 9887202097 मेल kpathakhnd6@gmail.com

# मराठी म्हाळी हिन्दी ગુજરાતી తెలుగు లిపి മലയാളം भाषा বাংলা ସଂସ୍କୃତମ ସଂସ୍କୃତମ

भाषा-चिंतन

## आठवीं अनुसूची और समावेशी प्रजातंत्र

डॉ. बिपिन कुमार ठाकुर

“भारत एक विविध, विशाल तथा बहुभाषी प्रजातांत्रिक देश है। भारत के संविधान के भाग सत्रह में राजभाषा, क्षेत्रीय भाषाओं, उच्चतम एवं उच्च न्यायालय आदि की भाषा एवं विशेष निर्देश आदि का प्रावधान किया गया है। भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, जिसकी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार प्राप्त है। प्रमुख रूप से भारत में संविधान द्वारा स्वीकृत भाषाओं की संख्या 22 है जिन्हें इसके आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है।”

तथा दमन एवं दीव में; कन्नड़ कर्नाटक में; कोंकणी गोवा तथा दादर नगर हवेली में; मलयालम केरल तथा लक्षद्वीप में; मणिपुरी मणिपुर में; उड़िया ओडिशा में; पंजाबी पंजाब में; डोगरी, जम्मू एवं कश्मीर में तथा मैथिली बिहार में बोली जाती है।

सन् 1902 की एक गणना के अनुसार भारत में 179 भाषाएँ एवं 544 स्थानीय भाषाएँ (Dialects) थीं और सन् 1951 की जनगणना के अनुसार भारत में 771 भाषाएँ एवं स्थानीय भाषाएँ विद्यमान थीं। 1961 और 1971 की जनगणनाओं ने मातृभाषा के रूप में 1652 भाषाओं की गणना की थी। हालिया रिपोर्ट के अनुसार भारत में फिलहाल 1365 मातृभाषाएँ हैं। भाषा ट्रस्ट के संस्थापक और लेखक डेवी के अनुसार शहरीकरण तथा प्रवास की भागमभाग में लगभग 230 भाषाओं का नामोनिशान मिट गया है।

भाषा की विविधता भारतीय समाज की मुख्य चारित्रिक विशेषताओं में से एक है। यह भारतीय प्रजातंत्र को काफी विलक्षण बनाती है। हाल के दिनों में भाषा, नागरिकों की पहचान, अधिकारों के प्रति जागरूकता एवं कटिबद्धता को उधृत करती रही है। मॉरिश जोन्स के अनुसार, “क्षेत्रवाद और भाषा के सवाल भारतीय राजनीति के इतने ज्वलन्त प्रश्न रहे हैं और भारत के हाल के राजनीतिक इतिहास की घटनाओं के साथ इनका इतना गहरा संबंध रहा है कि अक्सर ऐसा लगता है कि यह राष्ट्रीय एकता की संपूर्ण समस्या है।”<sup>2</sup>

### संवैधानिक प्रावधान

संविधान सभा में ‘देश की राजभाषा’ मुद्दे पर काफी व्यापक विचार विमर्श हुआ। दिनांक 12-14 सितंबर, 1949 के दौरान गणमान्य सदस्यों ने संविधान सभा में इस प्रश्न पर काफी उत्तेजनापूर्ण विचार-विमर्श किया। श्री एन. गोपाल स्वामी अयंगर के अनुसार, “ समस्त

भारत एक विविध, विशाल एवं बहुभाषी देश है जो जनसंख्या में विश्व में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। भौगोलिक दृष्टि से यह विश्व के मात्र 2.4 प्रतिशत स्थान पर अवस्थित है। प्रशासनिक सुगमता के लिए यह राज्यों (28) एवं केन्द्र शासित प्रदेशों (07) तथा 640 जिलों में (भारत की जनगणना 2011) वर्गीकृत है। सामान्य तौर पर हिन्दी भाषा बोलने वालों की संख्या उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश राजस्थान, हरियाणा, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली तथा उत्तराखण्ड में विद्यमान है; बांग्ला बोलने वालों की संख्या पश्चिम बंगाल तथा त्रिपुरा में; तेलुगु बोलने वालों की संख्या आन्ध्र प्रदेश में; मराठी महाराष्ट्र में; तमिल, तमिलनाडु तथा पुडुचेरी में; गुजराती, गुजरात

भारत के लिए एक राजभाषा चुनने का कार्य कदाचित् आसान नहीं है। यद्यपि कि हमने इस बारे में छोटे-बड़े जन-समूहों में, प्रेस में कई बार चर्चा की है। हमारे बीच इस बारे में पूर्ण सहमति का अभाव रहा है फिर भी हम सदैव सहमत हुए हैं कि पूरे देश के लिए एक राजभाषा (सरकारी काम-काज के लिए) हो। हालाँकि इसके लिए हमें उस भाषा का त्याग करना होगा जिसके माध्यम से हमने अपनी स्वतंत्रता हासिल की है। यद्यपि कि मैं मान गया हूँ कि हमें उस भाषा को भविष्य में छोड़ देना चाहिए तथा इसके स्थान पर इस देश की भाषा को अपनाना चाहिए, मैं ऐसा भारी मन से कर रहा हूँ।<sup>3</sup>

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, अध्यक्ष ने अपने भावुक उद्बोधन में कहा, “हमें पहली बार एक अपना संविधान मिला है जिसमें हमने पूरे संघ के प्रशासन हेतु एक अपनी भाषा का प्रावधान किया है जो कि भविष्य की चुनौतियों को सफलतापूर्वक मुकाबला करेगा। सही रूप में आज हमने देश की राजनीतिक एकीकरण हासिल कर ली है तथा भविष्य में यह हमें एक-दूसरे से मजबूती से जोड़ेगा।”<sup>4</sup>

संविधान के अनुच्छेद 343 एवं 344 में संघ की भाषा के संबंध में प्रावधान किया गया है: (1) देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी संघ की राजभाषा होगी। (2) संविधान के आरंभ में पंद्रह वर्ष तक अंग्रेजी भाषा का प्रयोग संघ के सरकारी कार्यों में यथापूर्व जारी रहेगा, परन्तु इस अवधि के भीतर ही राष्ट्रपति, आदेश द्वारा, संघ के शासकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा का और भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा। (3) पन्द्रह वर्षों के उपरांत भी संसद किन्हीं विशिष्ट प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग चालू रखने की अनुमति दे सकती है। 1963 में अनुच्छेद 343(3) के अधीन राजभाषा अधिनियम प्रस्तुत किया गया जिसके अनुसार 1965 के बाद भी अंग्रेजी अनिश्चित काल तक बनी रहेगी। (4) संविधान के अंगीकृत होने के पाँच वर्ष बाद राष्ट्रपति एक भाषा आयोग की स्थापना करेंगे जो हिन्दी भाषा के प्रयोग में क्रमिक वृद्धि, अंग्रेजी के प्रयोग को धीरे-धीरे कम करना तथा तत्संबंधी अन्य प्रश्नों व समस्याओं के संबंध में सिफारिशें करेगा। संविधान के अंगीकृत होने के दस वर्ष बाद राष्ट्रपति इसी प्रयोजन के लिए आयोग की स्थापना करने को बाध्यक हैं। आयोग सिफारिश करते समय भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के निवासियों के सरकारी पदों के लिए न्यायोचित दावों व हितों को भी ध्यान में रखेगा। (5) इस आयोग की

सिफारिशों पर विचार करने के लिए एक संसदीय समिति आनुपातीय प्रतिनिधित्व के आधार पर बनायी जाएगी जिसमें लोक सभा के बीस सदस्य तथा राज्यसभा के दस सदस्य होंगे। यह संसदीय समिति आयोग की सिफारिशों पर अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करेगी। राष्ट्रपति इस प्रतिवेदन के आधार पर निर्देश जारी कर सकते हैं।

अनुच्छेद 345, 346 एवं 347 में प्रादेशिक भाषा संबंधित प्रावधान किए गए हैं। इसके अन्तर्गत किसी राज्य 6 का विधान-मंडल, विधि द्वारा उस राज्य में प्रयोग होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अधिक भाषाओं को या किन्हीं को उस राज्य के सभी या हिन्दी शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा या भाषाओं के रूप में अंगीकार कर सकेगा परन्तु जब तक राज्य का विधान मंडल, विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक राज्य के भीतर उन शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उसका इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था।

अनुच्छेद 346 के अनुसार, “संघ में शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने के लिए तत्समय प्राधिकृत भाषा, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच तथा किसी राज्य और संघ के बीच पत्रादि की राजभाषा होगी परन्तु दो या अधिक राज्य यह करार कर रहे हैं कि उन राज्यों के बीच पत्रादि की राजभाषा हिन्दी होगी तो ऐसे पत्रादि के लिए उस भाषा का प्रयोग किया जा सकेगा।”

अनुच्छेद 347 में किसी राज्य की जनसंख्या के किसी अनुभाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 348 में उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों की भाषा संबंधित प्रावधान किया गया है। जब तक संसद कानून द्वारा अन्यथा निर्धारित न करे, तब तक उच्चतम न्यायालय तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय की सब कार्यवाहियाँ तथा केन्द्रीय और राज्यप के विधानमंडलों के विधेयकों, कानूनों, आदेशों, नियमों तथा अध्यादेशों का पाठ अंग्रेजी भाषा में होगा। किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की अनुमति से उच्च न्यायालय की कार्यवाही राज्य की राजभाषा में होने की अनुमति दे सकता है, लेकिन न्यायालय का निर्णय, डिक्री या आदेश अंग्रेजी में ही होगा। यदि किसी राज्य का विधानमंडल विधेयकों, कानूनों, नियमों तथा आदेशों के लिए अंग्रेजी के बदले अन्य कोई भाषा निर्धारित करता है, तो उनका अंग्रेजी भाषा में राज्यपाल द्वारा अधिकृत अनुवाद, अधिकृत पाठ समझा जाएगा।

## संविधान की आठवीं अनुसूची

92वें संविधान संशोधन अधिनियम 2003 पारित होने के उपरांत आठवीं अनुसूची के अन्तर्गत नामित भाषाओं की कुल संख्या 22 हो गई है। संविधान लागू होते समय इस सूची में शामिल भाषाओं की कुल संख्या 14 थी, जिनके नाम हैं- असमी, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, ओडिया, पंजाबी, तमिल, तेलुगु, संस्कृत एवं उर्दू। 21वें संविधान संशोधन अधिनियम (1967) द्वारा सिन्धी; 71वें संविधान संशोधन अधिनियम (1992) द्वारा कोंकणी, मणिपुरी और नेपाली तथा 92वें संविधान संशोधन अधिनियम (2003) द्वारा बोडो, डोगरी, मैथिली और संथाली भाषाओं को अष्टम सूची में शामिल किया गया। 96वाँ संविधान संशोधन अधिनियम (2011) द्वारा 'उड़िया' के स्थान पर 'ओडिया' शब्द प्रतिस्थापित किया गया।

देश के नौ राज्यों ने हिन्दी को राजभाषा के रूप में मान्यता दी हुई है। इनके नाम हैं- बिहार, छत्तीसगढ़, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और उत्तराखण्ड। साथ ही केन्द्र शासित प्रदेश अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह तथा राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में भी हिन्दी को राजभाषा की मान्यता मिली हुई है। अरूणाचल प्रदेश, मेघालय, नागालैंड और सिक्किम ने अंग्रेजी भाषा को राजभाषा के रूप में मान्यता दी हुई है यद्यपि कि अंग्रेजी भाषा संविधान के अष्टम सूची में शामिल नहीं है, इसे राजभाषा अधिनियम, 1963 के अन्तर्गत यह मान्यता प्राप्त है।

कुछ अन्य राज्यों ने हिन्दी को अतिरिक्त राजभाषा के रूप में मान्यता दिया हुआ है, जैसे कि गुजरात में इसे गुजराती के अतिरिक्त यह स्थान प्राप्त है। कुछेक राज्यों ने किसी दूसरे भाषा को यही स्थान दिया हुआ है, जैसे कि गोवा ने मराठी भाषा को; सिक्किम ने 'नेपाली', 'भूटिया' एवं 'लेफ्चा' को; दिल्ली ने 'उर्दू' एवं 'पंजाबी' को; चण्डीगढ़ ने 'अंग्रेजी' को; तेलंगाना ने 'उर्दू' को आदि। जम्मू और कश्मीर राजभाषा अधिनियम, 2020 के अनुसार कश्मीरी, डोगरी, उर्दू, हिन्दी और अंग्रेजी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। उर्दू, संस्कृत तथा सिन्धी भाषा से संबंधित कोई विशेष भौगोलिक क्षेत्र नहीं है, पर इन भाषाओं का प्रयोग सर्वत्र पाया गया है।

भारत की जनगणना 2011 (भारत की भाषा एटलस 2011) के अनुसार, भारत की लगभग 96.72 प्रतिशत जन संख्या (1,17,11,03,853) अष्टम अनुसूची में शामिल भाषाओं को बोल-

चाल में प्रयोग करती है।<sup>6</sup> अनुसूचित भाषाओं को बोलने वालों की सर्वाधिक संख्या उत्तर प्रदेश में (19,97,70,172) है; उसके बाद महाराष्ट्र (10,72,93,455); बिहार (10,38,44,271); पश्चिम बंगाल (9,07,93,259); आंध्र प्रदेश (8,38,15,597); तमिल नाडु (7,20,98,315); मध्य प्रदेश (6,72,80,520); राजस्थान (6,48,73,819) आदि का स्थान है। कर्नाटक, गुजरात, ओडिसा, केरल, झारखण्ड, असम, पंजाब, हरियाणा, छत्तीसगढ़, दिल्ली, जम्मू एवं कश्मीर और उत्तराखंड में इन्हें बोलने वालों की संख्या 1 करोड़ से 6 करोड़ के बीच है; हिमाचल प्रदेश, त्रिपुरा, मणिपुर, गोवा, पुडुचेरी तथा चण्डीगढ़ में इनकी संख्या 10 लाख से 1 करोड़ के बीच है जबकि सिक्किम, मेघालय, अरूणाचल प्रदेश, अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह, दमन एवं दीव, नागालैंड, दादरा और नगर हवेली तथा मिजोरम में यह एक लाख से दस लाख के बीच है तथा लक्षद्वीप में यह सबसे कम (55,151) है।<sup>7</sup>

यदि अनुसूचित भाषाओं को बोलने वालों का प्रतिशत देखा जाय तो हिन्दी सर्वाधिक बोलीजाने वाली भाषा है जिसे कुल 31 राज्य/केन्द्र शासित प्रदेशों में बोला जाता है। उसके बाद बांग्ला का स्थान आता है जिसे 17 राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों में; उर्दू (16 राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों में); नेपाली (10 राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों में); पंजाबी का प्रयोग मलयालम तथा मराठी के समान (9 राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों में); ओडिया को 8 राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों में; तेलुगु का उपयोग 7 तथा तमिल का प्रयोग 5 राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों में किया जाता है। इसी प्रकार असमिया, बोडो, गुजराती, मणिपुरी का प्रयोग 4 राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों में; कन्नड़, कोंकणी तथा संथाली भाषाओं का प्रयोग 3 राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों में तथा मैथिली का प्रयोग 2 राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों में और डोगरी, कश्मीरी एवं सिन्धी भाषाओं का प्रयोग सिर्फ एक राज्य/केन्द्रशासित प्रदेश में पाया गया है। 10 संस्कृत भाषा बोलने वालों की संख्या बहुत ही कम (1 प्रतिशत से नीचे) है।

## आलोचनात्मक मूल्यांकन

मूल रूप से संविधान की आठवीं अनुसूची में 14 भाषाओं को शामिल किया गया था जो कि कालांतर में 22 हो गया। जनगणना आयुक्त तथा रजिस्ट्रार जनरल द्वारा 2018 में जारी की गई एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में लगभग 19,500 भाषाओं अथवा बोलियों का प्रयोग होता है जिसमें 121 ऐसी भाषाएँ हैं जिनका प्रयोग दस हजार या उससे अधिक व्यक्तियों द्वारा होता है।

विभिन्न संविधान संशोधनों से नई भाषाओं को आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है, इसके लिए कोई स्पष्ट संवैधानिक मापदंड का प्रावधान नहीं किया जा सका है। किसी भी भाषा को आठवीं अनुसूची में शामिल किए जाने के लिए यह आवश्यक है कि उसका प्रयोग देश की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा करता हो। इस दिशा में भारत सरकार ने पहवा समिति (1996) तथा मोहापात्रा समिति (2003) का गठन क्रमशः श्री अशोक पहवा तथा श्री सीताकांत मोहापात्रा की अध्यक्षता में किया। इनका प्रमुख कार्य आठवीं अनुसूची में नई भाषाओं को शामिल करने हेतु स्पष्ट मापदंड बनाने का था। मोहापात्रा समिति ने 2004 में सरकार को समिति का सुझाव सौंप दिया। तदपश्चात् 2012 में अन्तर मंत्रालय समिति का गठन किया गया जिसकी अध्यक्षता, गृह मंत्रालय के संयुक्त सचिव के हाथों में दिया गया।<sup>11</sup>

विभिन्न बैठकों के बावजूद भी नई भाषाओं को आठवीं अनुसूची में शामिल करने हेतु मापदंड संबंधी आम सहमति नहीं बन पाई। ऐसा माना गया कि भाषाओं एवं बोलियों का प्रयोग काफी गतिशील होती है तथा अलग-अलग जगहों एवं समय में यह भिन्न-भिन्न हो सकती है। अतः इन संबंध में एक स्थिर मापदंड नहीं बनाया जा सकता है। हालाँकि भारत सरकार ने यह माना कि भाषाओं के प्रति सरकार काफी संवेदनशील है तथा अलग-अलग समय पर नयी भाषाओं को आठवीं अनुसूची में शामिल करने हेतु मांगों पर वह हमेशा विचार करती रहेगी।

आठवीं अनुसूची में भाषाओं को शामिल किए जाने के अनेक लाभ हैं। सरकार उस भाषा के विकास एवं संचार के लिए कटिबद्ध हो जाती है। सरकार का यह दायित्व हो जाता है कि उस भाषा को उचित ध्यान एवं सहयोग प्रदान किया जा सके। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित परीक्षाओं में उस भाषा को माध्यम बनाया जा सकता है। विभिन्न साहित्यिक अकादमियों/संस्थाओं द्वारा संबंधित भाषा में पुस्तकों का मुद्रण एवं अनुवाद सुनिश्चित की जाती है।

भारत की जनगणना (2011) के अनुसार भारत में लगभग 99 ऐसी भाषाएँ हैं जिन्हें गैर अनुसूचित भाषाओं (वे भाषाएँ जिन्हें आठवीं अनुसूची में शामिल नहीं किया गया है) के रूप में जाना जा सकता है। इनमें से 56 ऐसी भाषाएँ हैं जिन्हें बोलने वालों की संख्या कम से कम एक राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश में लगभग 5 प्रतिशत है।<sup>12</sup> साथ ही 38 भाषाओं का जिक्र ऐसी भाषाओं के रूप में की जाती है जो अनुसूचित होने हेतु प्रतीक्षारत हैं— अंगिका, बंजारा, बज्जिका, भोजपुरी, भोटी, बुंदेलखण्डी, छत्तीसगढ़ी, घटकी, अंग्रेजी, गढ़वाली,

गोंडी, गुज्जरी, हो, कच्छी, कमतापुरी, कर्बी, खासी, कोदवा, कोक बराक, कुमाँऊनी, कुर्क, कर्माली, लेपचा, लिम्बु, मिजो, मगही, मंडारी, नागपुरी, निकोबारी, पहाड़ी, पाली, राजस्थानी, संभलपुरी, शौरसेनी, सिरैकी, तेन्यिदी तथा टुलु।

यदि सरकार उपर्युक्त भाषाओं को आठवीं अनुसूची में स्थान दे देतो यह एक काफी प्रशंसनीय कदम होगा। परन्तु इससे निश्चय ही आठवीं अनुसूची में काफी भीड़ बढ़ जाएगी। हमें यह भी समझना होगा कि हमारे संविधान-निर्माताओं की मंशा क्या थी और उन्होंने अष्टम् अनुसूची में मूल रूप से सिर्फ 14 भाषाओं को ही शामिल क्यों किया था? साथ ही हिन्दी भाषा के प्रति उनकी वचनबद्धता क्या थी? इसके अतिरिक्त हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि किसी भाषा के साथ अन्याय न हो।

संविधान के अनुच्छेद 350-351 में विशेष निर्देश का उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 350 के अनुसार, "प्रत्येक व्यक्ति किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को यथास्थिति संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भी भाषा में अभ्यावेदन देने का हकदार होगा।" इसी प्रकार अनुच्छेद 350क के अनुसार, "प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के बालिकाओं/बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निर्देश दे सकेगा जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है।"

इसके अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद 350 ख में भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी की व्यवस्था की गई है जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा। "उस विशेष अधिकारी का यह कर्तव्य होगा कि वह इस संविधान के अधीन भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अनवेषण करे और उन विषयों के संबंध में ऐसे अंतरालों पर जो राष्ट्रपति निर्दिष्ट करे, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दे और राष्ट्रपति ऐसी सभी प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा और संबंधित राज्यों की सरकारों को भिजवाएगा।"

अनुच्छेद 351 में हिन्दी भाषा के विकास के लिए निर्देश दिया गया है। यह कहा गया है कि "संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की

सामाजिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्त का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करो।" इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि हमारे संवैधानिक प्रावधान बहुत ही उल्लेखनीय हैं लेकिन कालांतर में, भारत में, भाषा का प्रश्न राजनीतिक बनता चला गया जिससे हमारी राष्ट्रीय एकता भी प्रभावित होने लगी।

### निष्कर्ष

भारत एक बहुभाषी तथा विश्व के लगभग सभी धर्मों को मानने वाले अनुयायियों का प्रजातांत्रिक देश है। संविधान के अष्टम् सूची में मुख्य रूप से 22 भाषाओं को शामिल किया गया है जो देश के लगभग 97 प्रतिशत लोगों द्वारा बोली जाती है। साथ ही 99 ऐसी प्रमुख भाषाएँ हैं जिन्हें अष्टम् सूची में शामिल नहीं किया गया है तथा 38 ऐसी भाषाएँ हैं जिन्हें इस सूची में शामिल करने हेतु मांग की जाती रही है। हमारे संविधान में ऐसे विभिन्न प्रावधान किए गए हैं जिनके माध्यम से अल्पसंख्यकों एवं बहुसंख्यकों, दोनों की भाषाओं को संरक्षित, प्रसारित एवं गतिमान बनाया जा सके। निश्चय ही संविधान-निर्माताओं ने संविधान के अष्टम् सूची के माध्यम से हमें एक ऐसी अनमोल कुंजी दे गए हैं जिसके माध्यम से हम अपने प्राचीन, विविध एवं विशिष्ट धरोहर को संभाल सकते हैं। चूंकि भाषाओं का जुड़ाव लोगों के अन्तर्मन के साथ गर्भनाल-शरीर के रूप में होता है, इन्हें सूक्ष्म, व्यापक एवं विलक्षण रूप में ही समझा एवं संभाला जा सकता है। निश्चित ही हमारे संविधान की अष्टम् सूची का प्रावधान तथा इनमें देश की प्रमुख 22 प्रादेशिक भाषाओं को शामिल किया जाना समावेशी प्रजातंत्र का एक अद्भुत, अनूठा एवं विशिष्ट उदाहरण है जो कि अनेकता में एकता की मिसाल पेश करती है।

संदर्भ सूची:-

1. बी.एल. फड़िया और कुलदीप फड़िया, भारतीय शासन एवं राजनीति, 24वाँ संस्करण, 2020, साहित्य भवन, पृ. 498.
2. मॉरिस जोन्स, भारतीय शासन एवं राजनीति (अनुवाद), पृ. 102, (बी. एल. फड़िया और कुलदीप फड़िया, भारतीय शासन एवं राजनीति, 24वाँ संस्करण, 2020, साहित्य भवन, पृ. 498).
3. Lok Sabha Secretariat (2014) Constituent Assembly

Debates, Sixth Reprint, Book No. 4, Vol IX, 30 July 1949 to 18th September, p. 1319.

4. वही, पृ. 1492.
5. सी.पी. अरोरा, भारत का संविधान, द्विभाषी संस्करण, 2022, पृ. 133-136.
6. Census of India, Language Atlas of India 2011, Ministry of Home Affairs, Government of India, New Delhi, p. 24.
7. वही, पृ. 24.
10. वही, पृ. 24.
11. Lok Sabha, Unstarred Question No. 2237 for 29-11-2016, Available at <http://www.mha.gov.in/MHA1/Par2017/pdfs/Par2016-pdfs/Is-291116/2237.pdf>.
12. Census of India, Language Atlas of India, 2011, p. 72



पूर्व कुल सचिव, राष्ट्रीय संग्रहालय संस्थान, जनपथ, नयी दिल्ली एवं वर्तमान में एशोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री गुरु तेग बहादुर खालसा महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007.  
[DA-194, शीशमहल अपार्टमेंट, शालीमार बाग, दिल्ली-110088.]

मोबाइल: 9899173167

E-mail: bkthakur1510@gmail.com

### शुद्धि पत्र

सभी लेखकों/पाठकों को सूचित किया जाता है कि अंक-3 मई-जून 2022 में डॉ. प्रीति का आलेख 'सांस्कृतिक विरासत का धनी मेरा प्रिय भारत' भूलवश डॉ. प्रीति खरे के नाम से प्रकाशित हो गया। लेखक का नाम सिर्फ डॉ. प्रीति है।

— संपादक

# तीसरी क़सम

-फणीश्वरनाथ रेणु

शोध-संसार

## आँचलिकता की मिट्टी में सराबोर एक मार्मिक फिल्म : तीसरी क़सम

डॉ. संगीता राय

“रेणु की इस कहानी में देखा जाए तो कई ऐसी जगहें हैं जहाँ वो ग्रामीण समस्याओं की तरफ़ इशारा करते हैं। उनके विस्तार में नहीं जाते, उन्हें छूकर निकल जाते हैं। हीरामन का बाल-विवाह हुआ था। पत्नी का चेहरा याद नहीं। गौने के पहले ही दुलहिन मर गई। अब उसकी भाभी ज़िद करके बैठी है कि जब भी हीरामन की शादी करेगी तो कुमारी से ही। कुमारी का मतलब हुआ पाँच-सात साल की लड़की। यानी बेमेल विवाह। बाल-विवाह और बेमेल-विवाह दोनों का ज़िक्र रेणु करते हैं पर उसके विस्तार में नहीं जाते। हीरामन बात बदल देता है और पूछता है कि “आपका घर कौन ज़िल्ला में पड़ता है?”। कानपुर सुनते ही वह ठठाकर हँसता है। कहता है कि फिर तो नाकपुर भी होगा। हीराबाई के ये कहते ही कि नागपुर भी है, वो हँसकर दोहरा हो जाता है।”

तीसरी क़सम फणीश्वरनाथ रेणु की कृति है। पर इस कृति को लेकर कुछ सपने गीतकार शैलेंद्र ने संजोये। तीसरी क़सम, शैलेंद्र के सपने के सच होने की कहानी है। बड़े पर्दे पर इस कृति को रचने का श्रेय उन सभी को है जो शैलेंद्र के सपने के साथ थे। बासु भट्टाचार्य ने इस फ़िल्म का निर्देशन किया तो दूसरी तरफ़ स्वयं कथाकार रेणु ने इस फ़िल्म के पटकथा एवं संवाद लिखे। हीरामन और हीराबाई की जोड़ी रही राजकपूर और वहीदा रहमान की। रेणु अपनी कहानियों में गाँव के दुःख दर्द, हताशा, पीड़ा को बुनते हैं। पर रेणु के पात्र जीवट हैं। परिस्थितियों से लड़ना जानते हैं, संघर्ष करना जानते हैं। तीसरी क़सम भी एक ऐसी ही कहानी है। प्रेम में पगी हुई लैला- मजनूँ, शीरी- फरहाद

की तरहा। पर अंत दुखद होकर भी जीवन के प्रति आस्था को कम नहीं करता। यही रेणु के पात्रों की खूबसूरती है। वे परिस्थितियों से लड़ना जानते हैं, संघर्ष करना जानते हैं। तीसरी क़सम एक ऐसी ही कहानी है जहाँ ये सभी तत्व हैं। हीरामन कहता है न- “फटे करेजा गाओ गीत, सुख सेने की यही है रीत”। असल में यही जीवन-दर्शन है। तीसरी क़सम पर्दे पर रचा गया साहित्य है। पर्दे पर चित्रित एक काव्यमय प्रस्तुति है। फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी में आँचलिक कथा साहित्य के जन्मदाता हैं। उनकी कहानियों में लोक का रंग है। रेणु अपनी कहानियों में निम्न वर्ग के दुःख-दर्द और तकलीफ़ को बयान करते हैं पर उनके जीवन में आई छोटी-छोटी खुशियों को समेटना नहीं भूलते। ‘रेणु के कथा साहित्य में इन्द्रियबोध की गंध, वर्ण-स्पर्श, ध्वनि, रस के बिंबों का अत्यधिक प्रयोग कलात्मक ढंग से हुआ है।’<sup>1</sup> शैलेंद्र मुंबई में रहे पर लोक से कटकर नहीं। शैलेंद्र के गीतों में लोक- जीवन हमेशा से धड़कता रहा। तीसरी क़सम के माध्यम से वो बताना चाहते थे कि प्रेम केवल समुद्र के किनारे नहीं होता, चाँदनी रात में नहीं होता, बड़ी गाड़ी में बैठकर नहीं होता। प्रेम का एहसास तो एक गाड़ीवान भी उसी शिद्दत से कर सकता है।

तीसरी क़सम-गाँव की मिट्टी की याद दिलाती है। कहानी के पात्र इतने जीवंत हैं कि वह पाठकों से संवाद करते लगते हैं। फ़िल्म देखते हुए आभास होता है कि ये पात्र हमारे आस-पास ही बैठकर बतकही कर रहे हैं। राजकपूर पर हीरामन हावी है। या यूँ कह लें कि राजकपूर हीरामनमय हो गए हैं और वहीदा हीराबाईमय। हीरामन सीधा-सादा है पर खुद को होशियार समझता है। तभी तो दूसरों को कहता है- देहाती भुच्च कहीं के। वो बड़ी-बड़ी बातें जानता है। उसकी बातों में जीवन-दर्शन छुपा है। वो अपनी ज़िंदगी में दो क़समें खाता है- बाँस की लदनी नहीं लादेगा

और चोरी-चकारी का माल नहीं लादेगा। रेलवे स्टेशन पर हीरामन की गाड़ी लगी है। उसकी सवारी आती है। पर ये कैसी सवारी है। हीरामन का जी धड़कता है। गाड़ी के अंदर से खुशबू आती है। हीरामन के चेहरे पर भय की रेखा है। कहीं गाड़ी में चुड़ैल-पिशाचिन तो नहीं.... हीरामन को ठीक-ठीक याद भी नहीं कि सवारी के पैर सीधे थे या उलटे। गाँव- देहात में कहते भी हैं कि रात के वक्त भूत-पिशाच खुशबू या बदबू छोड़ते हैं। आप जैसे ही उसके प्रभाव में आते हैं वो आपको पकड़ लेते हैं। गाँव के लोग कहते हैं कि अगर रात में कहीं से गंध आए भी तो चुप रहना चाहिए। कुछ कहना नहीं चाहिए। रेणु ने गाँव में प्रचलित इस क्रिस्से को इस कहानी की शुरुआत में ही पिरो दिया है। गाँवों में बसने वाला, गाँवों को समझने वाला सीधे-सीधे फ़िल्म से जुड़ जाता है। भूत के पंजे पीछे होते हैं। हीरामन को याद नहीं आता कि उसकी सवारी के पंजे आगे थे या पीछे। वह महादेव से रक्षा की गुहार करता है।

रेणु की इस कहानी में देखा जाए तो कई ऐसी जगहें हैं जहाँ वो ग्रामीण समस्याओं की तरफ़ इशारा करते हैं। उनके विस्तार में नहीं जाते, उन्हें छूकर निकल जाते हैं। हीरामन का बाल-विवाह हुआ था। पत्नी का चेहरा याद नहीं। गौने के पहले ही दुलहिन मर गई। अब उसकी भाभी ज़िद करके बैठी है कि जब भी हीरामन की शादी करेगी तो कुमारी से ही। कुमारी का मतलब हुआ पाँच-सात साल की लड़की। यानी बेमेल विवाह। बाल-विवाह और बेमेल-विवाह दोनों का ज़िक्र रेणु करते हैं पर उसके विस्तार में नहीं जाते। हीरामन बात बदल देता है और पूछता है कि “ आपका घर कौन ज़िल्ला में पड़ता है”। कानपुर सुनते ही वह ठठाकर हँसता है। कहता है कि फिर तो नाकपुर भी होगा। हीराबाई के ये कहते ही कि नागपुर भी है, वो हँसकर दोहरा हो जाता है। हीरामन गाड़ी चलाता जाता है और तेगछिया के पास ले जाकर गाड़ी रोक देता है। हीरामन हीराबाई को बताता है कि जिस राजा के मेले से हम लोग आ रहे हैं उसी का दिमाद-गोतिया है..... जा रे जमाना। हीरामन बातों को चाशनी में डुबोना जानता है। वह जानता है कि कहाँ उसे बात कह देनी है और कहाँ उसे रुक जाना है। बतरस का पूरा आनंद लेना वह जानता है। हीराबाई के पूछने पर वो उसे लामनगर ड्योढ़ी की कहानी सुनाता है। हीरामन के पास क्रिस्सों का खजाना है। वो हीराबाई को ये क्रिस्से सुनाता चलता है। रास्ते ऐसे ही तो कटते हैं। क्रिस्सों से, गीतों से,

बातों से। फ़िल्म देखते हुए एहसास होता है जैसे एक यात्रा दर्शक भी कर रहा है हीरामन और हीराबाई के साथ। वह भी उनके साथ सफ़र कर रहा है। हीरामन गुनगुनाता है- सजनवा बैरी हो गए हमार..... हीरामन की गायकी में सहजता है। उसके सरगम उसकी ज़िंदगी के उतार-चढ़ाव को दर्शाते हैं। हीरामन के पास किताबी ज्ञान नहीं पर जीवन का अनुभव है। हीराबाई तारीफ़ करती है तो हीरामन लजा जाता है। राजकपूर पर्दे पर एक अभिनेता के रूप में ही नहीं आते बल्कि वो शैलेंद्र के उस मित्र के रूप में भी आते हैं जो उनके सपने को साकार करना चाहता है। हर उस व्यक्ति के परिचित के रूप में आते हैं जो अपने गाँव-गिरान से दूर हो गया है। “ कई स्थलो पर तो ऐसे प्रसंग हैं जिनमें कोई संवाद ही नहीं है। वहाँ परिवेश की परिकल्पना ही सब कुछ व्यंजित कर देती है। रात की चाँदनी में हीरामन का गीत, गाँव की छोटी-छोटी गलियों से हीराबाई को बैलगाड़ी में बिठाते हुए ले जाना और पीछे-पीछे बच्चों का उल्लासमय होकर गाना - पिया की पियारी भोली-भाली रे दुलहनिया- जैसे दृश्य खंड कहानी में वर्णित शब्दों से भी अधिक सरस और सुंदर बन पड़े हैं।”<sup>2</sup> बासु भट्टाचार्य जानते हैं कि यही दृश्य और गलियों में गाए जाने वाले यही गीत जीवन का रस हैं। फ़िल्म देखते हुए मेरे होंठों पर एक सहज मुस्कान आ जाती है। लगता है पूरा बचपन आँखों के सामने घूम गया। मुझे याद है कि हमारे मोहल्ले से कोई डोली जाती तो हम गाते- ए दुलहनिया गाजर खो, तोर भईया अईलन नईहर जो। जो घटनाएँ किसी के लिए महत्वहीन हैं वो रेणु के यहाँ विशेष हो जाती हैं। साधारण असाधारण हो जाता है। तीसरी क्रसम कहानी है हीरामन और हीराबाई की। अन्य पात्र भी आते हैं पर नेपथ्य में। पर ये पात्र आकर चले नहीं जाते, बल्कि कहानी को मज़बूती प्रदान करते हैं। आंचलिकता के रंग से रंगकर जाते हैं।

कहानी कहना एक कला है। और कहानी कहने की लम्बी परम्परा रही है। रेणु इस कला को जानते हैं और रेणु के पात्र भी। हीरामन कहानी कहना जानता है। कजरी नदी के किनारे वो गाड़ी को रोकता है। हीराबाई नहा-धोकर तैयार होती है। कजरी की धारा को देखते- देखते उसकी आँख लग जाती है और हीरामन पास के गाँव से जलपान के लिए दही-चूड़ा, चीनी ले आता है। हीरामन साथ में भोजन करने से मना कर देता है। पर जब हीराबाई खाने से मना कर देती है तो वह सकुचाते उसके



साथ बैठकर खाता है। हीराबाई को फ़ारबिसगंज पहुँचने की जल्दी नहीं है। हीराबाई कहती है- क्यों मीता, तुम्हारी अपनी बोली में कोई गीत नहीं है क्या? हीरामन सोच में पड़ जाता है कि कौन सा गीत गाए वह जिसमें कथा भी हो और गीत भी। क्योंकि हीराबाई को दोनों ही पसंद हैं। आज भी कहानी सुनाने वाले कथा और गीत के साथ कहानी सुनाते हैं। हीरामन महुआ घटवारिन की कहानी सुनाता है। हीरामन कहानी सुनाता है और हीराबाई खो जाती है। वो महुआ घटवारिन को महसूस करती है। सौदागर के हाथों महुआ को बेच दिया जाना और सावन-भादो की उमड़ती नदी में महुआ का कूद जाना। हीरामन कहानी कहता है और हीराबाई के चेहरे पर भाव आते-जाते हैं। पर्दे पर वहीदा, वहीदा नहीं रहती बल्कि महुआ घटवारिन हो जाती है। बचपन से लेकर अब तक की तड़प चेहरे की रेखाओं में दिखाई देती है। हीराबाई की आँखें गीली हैं। वो अपनी आँखें चुराती है। वो बस इतना ही कहती है- तुम तो उस्ताद हो मीता।

शैलेंद्र ने अनेकानेक गीत रचे जिसने राजकपूर को लोगों तक पहुँचाया। सरहद पार तक राजकपूर के गीत गुनगुनाए जा रहे थे तो जाहिर है इसके पीछे सबसे बड़ी वजह शैलेंद्र थे। शैलेंद्र शब्द की ताकत को समझते थे। वह जानते थे कि लोक का साधारण सा सुनाई देने वाला शब्द हृदय पर असाधारण छाप छोड़ता है। लता मंगेशकर ने शैलेंद्र को याद करते हुए कहा था-“ शैलेंद्र जी हमेशा मेरे मन मुताबिक ही गीतों में अर्थपूर्ण शब्द रखते थे।”<sup>3</sup> राजकपूर महज एक रूप में इस फ़िल्म में काम करते हैं। शायद राजकपूर को भी नहीं पता था कि वो सिर्फ़ शैलेंद्र के सपने को पूरा नहीं कर रहे हैं बल्कि स्वयं के लिए भी एक कीर्तिमान गढ़ रहे हैं। एक फ़िल्म जिसके माध्यम से वो अपने दर्शकों के दिलों पर राज करेंगे। फ़िल्म में कहानी आगे बढ़ती है। गाड़ी ननकपुर रूकती है। हीरामन हीराबाई के लिए चाय लेकर आता है। हीराबाई लोटपोट हो जाती है ये जान कर कि कुँवारे आदमी को चाय नहीं पीनी चाहिए। हीरामन लजा जाता है। हीराबाई उसे मीता, गुरु जी, उस्ताद कहती है। हीरामन फिर से लजा जाता है तब हीराबाई कहती है एक अक्षर सिखाने वाला भी गुरु है। हीराबाई स्वयं बहुत अच्छी तरह जानती है कि जीवन की पाठशाला जो सिखाती है वो सबसे बड़ी शिक्षा। गाड़ी फ़ारबिसगंज पहुँच जाती है। पर्दे पर मेले-ठेले की रौनक दिखाई देती है। ये एक समय



होता है जब दर्शक ये भूल जाता है कि वह सच में कोई सिनेमा देख रहा है या नौटंकी। बासु भट्टाचार्य ने इस पूरे दृश्य का खूबसूरत ताना-बाना बुना है। यह फ़िल्म उन फ़िल्मकारों के लिए भी किसी सबक से कम नहीं जो साहित्य पर आधारित फ़िल्में तो बनाते हैं पर उसकी आत्मा को मार देते हैं। मूलकथा कुछ और रहती है पर जो दिखाई देता है वो कुछ और ही होता है। बहुत सारे कहानीकारों का सम्भवतः इसी कारण से सिनेमा से मोहभंग हो चुका था। उनमें से एक मुंशी प्रेमचंद भी थे।

इन दो प्रेमियों की कथा में कई गौड़ पात्र भी हैं। विश्वा मेहरा जो पलटदास की भूमिका में हैं। “ पलटदास की हास्यास्पद मनोविकृति न कुत्सित घृणा उत्पन्न करती है और न फूहड़ हास्य- वह जीवन की सहज लालसा की कटु त्रासदी से लथपथ होती है। पलटदास के लिए हीराबाई से निकटता की सार्थकता चरण सेवा में भी है। अतृप्ति का दारुण अट्टहास जगा दिया है, विश्वा मेहरा ने इस दृश्य में। स्त्री से ललचाया, स्त्री से अनभिज्ञ पलटदास उस अनुभव से अंतःजागृत होता है। इस एक दृश्य से विश्वा मेहरा मरते दम तक हमारी आँखों में मौजूद रहेंगे। हीराबाई की निकटता महसूस करना पलटदास के कीर्तन की सार्थकता है।”<sup>4</sup>

हीराबाई जानती है कि समाज उसे क्या समझता है। वह ज़र्मीदार से कहती है- “आपकी नज़रों में - मैं एक बाज़ारू औरत हूँ और उसकी नज़र में देवी। आपकी तरह वे भी कहाँ मुझे समझ पाते हैं ज़र्मीदार साहब। मगर उनकी ग़लतफ़हमी में जो नशा है, वो न आपके ऐशबाग में है, न

विलयाती शराब में।” “ ऐसा नशा है हीरामन की इस गलतफहमी का हीराबाई पर कि ज़मींदार के ताने से टूट जाने की जगह स्त्रीत्व की शक्ति और शक्ति का दर्प तक उभरता है। पूरी शिद्दत के साथ वार करता है जब हिंकारत में काइयाँपन घोलकर थूक उछलता ज़मींदार कहता है कि- सती सावित्रियाँ बनाने से नहीं बना करती हीराबाई?”<sup>5</sup> हीराबाई अपनी नियति जानती है। उसे पता है महुआ घटववारिन की पीड़ा का। हीराबाई जा रही है। उसे सौदागर ने खरीद लिया है। पर मन का क्या करे....। हीरामन स्टेशन पर नहीं आया है पर ट्रेन आ गई है। हीराबाई कैसे जा सकती है अपने मीत से मिले बिना। वो बिरजू से कहती है कि सोचती हूँ कि इस गाड़ी से न जाऊँ बिरजू कहता है- पर दूसरी गाड़ी कल इसी वक़्त मिलेगी। हीराबाई उसकी मुश्किल आसान कर देती है ये कहकर कि एक रात मुसाफिरखाने में बिता लूँगी। बिरजू कहता है- एक बात पूछूँ बाई पर हीराबाई मना कर देती है। मन के भावों को बस महसूस किया जा सकता है, उसे कहा नहीं जा सकता। भावनाओं का अथाह समन्दर जिसे हीराबाई ने बाँधकर रखा है, वो शब्दों में ढलते ही बह जायेगा.... बाँध टूट जायेगा....फिर सम्भालना मुश्किल होगा। इसलिए हीराबाई बिरजू को चुप करा देती है। कहती है- नहीं कुछ मत पूछो... कुछ मत कहो- कुछ कहने-सुनने की तो गुंजाइश ही नहीं है।...खुसरो दरिया प्रेम का, उल्टी वाकी धार.....। “तीसरी क्रसम” फ़िल्म नहीं जीवन का सत्य है। फ़िल्मों में समाज को धता बताते हुए नायक-नायिका एक हो जाते हैं। पर रेणु जानते हैं कि ये डगर इतनी आसान नहीं। इतना सहज नहीं है कि हीरामन हीराबाई को स्वीकार कर ले या हीराबाई हीरामन को। दोनों अपनी सीमाओं को जानते हैं। फ़िल्म में भी अंत यही है- इसके अंत को न रेणु बदलते हैं न शैलेन्द्र। किसी फ़िल्म का अंत बदला जा सकता है पर जीवन का सत्य नहीं। एक अन्य महत्वपूर्ण बात रेणु की नायिकाएँ भले ही ग्रामीण हैं पर सशक्त हैं। वह कमज़ोर नहीं। वह मज़बूती से अपनी बात को कहना जानती हैं और रखना जानती हैं। ग्रामीण स्त्रियाँ बिना किसी लाग-लपेट के अपनी बात को स्पष्ट रूप से कहना जानती हैं। तीसरी क्रसम की हीराबाई भी स्पष्ट है कि उसे क्या करना है। वह भावनाओं का सम्मान करते हुए जो निर्णय लेती है वह यथार्थ के धरातल पर खड़े होकर लेती है।

“साहित्य और सिनेमा अपने कलारूप में स्वतंत्र है। साहित्य साहित्य है और सिनेमा सिनेमा। दोनों में बुनियादी अंतर है। दोनों साथ-साथ चलें तो कोई हर्ज नहीं पर यह कठिन है। लेकिन दोनों एक-दूसरे

के लिए सहायक कार्य जरूर कर सकते हैं। फ़िल्म के लिए साहित्य आधार बन सकता है तो साहित्य फ़िल्म से लेखन की कुछ शैली और विद्या प्राप्त कर सकता है। दोनों एक-दूसरे के लिए पूरक कार्य करते रहें तो यह दोनों विधाओं के लिए लाभदायक तो रहेगा ही, साथ ही मनुष्य की कलात्मक दृष्टि के विकास में भी सहायक सिद्ध होगा।”<sup>6</sup> रेणु का लेखन और बासु भट्टाचार्य का निर्देशन इसका एक खूबसूरत उदाहरण है। साहित्य और सिनेमा का मेल ऐसे ही होना चाहिए। दूसरी तरफ़ निर्माता गीतकार “शैलेन्द्र जीवन-सौन्दर्य के कवि हैं। उत्साह और जीवंत-चेतना के कवि हैं। ...वे धरती की धड़कनों को आत्मसात करने वाले रचनाकार हैं।”<sup>7</sup> शैलेन्द्र शब्दों का आडंबर नहीं रचते। “शैलेन्द्र गूढ़तम भावों को सरलतम शब्दों में अभिव्यक्त कर देने वाले गीतकार थे। उनके गीतों में इतनी तीक्ष्ण संवेदना होती कि वे दिल की गहराइयों में उतर जाते और इतने सहज भी कि करोड़ों जुबानों पर आसानी से चढ़कर गुनगुनाये जाने लगे। ... शब्दों के साथ खिलवाड़ नहीं, शब्दों के स्पन्दन की बारीक बुनावट है।”<sup>8</sup> एक निर्माता और एक गीतकार के रूप में भी शैलेन्द्र साहित्य के महत्व को जानते थे। इन तीनों का मेल एक आँचलिक कहनी को पर्दे पर उतारने का प्रयास करता है। रेणु की इस कहानी में प्रेम है, बिछोह है। कहानी के भीतर कहानी है, जीवन का संगीत है। गाँव-गिरान के क्रिस्से हैं। विकास की रफ़्तार में जब हम इतने आगे निकल आए हैं, तीसरी क्रसम वो बरगद का पेड़ है जहाँ बैठकर थोड़ी देर सुस्ता लेने का जी चाहता है। जहाँ गाँव के माटी की खुशबू है।

#### सन्दर्भ:

1. हिंदी सिनेमा- बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक, सम्पादक-प्रह्लाद अग्र-वाल, पृ. 289
2. सिनेमा और साहित्य, हरीश कुमार, पृ. - 115
3. लता- सुर-गाथा, यतींद्र मिश्र, पृ. 265
4. कवि शैलेन्द्र-जिंदगी की जीत में यक्रीन, प्रह्लाद अग्रवाल, पृ. 69
5. कवि शैलेन्द्र-जिंदगी की जीत में यक्रीन, प्रह्लाद अग्रवाल, पृ. 81
6. साहित्य और सिनेमा, सम्पादक- पुरुषोत्तम कुंदे, पृ. 205
7. कवि शैलेन्द्र - जिन्दगी की जीत में यक्रीन, प्रह्लाद अग्रवाल, पृ. 26
8. राजकपूर: आधी हक्रीकत आधा फ़साना, प्रह्लाद अग्रवाल, पृ. 48



एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी विभाग, मिरांडा हाउस  
पटेल चेस्ट मार्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 110007  
मो. 990218282



शोध-संसार

## वर्तमान संदर्भ में संत काव्य की प्रासंगिकता

डॉ. प्रणव शास्त्री

“संत साहित्य के युग की परिस्थितियों पर विचार करें तो उस समय चारों ओर सामाजिक भेदभाव और वैमनस्यता का बोलबाला था। सामाजिक कट्टरता समाज की जड़ों को खोखला कर राष्ट्रीय एकता को हानि पहुँचा रही थी। रूढ़ियाँ और अंधविश्वास मानवता का हनन कर रही थीं। मेरा मानना है कि रूढ़ियाँ और अंधविश्वास ऐसी मानवीय ग्रंथियाँ हैं जिनसे मानव-विकास की प्रगति अवरुद्ध हो जाती है और विवेक शून्यता का जन्म होता है। ऐसे समय में कबीरदास जी के साहित्य में समानता के भाव, जातिवाद साम्प्रदायिकता जैसी अमानवीय समाज व्यवस्था का विरोध, सामाजिक व धार्मिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह व्यक्त हुआ है। कुल मिलाकर संत परम्परा कल्याणकारिणी थी। संत कवि अपने युगीन परिवेश में फैली असंगतियों के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द करते रहे।”

संतों के बारे में विचार करें तो गीता में श्रीकृष्ण ने संतों की चर्चा करते हुए कहा है कि -

समदुःख सुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।

तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्य निन्दात्म संस्तुतिः॥

अर्थात् जो सुख एवं दुःख दोनों को ही समान भाव से देखता है, जिसे अपने मान-अपमान, स्तुति एवं निन्दा की चिंता नहीं रहती, जो धैर्य से काम लेता है, वही संत है। पाणिनी ने भी अष्टाध्यायी 'के इन सूत्रों के माध्यम से बताया है कि 'शम्' शब्द 'त' प्रत्यय से संयुक्त होकर 'शान्त' बनता है। इसी का अपभ्रंश 'संत' शब्द है।

कबीरदास जी ने भी संत की व्याख्या करते हुए कहा है -

निरवैरी निहकामता, साईं सेती नेहा

विषया सून्यारा रहै, संतन के अंग एहा।<sup>2</sup>

अर्थात् जिसका कोई शत्रु नहीं है, जो निष्काम है, प्रभु से प्रेम करता है और विषयों से असम्पृक्त रहता है, वही संत है।

स्पष्ट है किसी भाषा या विषय विशेष के वाचिक और लिखित (शास्त्रसमूह) रूप को साहित्य कहते हैं। इसलिए संत साहित्य देश की राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप विरचित भावनात्मक एवं अनुभूतिपूर्ण जनसाहित्य है।

मूलरूप से संत साहित्य को विषय-वस्तु की दृष्टि से तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं

(1) जिसमें अपने विचारों का प्रतिपादन किया गया है।

(2) जिसमें विभिन्न धर्मों व सम्प्रदायों की रूढ़ियों का खण्डन किया गया है।

(3) जिसमें कवि ने वाद-विवाद और खण्डन-मंडन से ऊपर अपनी मौलिक अनुभूतियों का प्रकाशन भाव-पूर्ण शब्दों में किया है।

संत साहित्यकारों के कवित्व का सर्वोत्कृष्ट रूप तीसरे वर्ग के काव्य में है जिसमें उन्होंने अपने अलौकिक प्रियतम के प्रेम की अभिव्यंजना की है।

हिन्दी साहित्य में संत साहित्य का सूत्रपात उस समय हुआ जब हिन्दी स्वयं ही बाल्यावस्था में थी। अर्थात् जब हिन्दी अपभ्रंश के गर्भ में अव्यक्त रूप से विद्यमान थी। जिस प्रकार हिंदी साहित्य के प्रत्येक विधा में मतभेद दृष्टिगत होते हैं वैसे ही संत परंपरा के लिए भी विद्वानों

में मतभेद रहे। मुख्य रूप से पंडित परशुराम चतुर्वेदी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल।

पं. परशुराम चतुर्वेदी ने संत साहित्य के सूत्रपात के संबंध में लिखा है, वह संत परंपरा के इतिहास को समझने के लिए सटीक है। “संत परंपरा का प्रथम युग वस्तुतः जयदेव से आरंभ होता है और उनके पीछे दो सौ वर्षों तक के संत अधिकतर पथ-प्रदर्शकों के ही रूप में आते हुए दीख पड़ते हैं। विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी में कबीर साहब का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने सर्वप्रथम संतमत के निश्चित सिद्धांतों का प्रचार विस्तार के साथ एवं स्पष्ट शब्दों में आरंभ किया।”<sup>3</sup>

जहाँ परशुराम चतुर्वेदी ने जयदेव से ही संत काव्य परंपरा का आरम्भ माना है वहाँ दूसरी ओर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने संत नामदेव से। शुक्ल जी ने लिखा है, “महाराष्ट्र देश के प्रसिद्ध भक्त नामदेव ने हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए सामान्य भक्ति मार्ग का भी आभास दिया। उसके पीछे कबीरदास ने विशेष तत्परता के साथ एक व्यवस्थित रूप में यह मार्ग ‘निर्गुणपंथ’ के नाम से चलाया।

दोनों विचारों के अनुशीलन से निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि संत साहित्य का आरंभ गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव से हुआ है। किन्तु प्रारंभ में उसकी रेखा क्षीण, धूमिल और अव्यवस्थित थी। वस्तुतः संतधारा की यह क्षीण और अव्यवस्थित रेखा संत नामदेव के द्वारा व्यवस्थित, प्रांजल और प्रशस्त बनायी गई।<sup>4</sup>

नामदेव जी ने 80 वर्ष के दीर्घ जीवन-काल में अनेक लम्बी यात्राएँ करके उत्तर-भारत का भ्रमण किया और अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया, जिसके स्मारक अब भी राजस्थान और पंजाब के अनेक स्थानों पर उपलब्ध हैं। कबीर, रैदास, रज्जद, दादू आदि संतों ने भी नामदेव का नाम बड़ी श्रद्धा से लेते हुए उनकी गणना उच्च कोटि के संतों के रूप में की है। नामदेव की हिन्दी में रचित पदावली बड़ी संख्या में मिलती है।<sup>5</sup> इन सभी तथ्यों से स्पष्ट है हिन्दी सन्त-काव्य परम्परा के प्रवर्तन का श्रेय कबीर की अपेक्षा नामदेव को अधिक है।

पन्द्रहवीं शताब्दी में महात्मा कबीर का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने अपनी प्रखर प्रतिभा, सुदृढ़ व्यक्तित्व और प्रौढ़ चिन्तन एवं कवि-सुलभ सुहृदयता एवं मार्मिक व्यंजना-शैली के बल पर संत-मत और संत-काव्य का प्रचार शीघ्र ही सारे उत्तरी भारत में कर दिया।<sup>6</sup>

माना कि नामदेवजी ने संत परंपरा और साहित्य के लिए अथक प्रयास किये लेकिन उन के व्यक्तित्व में कोमलता अधिक होने के कारण वे अपने विरोधियों से संघर्ष और वाक युद्ध में प्रवृत्त नहीं हुए, किन्तु कबीर ने काशी के पंडितों और दूसरे विद्वानों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा और अपनी युक्तियों से उनका मुँह सदा के लिए बन्द कर दिया।<sup>7</sup> इस तरह संतमत के मार्ग से बीच के कंकड़-पत्थरों, झाड़ियों एवं काँटों को दूर करके उसे साफसुथरा व प्रशस्त बनाने का कार्य कबीर के द्वारा हुआ। उनके पश्चात् तो संत-मत नये नये पंथ का रूप धारण करके निर्बाध रूप से आगे बढ़ता रहा। इसलिए इन पंथों में कबीर-पंथ अतिरिक्त उल्लेखनीय हैं।

उन्नीसवीं शती तक आते-आते अनेक संतों द्वारा अनेक नये-नये पंथ स्थापित किये गये, किन्तु सिद्धान्त व विचारधारा की दृष्टि से इनमें विशेष मौलिकता नहीं मिलती - मूल स्वरूप इस सबका एक ही है। इतना अवश्य है कि धीरे-धीरे ये पंथ भी अपने मूल उद्देश्य से दूर हटकर रूढ़ियों-विधि-विधानों, पाखण्ड प्रवर्तन एवं माया-ज्ञान की बुराइयों से ग्रस्त हो गये। किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि संत-काव्य की परम्परा हिन्दी में 14-15 वीं शती से प्रारम्भ होकर बीसवीं शती तक अखण्ड रूप से चलती रही।

स्पष्ट है कि भारतीय संत-परम्परा का इतिहास काफी प्राचीन है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने नामदेव एवं कबीर द्वारा प्रवर्तित भक्ति धारा को ‘निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा’ की संज्ञा से अभिहित किया है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे ‘निर्गुण भक्ति साहित्य’ तथा डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे ‘संत काव्य परंपरा’ का नाम दिया है। संत साहित्य भक्ति-काल की मात्र काव्य-धारा नहीं बल्कि निर्गुणमार्गी संत-काव्य भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य का आरंभिक अंश है। सामान्यतः इस परम्परा के प्रवर्तन-का श्रेय कबीर को दिया जाता है, किन्तु उनसे पूर्व भी अनेक संत हो चुके थे, जिन्होंने हिन्दी में रचना की।<sup>8</sup> लेकिन निर्विवाद रूप में संत कवियों में सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्तित्व महात्मा कबीर का ही था।

संत-परम्परा में महत्त्वपूर्ण कवियों में दादू दयाल, सुन्दरदास, रज्जबदास, यारी साहब, पलटू साहब, मलूकदास, प्राणनाथ, आदि तथा प्रसिद्ध कवयित्रियों में दयाबाई व सहजोबाई ने उत्कृष्ट कोटि की काव्य रचना की इनके काव्य में भी ईश्वर की व्यापकता, हिन्दू-मुस्लिम एकता, संसार की अनित्यात्मकता, अलौकिक प्रियतम में प्रेम और विरह का चित्रण हुआ है। इन सभी संतों का साहित्य इस परंपरा में अपना अप्रतिम स्थान रखता है। कालान्तर में नानकदेव ने ‘नानकपंथ’,

दादूदयाल ने 'दादूपंथ', हरिदास ने 'निरंजनी सम्प्रदाय' तथा मल्लूकदास ने 'मल्लूक पंथ' की स्थापना की। कबीरदास के नाम पर भी 'कबीर पंथ' की स्थापना हुई<sup>9</sup>

जैसा कि सर्वविदित है कि संत काव्य परंपरा के सशक्त दावेदार कबीर दास जी माने जाते हैं और कबीर दास जी की साखी सबद रमैनी ही इस परंपरा के सिद्धांत हैं। हम सभी पढ़ते आ रहे हैं कबीरदास जी ने जीवन के प्रत्येक पक्ष को लिखा उन्होंने जो लिखा वह सार्वजनिक लिखा। मेरा मानना है कि कबीर दास जी का साहित्य अनुभव जनित है। निर्विवाद रूप से समस्त विद्वानों ने भी यह स्वीकार किया है कि कबीर कालातीत है। उनको समय की सीमाएँ नहीं बांध सकती उनके सिद्धांत हजारों वर्ष पहले जितने प्रासंगिक थे उतने ही आज हैं।

संत साहित्य के युग की परिस्थितियों पर विचार करें तो उस समय चारों ओर सामाजिक भेदभाव और वैमनस्यता का बोलबाला था। सामाजिक कट्टरता समाज की जड़ों को खोखला कर राष्ट्रीय एकता को हानि पहुँचा रही थी। रूढ़ियाँ और अंधविश्वास मानवता का हनन कर रही थीं। मेरा मानना है कि रूढ़ियाँ और अंधविश्वास ऐसी मानवीय ग्रंथियाँ हैं जिनसे मानव-विकास की प्रगति अवरूद्ध हो जाती है और विवेक शून्यता का जन्म होता है। ऐसे समय में कबीरदास जी के -साहित्य में समानता के भाव, जातिवाद साम्प्रदायिकता जैसी अमानवीय समाज व्यवस्था का विरोध, सामाजिक व धार्मिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह व्यक्त हुआ है। कुल मिलाकर संत परम्परा कल्याणकारिणी थी। संत कवि अपने युगीन परिवेश में फैली असंगतियों के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द करते रहे। चाहे सामाजिक विसंगतियाँ हों, चाहे धार्मिक कुरीतियाँ हों, चाहे नैतिक विडम्बनाएँ हों - इन सब जटिलताओं को केन्द्र में रखकर जो विचार उन्होंने प्रसारित किए वे सटीक प्रतीत होते हैं।

निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि सन्त काव्य के प्रतिनिधि कवि कबीर ने धर्म के नाम पर जनता का शोषण करने वाले सिद्धान्तों का तार्किक रूप से खंडन करते हुए समाज की आखें खोलने की पुरजोर कोशिश की है और यह समझाने का प्रयास किया है कि जातिगत भेदभाव एवं छूआछूत के संकुचित दायरे से बाहर निकल कर ही मानव और समाज का विकास सम्भव है।

आज के संदर्भ में यदि संत साहित्य का अवलोकन किया जाए, तो निश्चित तौर पर वर्तमान स्थितियाँ भी मध्य युग जैसी ही हैं। आज

के इस प्रगतिशील युग में भी जातिवाद, साम्प्रदायिकता व अंधविश्वास की जड़ें भारतीय समाज में उतनी ही गहरी हैं जितनी मध्य युग में थी। इसलिए निश्चित तौर पर सामाजिक शोषण, अनाचार व अन्याय के विरुद्ध संघर्ष में आज भी संत कवियों का काव्य तीखा अस्त्र है।

सन्त काव्य का गहराई से अवलोकन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि सन्त कवियों ने सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त परम्परागत मान्यताओं व रूढ़िवादी विचारधाराओं का कड़ा विरोध किया है। समानता के भाव व्यंजित करने का प्रयास किया। उन्होंने एक ऐसे समाज की कल्पना की, जो ऊँच-नीच की भावना से सर्वथा शून्य हो, जो ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुस्लिम के भेदभाव से ऊपर हो। उनकी वाणी आज के इस वैश्वीकरण के दौर में भी मानव मात्र को यह संदेश देती प्रतीत होती है कि हमें हर प्रकार के भेदभाव से ऊपर एक स्वस्थ समाज के निर्माण हेतु प्रयासरत रहना चाहिए।<sup>10</sup> ऐसे ही उदात्त विचारों के कारण संत साहित्य आज भी प्रासंगिक है।

स्पष्ट है कि संतों ने अपने विचारों के माध्यम से समाज में जनमानस में जागृति लाने का प्रयास किया। सन्तों की वाणी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी तत्कालीन युग में थी।

संदर्भ सूची:-

1. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृष्ठ 126।
2. श्याम सुन्दरदास (स), कबीर ग्रंथावली (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) पृष्ठ 165
3. डॉ. सुषमा दुबे, डॉ. राज कुमार- प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य, पृष्ठ 186
4. हरि, संत सुधा सारा
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आ. रामचन्द्र शुक्ला
6. डॉ. हरमोहन सूद, हजारी प्रसाद द्विवेदी का सृजनात्मक साहित्य एवं सांस्कृतिक।
7. डॉ. प्रणव शर्मा, प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य।
8. शोध आलेख, डॉ. पूनम काजल हरियाणा।
9. हिन्दी चेतन भारती पत्रिका।
10. कबीर ग्रंथावली।



अध्यक्ष हिन्दी विभाग, उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत-262001 उ.प्र.  
पत्राचार: 'कल्पतरु' A-30, वसुन्धरा कॉलोनी, पीलीभीत-262001 उ.प्र.  
मो. 9837960530 drpranav\_pbt23@rediffmail.com

## बाल सिनेमा के बढ़ते चरण

डॉ. आलोक रंजन पांडेय

“2005 में विशाल भारद्वाज ने अपनी फेवरेट काव्यात्मक शैली में निष्ठुरता और संवेदनात्मक मूल्यों को परिभाषित करती फिल्म 'ब्लू अंबरेला' बनाई। बच्चों को लेकर उनका बनाया यह सिनेमा कई कारणों से आज भी यादगार है। बी आर चोपड़ा की 'भूतनाथ' और 'भूतनाथ रिटर्न' खोती जा रही संयुक्त परिवार की अवधारणा और भारतीय परिवार के बिखर रहे मूल्यों के प्रति सचेत करने का काम करती है। विशाल भारद्वाज की 'मकड़ी' ने बाल फिल्मों को लेकर चली आ रही धारणा को तोड़ा। 2007 में आमिर खान बच्चों की कहानी लेकर ही निर्देशन में उतरे। उनकी फिल्म 'तारे जमीं पर' में उपेक्षित और मंद बुद्धि बच्चे की भूमिका में दर्शीला सफारी ने वाकई बढ़िया काम किया था। तारे जमीं पर' शायद एकमात्र फिल्म है, जो समाज के सभी वर्गों में प्रभावशाली और लोकप्रिय रही।”

एक सभ्य और प्रगतिशील समाज में जितना महत्व साहित्य को दिया जाता है उतना ही महत्व सिनेमा को दिया जाता है। सिनेमा समाज के यथार्थ वर्णन के साथ ही भविष्य की चिंताओं व चुनौतियों को उनके समाधान के साथ प्रस्तुत करने का प्रमुख अंग है। किसी भी समाज की गहराई तक सामाजिक सतहों को जानने के लिए साहित्य व सिनेमा का योगदान लिया जाता है। इस समय सिनेमा समाज का वह कारक है जिससे व्यक्ति सबसे ज्यादा प्रभावित होता है। देश, समाज, समय और व्यक्ति पर आज सिनेमा का प्रभाव दिखाई देता है। सिनेमा, कला का वह सशक्त माध्यम है जो अपने दर्शकों को किसी खास विषय-वस्तु पर आधारित कथा को दिखाता है, बताता है और मनोरंजन करते हुए

दर्शकों के हृदयों में गहरे उतर जाने की अभूतपूर्व क्षमता रखता है। हिंदी सिनेमा के पितामह दादा साहेब फाल्के ने भी सिनेमा की शुरुआत केवल मनोरंजन के लिए नहीं की थी, वे लिखते हैं कि- सिनेमा मनोरंजन का उत्तम माध्यम है लेकिन वह ज्ञानवर्धन के लिए भी अत्यंत बेहतरीन माध्यम है।

जिस तरह साहित्य में बाल कविताएँ और बाल कहानियाँ अपना अलग स्थान रखते हैं व बाल मनोविज्ञान पर गहरा प्रभाव डालती हैं उससे ज्यादा प्रभाव बाल विषयक फ़िल्में डालती हैं। फ़िल्में किसी भी विषय पर अन्य विधाओं से ज्यादा प्रभाव अपने चलचित्र रूप के कारण डाल पाती है। दृश्य एवं श्रव्य माध्यमों के मिश्रित रूप से ज्यादा प्रभाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है। सिनेमा चूंकि जीवन की परछाईयों से रूबरू कराता है, जिसकी शुरुआत 'बालमन' से होती है। 'बालमन' कच्चे घड़े की तरह है। इस पर जिस तरह का परिवेश और संस्कार परोसा जाता है, उसी तरह उनकी सोच, संवेदना और भावना का विकास होता है। समाज में बच्चों की भी एक दुनिया है। उस दुनिया की अनेक तकलीफें, समस्याएँ एवं बाधाएँ हैं, जिसे लेकर कई फ़िल्में बनाई जा चुकी हैं, जिसे सराहा भी गया है। कनाडा के बाल फिल्म विशेषज्ञ राबर्ट रॉय ने बाल फिल्म को परिभाषित करते हुए कहा था कि 'वह फिल्म जिसमें बच्चा खुद को एकात्म महसूस करे साथ ही फ़िल्मों के माध्यम से हमें बच्चों पर अपने विचार लादने के बजाए बच्चे को स्वतः अपनी राय कायम करने के लिए स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए।

भारत में किसी भी अन्य भाषा के सिनेमा की तुलना में हिंदी सिनेमा में बाल केंद्रित फ़िल्में अपेक्षाकृत अधिक बनी हैं। आज़ादी के

बाद लगभग हर दशक में सिनेमा के जरिये कोशिश की जाती रही है कि समाज को कुछ नया दिया जा सके। इसी क्रम में बच्चों पर केन्द्रित सिनेमा की शुरुआत की गयी। जिससे बच्चों के अपने मुद्दे, उनसे जुड़ी सामाजिक चुनौतियाँ और उनके अंतःमन की स्थितियों को पर्दे पर दिखाया जा सके। 1955 में बच्चों के लिए उद्देश्यपूर्ण फिल्मों का निर्माण और उन्हें स्वस्थ मनोरंजन मिल सके इसके लिए 'बाल चलचित्र समिति' की स्थापना भी की गयी। फिल्म प्रभाग की तर्ज पर इस समिति का काम बच्चों पर आधारित फिल्मों का निर्माण, वितरण, और प्रदर्शन करना था।

वैसे तो 1913 में प्रदर्शित भारत की पहली मूक फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' में भी राजा हरिश्चंद्र के बेटे के रूप में बालपन और बालमन को दिखाया गया है, लेकिन उसे बाल फिल्म नहीं कहा जा सकता। 1913 से आजादी तक कई फिल्मों में बालमन का चित्रण मिलता है। आजादी के बाद 'बालमन' को केंद्र में रखकर कई फिल्में बनी जिसकी शुरुआत 'मुन्ना' से मानी जा सकती है। 1954 में बनी फिल्म 'मुन्ना' एक ऐसे बच्चे की कहानी है जिसकी विधवा माँ ने आत्महत्या कर ली है और वह भटकता रहता है। इसके अलावा मुन्ना की मासूमियत के चलते कई अन्य लोगों के जीवन में आते बदलाव फिल्म में दिखाया जाना काबिले गौर है। हालांकि फिल्म फ्लॉप रही। बाद में 1966 में चेतन आनंद ने इसी कथा को लेकर फिल्म 'आखिरी खत' बनाई। 1954 में बनी एक और फिल्म बाल मन की अंतः स्थिति को स्पष्ट करती है वह है 'बूट पॉलिश'। इसमें बेलू और भोला अपनी माँ की मृत्यु के बाद अपनी दुष्ट चाची कमला, एक वेश्या की देखभाल में छोड़ दिए जाते हैं। वह उन्हें सड़कों पर भीख मांगने के लिए मजबूर करती है और रात में अक्सर उन्हें बेरहमी से पीटकर पूरा संग्रह ले लेती है। यह फिल्म अनाथ-किशोर-किशोरियों को चोरी-चकारी तथा अपराध की दुनिया से दूर रहने की सीख देती है। इस फिल्म का गाना 'नन्हे-मुन्ने बच्चे तेरी मुट्ठी में क्या है' बच्चों को सीख देता है कि भीख में गर मोती भी मिले तब भी नहीं लेना चाहिए। ज़िंदगी की कड़वी सच्चाई से संघर्ष करके अपना रास्ता खुद बनाने की कहानी इसमें दिखाई गयी है। 1957 में आई 'अब दिल्ली दूर नहीं' (राजकपूर कृत) फिल्म न्याय की तलाश में निकले एक बच्चे की कहानी है। एक अनाथ लड़के की संघर्ष कथा के जरिये श्रम की महत्ता का प्रतिपादन, एक संन्यासी और अनाथ बालिका के बीच स्नेह संबंध को पर्दे पर

उकेरती वी शांताराम की फिल्म 'तूफान और दीया' एक सराहनीय फिल्म है। 1960 में बच्चों पर केन्द्रित एक और फिल्म मासूम का निर्देशक सत्येन बॉस ने किया। फिल्म की पटकथा लेखिका रूबी सेन को सर्वश्रेष्ठ कहानी का फिल्मफेयर अवार्ड भी मिला। फिल्म बच्चों को केंद्र में रखते हुए कई सवाल को उठती हुई चलती है तथा गीत संगीत के जरिये भी यह फिल्म बाल मन को प्रभावित करती है। 'नानी तेरी मोरनी को मोर ले गए, बाकी जो बचा था उसे चोर ले गए' इसी फिल्म का गीत था आज भी बच्चों की जुबां पर है।

1962 में महबूब खान की फिल्म 'सन ऑफ इंडिया' भले ही फ्लॉप फिल्म रही हो लेकिन इसके गीत 'नन्हा मुन्ना राही हूँ देश का सिपाही हूँ, बोलो मेरे साथ जय हिंद, जय हिंद...' आज भी बच्चों की जुबां से सुना जा सकता है। सत्येन बोस के निर्देशन में 1964 में बनी फिल्म 'दोस्ती' दो किशोरवय अंधे और लंगड़े दोस्तों की कहानी है। फिल्म में दोस्ती और उनके त्याग का खूबसूरत चित्रण दिखाया गया है।

बच्चों पर बनी फिल्मों को लेकर अगर वाकई भारतीय दृष्टिकोण से खँगालने की कोशिश की जाए तो गुलजार की 'परिचय' और 'किताब' में बच्चों का सकारात्मक चित्रण हमें दिखता है। फिल्म 'परिचय' एक ऐसे परिवार और बच्चों की कहानी पेश करती है जहां बच्चों की मनः स्थिति को बिना परखे, बिना धुले-मिले उनके करीब नहीं जाया जा सकता है और नहीं समझा जा सकता है। फिल्म में शिक्षक रवि (जितेंद्र) उन बच्चों के हाव भाव, जरूरतों को समझ उनको पढ़ा पाने में सफल होता है। जबकि इसके पूर्व कई शिक्षक बच्चों द्वारा भगाये जा चुके होते हैं। आज जो प्ले स्कूल आदि का कान्सैप्ट हमारे समाने दिखता है वह काफी पहले ही इस सिनेमा ने पेश कर दिया था। 1972 में आई इस फिल्म की कहानी राज कुमार मैत्रा के बंगाली उपन्यास 'रंगीन उत्तरेण' पर आधारित थी। वहीं 1977 में गुलजार के ही निर्देशन में आई 'किताब' बच्चों की मनोवृत्ति को समझाती एक उम्दा फिल्म मानी जाती है। बंगाली लेखक समरेश बसु की कहानी पथिक पर बनी यह फिल्म बच्चे (बावला) के मन में उठते सवालों का सिनेमाई चित्रण पेश करती है।

1983 में बनी शेखर कपूर निर्देशित फिल्म मासूम ने विवाहेत्तर सम्बन्धों से पैदा हुए बच्चे के कारण पारिवारिक संघर्ष को पेश कर एक नया दृष्टिकोण पेश किया। फिल्म में बाल कलाकार जुगल

हंसराज का अभिनय आज भी चर्चा का विषय बना रहता है। 1988 में बनी मीरा नायर की फिल्म 'सलाम बॉम्बे' मुंबई में भटक रहे एक 10 साल के लड़के की कहानी है, जो अपना नाम खो चुका है और सिर्फ 'चायपाव' कहलाता है। यह चायपाव बंबई की भीड़, वेश्यालयों की घुटन, कब्रिस्तानों के चिलमचियों के बीच की स्थितियों से डरता नहीं है अपितु उससे पूरी निष्ठा से लड़ता है। इस फिल्म में एक लावारिस लड़के की दारुण कथा को मार्मिक रूप से चित्रित किया गया है। गोपी देसाई निर्देशित 1992 में बनी फिल्म 'मुझसे दोस्ती करोगे' का विषय एक बच्चे के सपनों की दुनिया के साहसिक कारनामों का चित्रण करती है। इसी आधारशिला पर अन्नु कपूर ने 1994 में 'अभय' बनाई थी।

2005 में विशाल भारद्वाज ने अपनी फेवरेट काव्यात्मक शैली में निष्ठुरता और संवेदनात्मक मूल्यों को परिभाषित करती फिल्म 'ब्लू अंबरेला' बनाई। बच्चों को लेकर उनका बनाया यह सिनेमा कई कारणों से आज भी यादगार है। बी आर चोपड़ा की 'भूतनाथ' और 'भूतनाथ रिटर्न' खोती जा रही संयुक्त परिवार की अवधारणा और भारतीय परिवार के बिखर रहे मूल्यों के प्रति सचेत करने का काम करती है। विशाल भारद्वाज की 'मकड़ी' ने बाल फिल्मों को लेकर चली आ रही धारणा को तोड़ा। 2007 में आमिर खान बच्चों की कहानी लेकर ही निर्देशन में उतरे। उनकी फिल्म 'तारे जमीं पर' में उपेक्षित और मंद बुद्धि बच्चे की भूमिका में दर्शील सफारी ने वाकई बढ़िया काम किया था। 'तारे जमीं पर' शायद एकमात्र फिल्म है, जो समाज के सभी वर्गों में प्रभावशाली और लोकप्रिय रही। बॉक्स ऑफिस पर भी सर्वाधिक हिट और सफल फिल्म साबित हुई। बच्चों को कौन-सी चीजें मुग्ध करती हैं, उनकी रुचियां किन-किन चीजों को देखने और समझने में हैं, शायद यह पहले अधिक विकसित नहीं था। आज यह समझना आसान हो गया है कि बच्चों की रुचियां और कल्पनात्मक दुनिया में कौन-सी चीजें लोकप्रिय हो सकती हैं। जैसे-जैसे इन क्षेत्रों में नए-नए शोध सामने आएंगे, बच्चों पर केंद्रित फिल्में और गति पकड़ेंगी। अभी तक मनोवैज्ञानिक रूप से डर, दोस्ती, पारिवारिक दायरे और संबंधों की दुनिया, खेल, पशुप्रेम, अकेलापन, चमत्कार, जादू, हास्य आदि विषयों का ही दोहन होता रहा है।

बच्चों की पढ़ाई पर आधारित 'नन्हा जैसमलेर' एक अच्छी फिल्म मानी जा सकती है। 'अपना आसमान', 'मिस्टर इंडिया' आदि

फिल्में भले ही ईरानी फिल्म 'चिल्ड्रेन ऑफ हैवेन' जैसी भले ही न हो बावजूद इसके इन फिल्मों के जरिये मानवीय सम्बन्धों, सहयोग और बाल समस्या को विविधता और खूबसूरती से पेश किया गया है। इरफान कमाल की फिल्म 'थैंक्स माँ' में मुंबई की झुग्गी झोपड़ी के आवारा और अनाथ बच्चों के माध्यम से अधूरे बचपन को पेश करने की कोशिश की गयी है। 'थैंक्स माँ' में मुंबई की झुग्गी-बस्तियों के आवारा और अनाथ बच्चों के माध्यम से अधूरे बचपन की मार्मिक कथा दर्शाने की कोशिश की है। इस फिल्म में एक अनाथ बच्चा है। वह खुद को सलमान खान कहलाना पसंद करता है। दूसरे आवारा और अनाथ बच्चों के साथ वह पाकेटमारी कर अपना गुजारा करता है। उसकी एक ही इच्छा है कि किसी दिन अपनी माँ से मिले। समाज और बच्चों के भविष्य के साथ हो रहे खिलवाड़ को फिल्म 'पाठशाला' के जरिये दिखाने की कोशिश की गई है। यह फिल्म टीचर्स और बच्चों के माता-पिता की आँखें खोलती हैं। इसमें स्कूली बच्चों से संबंधित ज्वलंत मुद्दों को उठाया गया है। पब्लिक स्कूलों के व्यावसायिक नजरिए को परखने की कोशिश की गई है।

प्रियदर्शन की फिल्म 'बम बम भोले' चिंटेन ऑफ हैवेन की कहानी को आधार बना कर आगे बढ़ती हुई हमें दिखती है। इस फिल्म में प्रियदर्शन ने ऐसे दो भाई-बहन का चित्रण किया है जो अपना सबकुछ एक-दूसरे पर न्योछावर करने को तैयार हैं। गलती से भाई अपनी बहन के जूते गुम कर देता है। माँ-बाप गरीब हैं इसीलिए उनसे डांट खाने का डर है। दोनों भाई-बहन एक तरकीब सोचते हैं और सुबह जो जूता पहनकर बहन स्कूल जाती है वही जूता दोपहर में भाई पहन कर अपने स्कूल जाता है। परिवार और स्कूल के बीच का ये टाइम मैनेजमेंट दिलचस्प रंग लाता है। एक दिन अचानक भाई की नजर एक प्रतियोगिता पर पड़ती है जिसमें तीसरे विजेता को जूते देने की बात होती है, लड़का उस प्रतियोगिता के लिए मेहनत करता है ताकि वह अपने बहन को जूते दे सके पर वह तृतीय स्थान पर न रहकर प्रथम स्थान पर आ जाता है। प्रथम पुरस्कार के रूप में उसे बाहर पढ़ने का मौका मिलता है पर वह उससे खुश नहीं है बल्कि वह प्रतियोगिता जीतकर भी अपने आप को हारा हुआ महसूस करता है क्योंकि वह अपनी बहन के लिए जूते नहीं ला सका है। यह फिल्म न केवल दो भाई-बहन अपितु बाल मनोविज्ञान का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती है। संजय लीला भंसाली की फिल्म 'ब्लैक' को इसी श्रेणी में रखें तो बेहतर परिणाम मिल सकते हैं। एक छोटी अंधी



लड़की और उसके शिक्षक की कहानी में हमें एक सुखद एहसास देखने को मिलता है। पीयूष झा की 'सिकंदर' में कश्मीर के तनाव और दर्द को बच्चों के सहारे देखने की कोशिश की गयी है। फिल्म दिखाती है कि कैसे फुटबाल खेलने का सपना लिए एक बच्चे को जब रास्ते में पड़ी बंदूक मिल जाती है तो उसकी जिंदगी में सब कुछ अचानक से बदलने लगता है।

'स्टैनली का डिब्बा' में एक मामूली से छात्र के संघर्षों को दर्शाया गया है। 'स्टैनली का डिब्बा' फिल्म की कहानी एक स्कूल में पढ़ने वाले नौ वर्षीय स्टैनली की है। स्टैनली अपने दोस्तों के साथ पढ़ाई के साथ-साथ नॉर्मल जिंदगी जी रहा है। लेकिन एक दिन जब हिंदी के टीचर बाबूराम की नजर उसके और उसके साथियों के खाने के डिब्बों पर पड़ जाती है तो उसकी मुसीबत आ जाती है। यही नहीं, बाबूराम को जब ये पता चलता है की दरअसल स्टैनली तो डिब्बा लाता ही नहीं तो उसकी मुसीबत और बढ़ जाती है। बाबूराम उस पर डब्बा लाने का दबाव डालता है और कहता है कि अगर वो डिब्बा नहीं लाया तो उसे स्कूल में नहीं घुसने दिया जाएगा। अंततः स्टैनली के डिब्बे की तलाश में मुहिम शुरू होती है और इस मुहिम में जो घटनाएँ घटती हैं उन्हीं की बानगी है स्टैनली का डिब्बा। फिल्म 'स्टैनली का डिब्बा' के अंत में जब दर्शकों को जानकारी मिलती है कि स्टैनली अनाथ है, उसके माता-पिता नहीं हैं और वह अपने खडूस चाचा के रहमोकरम पर जी रहा है, तो दर्शकों की आँखों से आँसू छलक जाते हैं। यूटीवी स्पॉटबॉय और सलमान खान के सह-निर्माण में बनी चिल्लर पार्टी मासूम बच्चों के ऐसे समूह की कहानी है जो एक राजनेता के खिलाफ खड़े हो जाते हैं और एक आवारा कुत्ते की जिंदगी बचाकर सबका दिल जीत लेते हैं। विधु विनोद चोपड़ा की फिल्म 'फरारी की सवारी' में तीन पीढ़ियों के संबंध और समझदारी द्वारा निर्मित सपने टूटने और सपने साकार होने के बीच की कहानी है। इस फिल्म में पारिवारिक रिश्ते की डोर को अत्यंत ही प्रभावशाली तरीके से दिखाया गया है।

कुछ सालों में 'मकड़ी', 'तारे जमीन पर', 'पा', 'चिल्लर पार्टी', 'तहान', 'उड़ान' 'छूटकन की महाभारत', 'गट्टू', 'लिल्की', 'काफल', 'बाजा', 'गोल', 'कभी पास कभी फेल', 'आबरा का डाबरा' 'स्टैनली का डिब्बा' जैसी फिल्मों से इस ओर अच्छा प्रयास हुआ है लेकिन आज जिस तरह बाल फिल्मों के नाम पर अब कार्टून फिल्में, एनीमेशन फ़िल्में जिनके विषय पुराणों के धार्मिक चरित्रों पर ही आधारित होते हैं वह

दिखाये जाने शुरू हुए हैं वह बाल फिल्मों के विकास में बाधक हो सकते हैं। बच्चों के सर्वांगीण विकास और उनमें बदलाव के लिए बच्चों के सिनेमा के विषय और कथ्य में बदलाव की आज जरूरत है। हीन भावना और अवसाद ग्रस्त बच्चा कम से कम फिल्में देखकर सशक्त महसूस करें ऐसी फिल्मों की आज जरूरत महसूस की जा रही है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भारतीय फिल्मों खासकर हिंदी फिल्मों बाल मनोविज्ञान की ओर सकारात्मक रुख कर चुकी हैं फिर भी यह हॉलीवुड की तुलना में पीछे है। परंतु विकास क्रम में यह एक ठीक प्रयास है। विषयों की विविधता इसे अधिक गहराई प्रदान कर रहे हैं। यहाँ के निर्देशक बाल मन को समझ कर बेहतर कार्य कर रहे हैं जिससे बाल फिल्मों का भविष्य काफी बेहतर है।

#### संदर्भ ग्रंथ :

1. सिनेमा : कल-आज-कल, विनोद भारद्वाज, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
2. भारतीय चलचित्र का इतिहास, फिरोज रंगून वाला, राजपाल एंड संस, दिल्ली
3. सिनेमा और संस्कृति : राही मासूम रजा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. हिंदी सिनेमा का सच, संपादक- मृत्युंजय, समकालीन सृजन प्रकाशन, नई दिल्ली
5. हिंदी सिनेमा का समाजशास्त्र, जवरीमल्ल पारख, ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
6. हिंदी सिनेमा: बदलते संदर्भ, संपादक- डॉ. तेजनारयण ओझा, डॉ. आलोक रंजन पांडेय, सतीश बूक डिपो, नई दिल्ली
7. सहचर ई-पत्रिका (हिंदी सिनेमा पर केंद्रित) : संपादक- डॉ. आलोक रंजन पांडेय, जनवरी-मार्च, 2015
8. हंस (सिनेमा विशेषांक) : फरवरी 2013
9. समसामयिक सृजन (हिंदी सिनेमा पर केंद्रित): महेंद्र प्रजापति : अक्टूबर-मार्च, 2012-2013
10. हिंदी सिनेमा एक अध्ययन, राजेश कुमार, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली



एसोसिएट प्रोफेसर, रामानुजन महाविद्यालय  
कालकाजी, नई दिल्ली-19, मो.-9540572211  
ई-मेल: alok.pandey76@yahoo.com



ब्रिटेन



सिनेमा-संसार

## वैश्विक सांस्कृतिक निर्मिति में सिनेमा का महत्व

डॉ. निखिल कौशिक

“एक साधारण से साधारण फिल्म बनाने के लिए करोड़ों का बजट चाहिए, जो मेरे पास नहीं था; सौभाग्य से उन दिनों सेल्यूलाइड के बजाए डिजिटल फिल्म बनाने के प्रति उत्साह बन रहा था। अचानक एक दिन बर्मिंघम में एक कार्यक्रम में प्रसिद्ध कलाकार सईद जाफ़री से मिलने का अवसर मिला। मैंने उनसे प्रवासी डाक्टरों के जीवन की सच्चाई को लेकर अपनी फिल्म बनाने की इच्छा और मुंबई के अनुभव पर चर्चा की। उन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया, और बातों बातों में बात यह निकली के इस प्रकार की फिल्म में एक सच्चाई होनी चाहिए; ‘....यानी डाक्टर का रोल एक असली डाक्टर करे, नर्स का रोल एक नर्स से करवाया जाये, और समूची फिल्म सेट्स पर नहीं, बल्कि हस्पताल, घर और लोकेशन पर फिल्माई जाए। ताकी लोग परदे पर असलियत देखें।”

आपसी संपर्क-संबंध जीव का मूलभूत गुण है, इंद्रियाँ इस संपर्क का मूल माध्यम हैं – गंध, दृष्टि, स्वर, स्पर्श, और स्वाद एक जीव को दूसरे जीव से संपर्क सुविधा प्रदान करती हैं। इन विभिन्न इंद्रियों की अपनी एक सीमा है, जो प्राणी के भौतिक स्वरूप पर आधारित है। भोजन जीवन की बुनियादी आवश्यकता है, जिसे उपलब्ध करने के लिए हर प्राणी को निरंतर व्यस्त रहना होता है इसके लिए वह अपनी सीमा के दायरे में अपने विभिन्न अंगों का प्रयोग करता है।

जीव जगत में मनुष्य मात्र एक प्राणी है जो अपने पाँव पर खड़ा हो एक स्थान से दूसरे स्थान पर आ जा सकता है। मनुष्य का ये गुण उसे दो पाँव पर चलने की छूट देता है, और साथ ही अपने दो हाथों का प्रयोग अन्य कार्यों के लिए करने की क्षमता प्रदान करता है। अपने हाथों से

निर्माण कर पाने का मात्र यह गुण मनुष्य को जीव जगत में सर्वश्रेष्ठ प्राणी बनाता है। मनुष्य अपने भोजन को सँजो कर रख सकता है उसे अपने स्वाद के अनुसार तैयार कर सकता है। भोजन को सुरक्षित कर मनुष्य अन्य कार्यों पर ध्यान व समय दे सकता है।

इस प्रकार मनुष्य अपने आस पास सुख सुविधाओं का सृजन करता है, उन्हें व्यवस्थित कर अपनी सुविधा अनुसार तुरंत व किसी अन्य समय उनका प्रयोग कर सकता है। इतना ही नहीं वह अपने विचार और भावनाओं को उसी समय या फिर किसी अन्य समय के लिए संयोजित कर सकता है। इस सुविधा के लिए अपने विचारों को लिखित रूप में सँजो कर भविष्य में प्रयोग कर सकता है, अपने जीवन को व्यवस्थित कर सकता है। अपनी भावनाओं व विचारों को लिख कर व उनमें संशोधन कर अन्य व्यक्तियों से विचार विमर्श कर, मनुष्य मानवीय जीवन के सुख-दुख, उपलब्धियां लाभ हानि को निर्मित करता है।

ज्यों-ज्यों मनुष्य ने इस सुविधा को विकसित किया है त्यों त्यों उसके प्रभाव का क्षेत्र विस्तृत हुआ है। अपनी बात, अपने विचार, लिखित रूप से एक जगह से दूसरी जगह किसी दूसरे व्यक्ति या समूह तक पहुँचाना व तकनीकी विकास से उपलब्ध उपकरणों के माध्यम से अपना स्वर दूर तक पहुँचाना व दूर स्थित वस्तु को देख पाना – ये सुविधाएँ ही मनुष्य को अन्य जीव जंतुओं से भिन्न करती हैं।

इस प्रकार भावना व विचारों को संयमित कर उन पर व्यवस्थित रूप से आचरण करना संस्कृति कहलाता है। एक दूजे से व्यवस्थित संपर्क जो बहुजन के लिए सुविधाजनक हो, उसे सामान्य आचरण स्वरूप स्वीकार कर एक आम व्यक्ति किसी एक विशेष समाज का अंग बनता है व अपनी विशिष्ट सामाजिक पहचान व आचरण से अपने समाज की अभिव्यक्ति करता है व समाज को सुदृढ़ बनाता है।

सामाजिक संसार में विचार की व्यापक अभिव्यक्ति, मीडिया के

माध्यम से की जाती है, चित्र व लेख, पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो-प्रसारण व सिनेमा, मीडिया समूह के विभिन्न अंग हैं। इनका मुख्य उपयोग सूचना, समाचार व मनोरंजन प्रचार-प्रसार के लिए किया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मीडिया समूह में सिनेमा (चलचित्र) एक सम्पूर्ण माध्यम है, जिसमें चित्र, स्वर और हाव भाव एक साथ देखने- सुनने को मिलते हैं, और दर्शक के लिए एक सम्पूर्ण परिदृश्य प्रस्तुत करने की क्षमता रखते हैं। सिनेमा हमें सम्पूर्ण तस्वीर-विषय से रू-ब-रू करवाता है।

मीडिया और सिनेमा का व्यापक प्रभाव सामाजिक विचारधारा, सामाजिक मूल्य, फैशन प्रचलन के साथ-साथ राजनीति व पारस्परिक सामाजिक स्नेह व विरोध को प्रभावित करता है।

इस सशक्त माध्यम के रहते हम देख सकते हैं कि सिनेमा का प्रभाव व उपयोग विज्ञापन और सूचना के संग संग कानून व्यवस्था और प्रभावी व्यक्तियों व राजनैतिक संस्थाओं के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण संवाहक है।

यू सिनेमा का इतिहास बहुत पुराना नहीं है, ऐसा माना जाता है कि 28 दिसंबर 1895 के दिन लुमियर बंधुओं ने पेरिस में प्रथम चलचित्र का प्रदर्शन किया था, हालांकि यह भी कहा जाता है कि इससे पूर्व अमरीका में भी चलचित्र प्रदर्शित किए जा चुके थे।

127-28 वर्ष की इस छोटी सी अवधि में सिनेमा हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है। आज उस समय की कल्पना असंभव है जब सिनेमा के बिना जीवन जिया जाता था। तकनीकी उन्नति के संग सिनेमा एक बड़े परदे पर बड़े-बड़े उपकरणों से सिमट कर हमारी हथेली में आ गया है। इतना ही नहीं चलचित्र को एक ही समय विश्व के विभिन्न भागों में एक साथ देखा जा सकता है।

इतने सशक्त माध्यम का प्रभाव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर पड़ना स्वाभाविक ही है। सिनेमा हमें किसी अन्य समाज में सीधे-सीधे झाँकने का अवसर देता है, और इस प्रकार हम किसी अन्य समाज व परंपरा के संग जुड़ सकते हैं, उससे प्रभावित हो सकते हैं, और उसे अपने विचारों से प्रभावित कर सकते हैं।

आमतौर पर किसी चलचित्र में कोई कलाकार एक नया परिधान, आवरण पहन कर आता है, या कोई नये हाव भाव प्रस्तुत करता है तो उससे प्रभावित होकर आम लोग उस का अनुसरण करते हैं। इस प्रकार सिनेमा एक माध्यम है जिसके सहारे मानवीय समाज व परम्पराएं निरंतर प्रभावित व परिवर्तित होती रहती हैं।

सिनेमा अन्य विधाओं की तरह तकनीकी विकास पर आधारित रहता है। एक समय बड़े-बड़े सिनेमा घरों में चलचित्र का प्रदर्शन किया जाता था, तकनीकी विकास से कदम से कदम मिलते हुए, हम अब चलचित्र का आनंद उठाने के लिए बड़े सिनेमा घरों के साथ-साथ छोटे ऑडिटोरियम, टेलिविजन, कंप्यूटर व अब आईफोन जैसे छोटे-छोटे उपकरणों से अपनी सुविधा अनुसार विभिन्न स्थानों पर सिनेमा का आनंद उठा सकते हैं।

इस प्रकार आधुनिक सिनेमा का स्वरूप बहुत विकसित व परिवर्तित हुआ है, इसके संग-संग सिनेमा बनाना और उसका प्रदर्शन करने की क्षमता बड़े उद्योगपतियों तक सीमित न रह कर आम लोगों को भी उपलब्ध हो चली है।

डिजिटल विधा के माध्यम से अब सिनेमा बनाना और अपनी बात अपने विचार का प्रचार-प्रसार करना एक साधारण व्यक्ति के लिए भी संभव हो चला है।

किन्तु हमें यह याद रखना चाहिए कि सिनेमा एक उद्योग है, व्यवसाय है, व्यापार है। इस उद्योग में अभी भी एक बड़ी मात्रा में धन निवेश किया जाता है व बड़ी संख्या में लोग अपने जीवन यापन के लिए सिनेमा व्यवसाय में संलग्न हैं।

जहाँ धन निवेश किया जाता हो वहाँ ये आवश्यक है कि लाभ सहित धन वापस आये और सिनेमा में ये सब बॉक्स ऑफिस पर तय होता है। किसी अमुक चलचित्र को टिकट खरीद कर देखने आने वालों को आकर्षित करने के लिए चलचित्र में सूचना और शिक्षा हो या न हो, मनोरंजन भरपूर होना चाहिए। तभी आजकल अधिकांश फिल्मों में मनोरंजन प्रधान होती हैं।

फिर भी समय-समय पर ऐसी फिल्मों भी बनती हैं जिनका उद्देश्य जीवन के किसी पहलू, किसी मुद्दे को उजागर करना होता है और ऐसी फिल्में बॉक्स ऑफिस पर होने वाले लाभ हानि से परे : मनोरंजक रूप से सूचना देने व शिक्षित करने की कोशिश करती हैं।

इस उद्देश्य से फिल्म के माध्यम से एक महत्वपूर्ण विषय को उजागर करती एक फिल्म के निर्माण व प्रदर्शन के अपने निजी अनुभव से देखता हूँ तो मुझे लगता है कि आधुनिक जगत में फिल्म निर्माण आवश्यक है, इसका भविष्य उज्ज्वल है और समाज की निर्मिति में सिनेमा उद्योग स्वरूप निरंतर एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाहता रहेगा।

यह सर्वविदित है कि भारत व अन्य विकासशील देशों से एक बड़ी संख्या में प्रोफेशनल लोग (डॉक्टर, इंजीनियर) ब्रिटेन व अमेरिका जैसे अन्य विकसित देशों में आते हैं या आना चाहते हैं। इसके क्या

क्या कारण हैं, और इस प्रकार भारत व अन्य विकासशील देश छोड़ बाहर आने के लाभ हानि क्या हैं। मैंने महसूस किया कि एक फिल्म के माध्यम से प्रवासी जीवन के इस पहलू की एक सच्ची झलक दिखाई जाए, ताकि कोई व्यक्ति एक जानकारी के तहत अपना देश छोड़ परदेस जाने का निर्णय ले।

इस प्रकार एक फिल्म की रूपरेखा लेकर मैं सन 2005 में मुंबई फिल्म नगरी पहुंचा, और वहाँ विभिन्न फिल्म जगत से जुड़े लोगों से बात कर मुझे समझ आ गया कि जहाँ फिल्म चलाने के लिए एंटरटेनमेंट, एंटरटेनमेंट और एंटरटेनमेंट आवश्यक है वहीं इसे बनाने के लिए आवश्यक है : पैसा पैसा और पैसा।

एक साधारण से साधारण फिल्म बनाने के लिए करोड़ों का बजट चाहिए, जो मेरे पास नहीं था; सौभाग्य से उन दिनों सेल्यूलाइड के बजाए डिजिटल फिल्म बनाने के प्रति उत्साह बन रहा था। अचानक एक दिन बर्मिंघम में एक कार्यक्रम में प्रसिद्ध कलाकार सईद जाफरी से मिलने का अवसर मिला। मैंने उनसे प्रवासी डाक्टरों के जीवन की सच्चाई को लेकर अपनी फिल्म बनाने की इच्छा और मुंबई के अनुभव पर चर्चा की। उन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया, और बातों बातों में बात यह निकली कि इस प्रकार की फिल्म में एक सच्चाई होनी चाहिए; ‘..... यानी डाक्टर का रोल एक असली डाक्टर करे, नर्स का रोल एक नर्स से करवाया जाये, और समूची फिल्म सेट्स पर नहीं, बल्कि हस्पताल, घर और लोकेशन पर फिल्माई जाए। ताकि लोग परदे पर असलियत देखें।

इस प्रकार कम लागत में एक ‘इन हाउस प्रोजेक्ट’ की तरह मैंने अपने साथियों को लेकर एक फिल्म बनाई। “भविष्य-दी फ्यूचर” शीर्षक से बनाई गई यह फिल्म भारत और ब्रिटेन की स्वास्थ्य सेवा - कार्यप्रणाली व आम जन जीवन पर एक तुलनात्मक दृष्टि डालती है।

निजी तौर पर मेरे लिए इस प्रकार फिल्म निर्माण के विभिन्न पहलुओं, कठिनाइयों, आनंद बहुत रोचक व ज्ञानवर्धक अनुभव रहा। ये कितना सरल या कठिन काम है यह समझने का अवसर मिला। सिनेमा बनाने व इस व्यवसाय में कार्यरत व्यक्तियों के प्रति मेरे मन में आदर भाव बना।

मैं यह तो नहीं कह सकता कि इस फिल्म ने समाज व स्वास्थ्य सेवाओं पर बहुत प्रभाव डाला है, किन्तु चिकित्सा जगत में और कुछ अन्य लोगों में इस फिल्म के माध्यम से उजागर विभिन्न पहलुओं पर चर्चा अवश्य हुई और यही फिल्म का मुख्य उद्देश्य था।

तब हम देख सकते हैं कि सामाजिक निर्मित में सिनेमा की एक महत्वपूर्ण भूमिका है, इसके संग हमें यह भी याद रखना होगा कि

जहाँ सिनेमा अच्छे और प्रगतिशील विचारों के प्रचार- प्रसार के लिए महत्वपूर्ण हैं, वहीं अप्रिय और हानिकारक परंपरा व आचरण को भी सिनेमा द्वारा प्रचलित किया जा सकता है।

इस संभावना के निवारण के लिए समाज और सरकार पारंपरिक सिनेमा को सेंसर द्वारा नियंत्रित करते हैं। कोई चलचित्र एक अमुक आयु से छोटे दर्शकों के लिए सेंसर द्वारा प्रतिबंधित की जा सकती है।

इधर सिनेमा के भविष्य को यदि देखें तो अब टेलिविज़न व ऑनलाइन के माध्यम से फिल्में घर के एकांत में व अपने समय सुविधा अनुसार देखी जा सकती हैं। पिछले कुछ बरसों में और विशेषकर पिछले 2 वर्षों के ‘कोरोना काल’ में, सोशल मीडिया, जूम व यू ट्यूब जैसी टेकनीक आम हो जाने के कारण एक बड़ी संख्या में लघु फ़िल्में बनाई और प्रदर्शित की जा रही हैं। इस प्रकार किसी भी विषय पर प्रिय व अप्रिय लाभकारी व हानिकारक, अनियंत्रित चलचित्र कोई भी देख सकता है। बच्चे और बूढ़े व जन मानस अप्रिय व भ्रमित करने वाले चलचित्रों से प्रभावित हो सकते हैं। यह एक बड़ी चिंता का विषय है।

इस प्रकार समाज की निर्मिति में सिनेमा का महत्व हमेशा से रहा है और आधुनिक समय में आधुनिक तकनीक के रहते और भी महत्वपूर्ण बन चला है। आज सिनेमा बनाना और प्रदर्शित करना बहुत सरल हो गया है, इस कारण इसका प्रभाव सामाजिक जागरूकता व निर्मिति में और भी महत्वपूर्ण हो चला है।

इस प्रकार सिनेमा एक दुधारू विधा है। एक ओर यह एक सामाजिक व मानवीय उपलब्धि है जो निरंतर एक सकारात्मक भूमिका निभाता है, वहीं दूसरी ओर अनियंत्रित सिनेमा समाज को भ्रमित भी कर सकता है। हमें सिनेमा की उपलब्धियों के प्रति जागरूक रहने की अत्यंत आवश्यकता है, मनुष्य की इस उपलब्धि से इसके लाभ विभिन्न समाजों को निरंतर मिले, विभिन्न समाजों में सौहार्द फैले, इसके संग संग सिनेमा के दुष्प्रभाव के प्रति हमें विशेष रूप से जागरूक रहकर सिनेमा को नियंत्रित करना होना। आने वाले समय में सिनेमा का महत्व व प्रभाव बना रहेगा और बढ़ेगा। हमें आशा करनी चाहिए कि सिनेमा जैसी सशक्त उपलब्धि मानवीय समाज के लिए हितकारी सिद्ध होती रहेगी !



नेत्र चिकित्सक, कवि-लेखक, फिल्मकार!

FRCOphth Stansfield, Old Mold Road, Gwersyllt,  
Wrexham, LL11 4SB, UK 00 44 7793393297

Doctornikhilkaushik@gmail.com

## हिंदी सिनेमा में राष्ट्र भक्ति

डॉ. प्रणु शुक्ला

“कहना न होगा कि आज का सिनेमा समस्त भारतवासियों के दिल में देश के प्रति राष्ट्रभक्ति व राष्ट्र बोध जागृत करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। सिनेमा ने ऐसी कई फिल्मों का निर्माण किया जिससे देश भक्ति और राष्ट्रभक्ति की भावना को बल मिला और राष्ट्र के प्रति प्रेम को जागृत करने में उन्होंने अहम भूमिका निभाई। देश के प्रति हमारा प्रेम तो बढा ही... साथ ही साथ हमें मालूम चला कि देश में वह कौन लोग थे और किस तरह से उन्होंने देश की स्वतंत्रता का आह्वान किया और वे कौन से तत्व हैं जो देश को आगे बढ़ाने में योगदान दे रहे हैं। वास्तव में देश के प्रति अपने राष्ट्र के प्रति सिनेमा की यह देन अक्षुण्ण कही जा सकती है।”

‘मेरे देश की धरती सोना उगले उगले हीरे मोती’ यह गाना हम बचपन से सुनते आ रहे हैं, यह एक देश भक्ति गीत है, अपने देश से प्रेम करना और सदा उसका कल्याण सोचना राष्ट्रभक्ति या देशभक्ति कहलाता है। हमारा राष्ट्र भारत है और हम प्राण तन से इसकी सुरक्षा और समृद्धि में लगे हुए हैं। यह हमारा राष्ट्र प्रेम है। वर्तमान समय में साहित्य के साथ-साथ सिनेमा ही इस राष्ट्रभक्ति को संवर्धित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, सिनेमा के सामाजिक सरोकार साहित्य से बहुत अधिक होते हैं इसलिए सिनेमा की एक जिम्मेदारी बन जाती है कि वह देश की नई पीढ़ी में राष्ट्रभक्ति के संस्कारों का बीजारोपण करे।

आधुनिक समय में सिनेमा जीवन का एक ऐसा हिस्सा है जिसे हम जन समुदाय से अलग नहीं कर सकते। यह सिनेमा ही है जिसके माध्यम

से समाज के विभिन्न वर्गों के रूप अलग-अलग दृश्यबंधों के माध्यम से हमारे सामने चले आते हैं सिनेमा का एक एक दृश्य लोगों की भावनाओं को ही अंकित करता है।”

कहना न होगा कि आज का सिनेमा समस्त भारतवासियों के दिल में देश के प्रति राष्ट्रभक्ति व राष्ट्र बोध जागृत करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। सिनेमा ने ऐसी कई फिल्मों का निर्माण किया जिससे देश भक्ति और राष्ट्रभक्ति की भावना को बल मिला और राष्ट्र के प्रति प्रेम को जागृत करने में उन्होंने अहम भूमिका निभाई। देश के प्रति हमारा प्रेम तो बढा ही... साथ ही साथ हमें मालूम चला कि देश में वह कौन लोग थे और किस तरह से उन्होंने देश की स्वतंत्रता का आह्वान किया और वे कौन से तत्व हैं जो देश को आगे बढ़ाने में योगदान दे रहे हैं। वास्तव में देश के प्रति अपने राष्ट्र के प्रति सिनेमा की यह देन अक्षुण्ण कही जा सकती है। देश भक्ति गीत फिल्मों के निर्माण के तीन प्रकार कहे जा सकते हैं, जिनके द्वारा राष्ट्रभक्ति का आह्वान किया जा सकता है-

(अ)-सेना व युद्ध आधारित फिल्में, जैसे हकीकत, बॉर्डर, एल ओ सी इत्यादि

(ब)- ऐतिहासिक फिल्में व विभाजन पर आधारित फिल्में, जैसे झांसी की रानी मणिकर्णिका पृथ्वीराज, बाजीराव मस्तानी, जोधा अकबर, मंगल पांडे, पिंजर, गदर, गर्म हवा इत्यादि

(स)- खेल आधारित फिल्में जैसे भाग मिल्खा भाग, चक दे इंडिया इत्यादि।

निर्देशक ज्ञान मुखर्जी की 1940 में प्रदर्शित फिल्म ‘बंधन’ संभवतः पहली फिल्म थी जिसमें देश प्रेम की भावना को रुपहले पर्दे पर दिखाया गया था। यूं तो फिल्म बंधन में कवि प्रदीप के लिखे सभी गीत लोकप्रिय हुए लेकिन ‘चल चल रे नौजवान’ के बोल वाले गीत ने आजादी के दीवानों में एक नया जोश भरने का काम किया। ऐसा नहीं है कि हमेशा से ही फिल्मों में

देशभक्ति को केवल एक तड़के की तरह इस्तेमाल किया गया है, लेकिन मौजूदा समय की सच्चाई यही है। किसी समय में फिल्मों या इन फिल्मों के गाने लोगों के बीच देशभक्ति का पर्याय हुआ करते थे। आजादी के पहले साल 1943 में एक फिल्म आई थी 'किस्मत'। इसका गाना 'दूर हटो ऐ दुनिया वालों हिन्दुस्तान हमारा है' लोगों के बीच अंग्रेजों के विरोध का चेहरा बन गया था। उस समय भारत की फिल्मों को ब्रिटिश सेंसर बोर्ड की मंजूरी के साथ ही रिलीज किया जाता था, ऐसे में ब्रिटिश अफसरों के कमजोर भाषायी ज्ञान के चलते किसी तरह इस फिल्म के गाने को मंजूरी मिल गई। गांधीजी के भारत छोड़ो आंदोलन के कुछ महीनों बाद आई यह फिल्म अपने इस गाने की वजह से अमर हो गई।<sup>2</sup>

देशभक्ति पर बनने वाली कुछ फिल्मों में शहीद, गांधी, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस : द फॉरगॉटन हीरो, मंगल पांडे : द राइजिंग, सरदार, झांसी की रानी, हकीकत, बॉर्डर, एल ओ सी, उपकार, पूरब और पश्चिम, देशवासी लगान, ग़दर, क्रांति क्रांतिवीर, मैदान-ए-जंग, खेलें हम जी जान से, लक्ष्य, मणिकर्णिका, कश्मीर फाइल, फना, फर्ज, अब तुम्हारे हवाले वतन साथियों, टैगो चार्ली, स्वदेस, परदेस, प्रेम पुजारी, रंग दे बसंती, मिशन कश्मीर, हीरो (the love story of a spy), केसरी, हॉलीडे, रोजा, भाग मिलखा भाग, चक दे इंडिया, गोल्ड दंगल, भारत, उरी, जिस देश में गंगा बहती है, देशवासी, मसान, मेजरसाब, ट्रेन टू पाकिस्तान, राजी, गाजी अटैक, तिरंगा, माँ तुझे सलाम, परमाणु द स्टोरी आफ पोखरण, तानाजी, सरफरोश, द लीजेंड ऑफ भगत सिंह, राग देश, केसरी, 1971, 26/11, 1942 ए लव स्टोरी, नमस्ते लंदन, रामजी लंदन वाले, न्यूयॉर्क, द नेमसेक, जोर, जमीर, जमीन, हकीकत, जागृति, नया दौर, इत्यादि,

#### (अ)-युद्ध, सेना आधारित फिल्में-

**हकीकत:** ये फिल्म 1962 के भारत-चीन युद्ध को लेकर बनाई गई थी एक ऐसी लड़ाई जिसके बारे में भारत ने कभी सोचा ही नहीं था। कोई तैयारी भी नहीं थी सैनिक साजो सामान भी पर्याप्त नहीं थे। ऐसी ही लड़ाई में कैप्टन बहादुर सिंह (धर्मेंद्र) अपनी टुकड़ी के जवानों को बचा लेता है। ये फिल्म बहुत शानदार बनी थी। ये हिंदी में देश की पहली 'वॉर फिल्म' भी है।

**उपकार:** 1967 में आई देशभक्ति के जज्बे से भरी फिल्म को बनाने का मकसद था "जय जवान, जय किसान" के नारे को बुलंद करना। फिल्म में मनोज कुमार के अभिनय ने लाखों करोड़ों देशवासियों का दिल जीत लिया। इसमें मनोज कुमार का नाम "भारत" था। इसी फिल्म के बाद लोग उन्हें 'भारत कुमार' बुलाने लगे थे। मेरे देश की धरती सोना उगले, उगले हीरे मोती... गाने को उन दिनों कई सम्मान भी मिले।

**बॉर्डर:** 1997 में जेपी दत्ता ने राजस्थान की सीमा पर 1971 की

भारत-पाक युद्ध की सच्ची घटना को लेकर फिल्म बनाई थी बॉर्डर। बॉर्डर में वह सब कुछ देखने को मिलेगा जो एक देशभक्ति फिल्म में होना चाहिए। फिल्म ब्लॉकबस्टर थी। फिल्म में दिखाया गया है कि विपरीत परिस्थितियों में राजस्थान की सीमाई पोस्ट पर 120 भारतीय जवानों ने पूरी रात पाकिस्तानी टैंकों की रेजिमेंट को रोक कर रखा। अंत में उन्हें भागना पड़ा। फिल्म में सनी देओल, सुनील शेट्टी, अक्षय खन्ना, जैकी श्रॉफ, पुनित इस्सर, सुदेश बेरी जैसे कलाकारों ने अभिनय किया है।

लक्ष्य- वर्ष 2004 में आई एक बॉलीवुड वार ड्रामा है, फिल्म की कहानी वर्ष 1999 में हुए कारगिल वार को दर्शाती है। फिल्म में मुख्य भूमिका में ऋतिक रोशन, प्रीति जिंटा और अमिताभ नजर आते हैं। फिल्म के माध्यम से कारगिल युद्ध के समय पंजाब रेजिमेंट की तीसरी बटालियन जिसमें अमर (ऋतिक) और सुनील (अमिताभ बच्चन) पोस्टेड होते हैं की कहानी दर्शकों के सामने लायी गयी है।

मिशन कश्मीर-2000 में बनी हिन्दी भाषा की नाटकीय एक्शन फ़िल्म है। इसका निर्देशन और निर्माण विधु विनोद चोपड़ा ने किया और जारी होने पर मिशन कश्मीर आलोचनात्मक और व्यावसायिक सफलता बन गई। जिस दिन 'मोहब्बतें' जारी हुई उसी तारीख को जारी होने के बावजूद यह उस वर्ष की भारत में तीसरी सबसे ज्यादा कमाई करने वाली फिल्म बनी।

"मिशन कश्मीर का नायक संजय पुलिस ऑफिसर है जो एक अनाथ कश्मीरी बालक हतिक रोशन को गोद ले लेता है। जब बालक अपने पूर्व इतिहास का पता चलता है तो अपने माता-पिता से घृणा करने लग जाता है और उग्रवादियों की शरण में चला जाता है। शेष फिल्म वह के नौजवान को मुख्यधारा में लाने का लेखा-जोखा बन जाती है।"<sup>4</sup> देशभक्ति पर आने वाली फिल्मों का एकमात्र उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति के मन में राष्ट्र के प्रति सम्मान और प्रेम की भावना का विकास करना था कारगिल युद्ध के दौरान यह देश भक्ति वाला फार्मूला खूब चढ़ा व चमका। ललित जोशी इस दौर की फिल्मों के लिए बहुत महत्वपूर्ण बात कही है-

"बॉलीवुडीकरण के दौर में बनी फिल्में विशेष सरोकार लेकर आईं। उदाहरण स्वरूप- 1. राष्ट्र की अखंडता को पवित्र मानना इसलिए राजनीतिक सांस्कृतिक विखंडन अथवा बिखराव को सिनेमा या ध्यान से यथासंभव दूर रखना, 2. फिल्मों की अंतर्वस्तु महानगरीय भारत और उसका नया वास्तुशिल्प, 3. प्रवासी भारतीयों की समृद्ध जीवन शैली का प्रदर्शन 4. परंपरा के नाम पर पितृसत्ता, संयुक्त परिवार और जाति वर्ग संघर्ष के मामलों के साथ न्यूनतम छेड़छाड़, 5. हिंदी हिंदुस्तानी के स्थान पर इंग्लिश का प्रयोग।"<sup>5</sup>

## (ब)-इतिहास व विभाजन पर आधारित फिल्मों

सेना और युद्ध पर बनने वाली सभी फिल्मों के साथ-साथ कुछ ऐतिहासिक फिल्मों का निर्माण भी देशभक्ति के लिए किया गया है ताकि इतिहास बोध को जागृत करने के साथ-साथ देशवासियों में देश के प्रति भावना का निर्वहन करवाया जाए, देश का गौरवशाली अतीत लोगों के सामने लाया जाए ऐसी फिल्मों में मुगल-ए-आज़म, जोधा-अकबर, अशोक, बाजीराव मस्तानी, मणिकर्णिका, झांसी की रानी इत्यादि कई फिल्मों कही जा सकती है।

मणिकर्णिका: झांसी की रानी की पटकथा रानी लक्ष्मी लक्ष्मीबाई के जीवन और 1857 के भारतीय विद्रोह के दौरान ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के खिलाफ उनकी लड़ाई पर आधारित है। भारत की महान वीरांगना की कहानी बताती यह फिल्म भी देशभक्ति से भरपूर है।

मंगल पांडे-आजादी की लड़ाई के अग्रदूत कहे जाने वाले मंगल पांडेय के जीवन का दर्शन कराने वाली यह फिल्म देशभक्ति पर बनी एक बेहतरीन फिल्म है। जिसमें मंगल पांडेय के जीवन को दिखाया गया है कि कैसे उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह का बिगुल बजा दिया था और अंत में उन्हें फांसी की सजा दे दी गई थी। इस फिल्म में भी आमिर खान ही मुख्य किरदार में थे। इन ऐतिहासिक फिल्मों के लिए प्रसिद्ध संपादक 'जय सिंह' का कथन विशेष उल्लेखनीय है

“ऐतिहासिक कही जाने वाली फिल्मों में इतिहास कम और कल्पना का विस्तार ज्यादा रहा है। फिल्मों की इतिहास बोध की पृष्ठभूमि में जब मैं आशुतोष गोवारीकर की जोधा अकबर, संतोष सिवान की अशोक और केतन मेहता की द राइजिंग मंगल पांडे को देखता हूँ तो यही पाता हूँ कि इतिहास कही जाने वाली इन फिल्मों में प्रेम की संभावना को तो जरूर टटोला गया पर समाज की पीड़ा, उत्पीड़न, आशा, आकांक्षा समाज में हो रहे सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परिवर्तन को अनदेखा कर दिया गया।”<sup>6</sup>

हालांकि ये फिल्में भारत देश के प्रति अपने गौरव का निदर्शन तो कराती ही हैं। अब एक विशेष फिल्म लगान के बारे में बात करते हैं जिसमें देशभक्ति के फार्मूले को एक नया कलर देकर प्रस्तुत किया गया।

लगान, मदर इंडिया और सलाम बॉम्बे के बाद बॉलीवुड की तीसरी ऐसी फिल्म थी जिसे ऑस्कर के लिये नॉमिनेट किया गया था। यह अंग्रेजों के भारत पर किये अत्याचार को दिखाती है फिल्म में गांव के किसानों और अंग्रेजों के बीच दिखाये गये क्रिकेट मैच के लिये याद किया जाता है। जिसमें यह शर्त लगी होती है। कि अगर गांव वाले मैच हार जाते हैं तो उनकी जमीन पर अंग्रेज कब्जा कर लेंगे और अगर वो

जीतते हैं तभी अपनी जमीन बचाने में कामयाब होंगे। उनकी वजह से वे मैच जीत भी जाते हैं और कामयाब भी होते हैं। ‘जवरीमल्ल पारख’ फिल्म पर विशेष टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि- सन 2000 के मध्य में दो महत्वपूर्ण फिल्मों रिलीज हुई थी लगान और गदर एक प्रेम कथा। दोनों में इतिहास की कथा को आधार बनाया गया है... गदर का संबंध विभाजन से है तो लगान का स्वाधीनता संग्राम से है, हालांकि लगान में सीधे तौर पर आजादी की लड़ाई नहीं है। सीधे तौर पर सत्ता राजा के पास होते हुए भी वास्तविक सत्ता अंग्रेजों के हाथ में थी। फिल्म में इस रियासत के एक छोटे से गांव चांपानेर की कहानी कही गई है। कहानी में सिर्फ बाहरी तत्वों के अलावा कुछ भी सत्य नहीं है। कहानी पूरी तरह से काल्पनिक है। लेकिन अंग्रेजों के राज और उसके शोषण और उत्पीड़न के नीचे कहराता भारतीय किसान इस कहानी सत्य है।”<sup>7</sup> लगान के साथ ही एक और महत्वपूर्ण फिल्म आई थी जिसका नाम था ‘गदर एक प्रेम कथा’ हालांकि या फिल्म विभाजन की त्रासदी पर या बंटवारे पर आधारित थी परंतु इस फिल्म के संवाद और तारा सिंह के रूप में सनी देओल विशेष लोकप्रिय हुए थे। यह फिल्म पाकिस्तान से सनी देओल के हैंडपम्प उखाड़ कर भारत लाने के लिए पहचानी जाती है। फिल्म में सनी देओल ने तारा सिंह का रोल प्ले किया था।

“ गदर की कहानी बंटवारे की त्रासदी पर आधारित है, फिल्मों बंटवारे के कारण लाखों लोगों के उजड़ने और दंगे फसाद में मारे जाने की कथा है, इसमें हिंदू भी मारे गए और मुसलमान भी। विभाजन की त्रासदी सबसे ज्यादा उन औरतों को भुगतनी पड़ी जो अपने परिवार वालों से अलग हो गई थी। गदर भी ऐसी ही मुस्लिम स्त्री सकीना की कहानी है जो अमृतसर से लाहौर जाते हुए स्टेशन पर अपने परिवार वालों से बिछड़ जाती है। एक सिख जाट तारा सिंह उससे शादी कर लेता है लेकिन बाद में उसे पता लगता है कि उसके माता-पिता जिंदा हैं। वह वापस उनसे मिलने लाहौर जाती है लेकिन माता-पिता वापस नहीं भेजते। फिर दारा सिंह उसे लेने वापस पाकिस्तान जाता है।”<sup>8</sup> पूरी कहानी में सनी देओल के प्रभावी संवाद हैं जो भारतीयों के मन में देश प्रेम का जयघोष करते हैं।

चक दे इण्डिया- यह भारतीय महिला हॉकी टीम के बारे में एक काल्पनिक कहानी बताती है, जो 2002 के राष्ट्रमंडल खेलों में टीम की जीत से प्रेरित थी, और नारीवाद और लिंगवाद जैसे विषयों पर भी रोशनी डालती है, भारत के विभाजन की विरासत, नस्लीय और धार्मिक कट्टरता, जातीय और क्षेत्रीय पूर्वाग्रह भी इस फिल्म में दिखाये गये हैं।

“चक दे इंडिया ने जिस जज्बे को उभारा उसकी एक और सच्ची वास्तविक और स्वयंस्फूर्त ढंग से उपजी मिसाल देखने को मिली। मुंबई

में हुए 26/11 के आतंकी हमले के बाद जब सारा देश एक साथ एक सुर में बोल रहा था कि यह समूचे हिंदुस्तान पर किया गया आक्रमण है। ऐसे में आतंकवाद के खिलाफ, क्षेत्रवाद के खिलाफ सांप्रदायिकता के खिलाफ यह जनता का स्वमेव किया गया उद्घोष था सचमुच का चक दे इंडिया।”<sup>9</sup>

एक और फिल्म आई थी जिसका जिक्र करना यहां आवश्यक होगा... जिसने युवा दिलों में देश के प्रति देश की समस्याओं और उनके समाधान के प्रति एक नया भाव बोध जागृत कर दिया, उसका नाम था रंग दे बसंती। रंग दे बसंती में आमिर खान ने युवाओं को नया ट्रेंड देकर देश के प्रति जागरूक करने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी हालांकि यह पूरी तरह से देशभक्ति आधारित फिल्म नहीं कही जा सकती है... लेकिन फिर भी युवाओं को एक नए भाव बहुतायत से भरने के लिए... एक नए जोश को भरने के लिए इस फिल्म की महत्वपूर्ण उपादेयता है। विनीत कुमार के अनुसार-”पटकथा में फेरबदल के बावजूद गुलामी और आजादी के संदर्भ और अर्थ में कोई बदलाव नहीं दिखता.. लेकिन रंग दे बसंती में आजाद भारत में गुलाम भारत की बर्बरता दिखाई जाती है। आप फिल्म देखकर अपने आप दोहराने लग जाते हैं कि यह आजादी झूठी है। देश कभी गुलाम था अब आजाद हो गया। आजादी को एक शाश्वत सत्य मान लेने से यह फिल्म आजादी और गुलामी को निरंतर चलने वाली प्रक्रिया के रूप में दिखाया जाता है। आज हर दौर के यूथ को इसके लिए अलग अलग मोर्चे पर अलग अलग अंदाज में इसे आजाद करते रहने और गुलाम करने वाली मशीनों को ध्वस्त करते रहने की जरूरत होगी।”<sup>10</sup>

देशभक्ति के प्रति फिल्मकारों का आकर्षण बरकरार है और यह इस बात से साबित होता है कि वर्ष 2002 में भगत सिंह के बारे में तीन हिन्दी फिल्मों का निर्माण किया गया। ये फिल्में थीं – राजकुमार संतोषी की द लिजेंड ऑफ भगत सिंह, गुड्डू धनोवा के निर्देशन में बनी 23 मार्च : शहीद और सुकुमार नायर की शहीद-ए-आजम । 2004 में विख्यात निर्देशक श्याम बेनेगल की फिल्म नेताजी सुभाष चन्द्र बोस : द फॉर्गटन हीरो आई।

लेकिन बॉक्स ऑफिस पर कामयाबी के लिए देशभक्ति ही अकेला जादू नहीं है, जैसा कि चटगांव शस्त्रागार विद्रोह (1930-34) पर आधारित आशुतोष गोवारिकर की फिल्म खेले हम जी जान से (2010) की नाकामयाबी से साबित हुआ। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि राष्ट्रवाद सिनेमा के रूपहले पर्दे पर आने के नये रास्ते तलाशना जारी रखेगा। उसे दर्शकों को लुभाने के लिए लगातार खुद को नये सिरे से खोजना जारी रखना होगा। स्वतंत्रता संग्राम के दौर में सिनेमा के महत्व को स्वीकार करते हुए डॉ राममनोहर लोहिया ने कहा था कि

– भारत को एक करने वाली दो ही शक्तियां हैं, पहला गांधी और दूसरी फिल्में।”<sup>11</sup> यह बात तो जगजाहिर है ही कि हिंदी सिनेमा का जितना प्रभाव समाज एवं नई युवा पीढ़ी पर पड़ता है उतना किसी अन्य और माध्यम का नहीं पड़ पाता, इस कारण सिनेमा का यह नैतिक दायित्व भी हो जाता है कि वह उस नई पीढ़ी में वह संस्कार जागृत करें, जिससे कि राष्ट्र के सम्मान में अभिवृद्धि हो। हालांकि हम सभी जानते हैं कि हिंदी सिनेमा 1940 से अपना यह कार्य बखूबी निभा रहा है लेकिन अब उसे एक नई दृष्टि की आवश्यकता है। हमेशा हम एकरस कहानियों को दिखा करके या उनका प्रदर्शन करके और देश के सम्मान में नारे लगवा कर फिल्मों को हिट नहीं करवा सकते, , अब हमें ज्यादा से ज्यादा यूथ का जुड़ाव सिनेमा से करना होगा, सिनेमा को उन फिल्मों का प्रदर्शन अधिकाधिक करना पड़ेगा जिससे देश की युवा पीढ़ी और समाज यह समझ सके कि देश के मुद्दे अब बदल गए हैं। उसको विकसित से विकासशील होने के लिए किन तत्वों की आवश्यकता है। देश में चल रही नई-नई समस्या और उसके समाधान के बारे में सिनेमा को बात करनी होगी, उन मुद्दों की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करवाना होगा जिससे देश प्रगति कर सके।

संदर्भ-

1. सिनेमा और साहित्य, लेखक हरीश कुमार, पृष्ठ-2, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1998।
2. देश भक्ति से लवरेज बॉलीवुड फिल्में, हिंदी वेबदुनिया अभिगमन तिथि, 11 मई 2022।
3. बॉलीवुड पाठ (विमर्श के संदर्भ में), लेखक ललित जोशी, पृष्ठ-124, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012।
4. वही, पृष्ठ-125
5. वही, पृष्ठ-126
6. भारतीय सिनेमा का सफरनामा, संकलन और संपादन- जयसिंह, पृष्ठ-29, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, संस्करण 2013।
7. सिनेमा का समाजशास्त्र, जवरीमल्ल पारख, पृ.272, ग्रंथशिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2006, ।
8. वही, पृष्ठ-224
9. हिन्दी सिनेमा (बीसवीं सदी से इक्कीसवीं सदी तक), संपादक प्रहलाद अग्रवाल, पृष्ठ-536, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, संस्करण- 2009।
10. वही, 513
11. लोहिया: एक प्रामाणिक जीवनी, ओंकार शरद, पृष्ठ-12, लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012।



सहायक आचार्य, हिंदी राजकीय महाविद्यालय, टोंक, राजस्थान  
दूरभाष-7597784917 ईमेल-pranu.rc55@gmail.com



## हिंदी उपन्यास और सिनेमा

प्रो. सत्यकेतु सांकृत

“**बेहतर साहित्य बेहतर सिनेमा बनेगा यह तय नहीं है लेकिन एक खराब कहानी को परिवर्तित कर शानदार फिल्म बनायी जा सकती है। साहित्य मनोरंजन से अलग एक ऐसी दुनिया है जिसमें जीवन का यथार्थ है, सामाजिक संवेदना की अभिव्यक्ति का माध्यम है, जबकि सिनेमा का पहला कर्म मनोरंजन करना है-“साहित्य पढ़ते समय हम सिर्फ मनोरंजन की उम्मीद नहीं रखते हैं पर सिनेमा देखते समय हम मनोरंजन की एक बड़ी उम्मीद देखते हैं। सिनेमा में मनोरंजन को प्राथमिकता है-सिनेमा की पहली मांग है मनोरंजन।**”

सिनेमा सभी कलाओं का समन्वय है। साहित्य से इसका रिश्ता चोली-दामन का है। फिल्म बनने से पहले कहानी का चुनाव होता है। फिर कहानी की पटकथा तैयार की जाती है। इसी पटकथा से फिल्म का निर्माण होता है। गहराई से देखें तो फिल्म अपने निर्माण से पहले साहित्य के रूप में ही सामने आती है। साहित्य की लगभग सभी विधाओं में फिल्मों का निर्माण हुआ है। कहानी, लम्बी कविता, नाटक आदि पर हिंदी में अनगिनत फिल्मों का निर्माण हुआ है। लगभग 110 वर्ष का हिंदी सिनेमा भारतीय जनमानस के विभिन्न भावनाओं को प्रदर्शित करने में सफल रहा है। साहित्य और सिनेमा की बुनावट अलग-अलग है लेकिन जनमानस को प्रभावित करने में दोनों की भूमिका अहम् है।

सिनेमा में ढलकर साहित्य उस समाज से भी संवाद करने में सफल होता है जिसे अक्षर ज्ञान नहीं। भारत में तो सिनेमा के प्रति लोगों में राजब का आकर्षण है क्योंकि सिनेमा का पहला उद्देश्य मनोरंजन करना है। प्रारम्भिक दौर में सिनेमा पौराणिक साहित्य से विकसित हुआ। राजा हरिश्चंद्र, भक्त पुंडरिक जैसी फिल्मों ने साहित्य और सिनेमा के संबंध को न केवल मजबूत किया बल्कि निर्देशकों को साहित्य के प्रति संवेदनशील भी बनाया। साहित्य पर बनी किसी फिल्म को सफलता मिलेगी, इसकी कोई गारंटी कभी नहीं नहीं रही लेकिन समाज को दिशा देने में उपन्यासों पर बनी फिल्मों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

हिंदी उपन्यास और सिनेमा के संबंध को समझने के लिए प्रेमचंद से ही आरंभ करना आवश्यक होगा क्योंकि उसके पहले के जादुई उपन्यासों पर धारवाहिकों का निर्माण बहुत बाद में हुआ। चन्द्रकान्ता जैसे धारवाहिकों ने वर्षों तक लोगों का मनोरंजन किया। 1933 में मुंबई की अजंता मूवी टोन ने प्रेमचंद की कहानी 'मिल मजदूर' पर फिल्म का निर्माण किया। मूल कहानी से बदलाव के कारण प्रेमचंद का मोहभंग हुआ और वापस लौट आए। प्रेमचंद जैसे बड़े संवेदनशील साहित्यकार के लिए सिनेमा की बनावटी दुनिया पसंद नहीं आयी। यह समझना बहुत जरूरी है कि सफल साहित्यकार सफल पटकथा लेखक भी हो या आवश्यक नहीं है। हिंदी सिनेमा में अमृत लाल नागर, कमलेश्वर, राही मासूम राजा जैसे साहित्यकारों ने सिनेमा में निर्णायक कार्य किया।

सिनेमा में प्रेमचंद लेखक के रूप में भले ही असफल रहे या कहे कि उन्होंने सिनेमा के शर्तों पर काम करना स्वीकार नहीं किया लेकिन उनकी रचनाओं पर लगातार फिल्मों का निर्माण होता रहा। 1934 में उनके बहुचर्चित उपन्यास 'सेवासदन' पर फिल्म बनी। हलाकि फिल्म

असफल रही लेकिन उसकी चर्चा हुई। दरअसल प्रेमचंद के उपन्यासों का कथा-विस्तार बहुत विशाल होता है जिससे फिल्म निर्माण के समय कुछ न कुछ छोड़ना आवश्यक हो जाता है। यही उनके बहुचर्चित उपन्यास गोदान के साथ भी हुआ। होरी और धनिया के जीवन से जुड़े कथाओं के साथ ही मेहता और मालती का प्रसंग गोदान का प्राण तत्व है लेकिन फिल्म में इनके चरित्र को कम फिल्माया गया है। गोदान सफल फिल्म के रूप में सामने आयी लेकिन उसे देखकर मन नहीं भरता। मेहता, मालती साहित्य अन्य पात्रों की अनुपस्थिति जैसे गोदान को अपूर्ण बना देती है। राजकुमार की शुरुआती फिल्मों में उनके अभिनय की विविधता के रूप में रूप में इस फिल्म को देखा जा सकता है। बाद की फिल्मों में राजकुमार गैलर नायक के रूप में सामने आने लगे और उनके दम्भी, हटी और दबंग चरित्र को फिल्मों में अधिक प्रयोग किया। वर्षों उनकी संवाद अदायगी पर फिल्मों का निर्माण होता है। इन सबसे इतर राजकुमार गोदान में एक किसान के किरदार को जीवंत रूप में जीते हुए शानदार अभिनय करते हैं। 'गबन' प्रेमचंद का महत्वपूर्ण उपन्यास है। सुनील दत्त के दमदार अभिनय ने गबन को रोचक फिल्म बना दिया है। निर्देशकों ने गोदान और गबन की मूल कथा के साथ कोई छेड़छाड़ तो नहीं किया है लेकिन कहानी का कुछ हिस्सा हटा दिया है क्योंकि सिनेमा में समय की सीमा है।

अपने समय के लोकप्रिय निर्देशक केदार शर्मा ने चित्रलेखा फिल्म बनायी। केदार शर्मा हिंदी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान थे। साहित्य लेखन के साथ एक सफल फिल्म निर्देशक, गीतकार और पटकथाकार के रूप में भी उन्हें जाना जाता है। साहित्य के प्रति उनकी रुचि का प्रभाव उनकी फिल्मों में देखा जा सकता है। पटकथा लेखक और हिंदी फिल्मों के गीतकार थे। उन्होंने अपने साहित्य के साहित्य में रुचि रखने वाले प्रसिद्ध फिल्मकारों के साथ काम किया। मात्र 'पुराण भगत' फिल्म देखने के बाद उनकी फिल्मों में रुचि हुई। इस फिल्म से वह बेहद प्रभावित हुए। फिल्मों के काम करने के लिए किसी भी शर्त पर तैयार थे। छायाकार और अभिनेता के रूप में उनके फिल्मी कैरियर की शुरुआत हुई। 1947 में विख्यात फिल्म 'नीलकमल' में उन्होंने राजकपूर को निर्देशित किया। साहित्य के प्रति उनका अनुराग ऐसा था कि उन्होंने उन्हीं लोगों के साथ काम किया जिन्हें साहित्य में रुचि थी या साहित्य की समझ थी। चित्रलेखा उनके साहित्य प्रेम का ही परिणाम थी। चित्रलेखा एक

सफल उपन्यास है लेकिन फिल्म में काफी बदलाव के कारण दर्शकों के मन तक नहीं उतर पायी लिहाजा बहुत अधिक सफल नहीं हुई। मीना कुमारी के संजीदा अभिनय ने चित्रलेखा को देखने योग्य अवश्य बना दिया था। दरअसल बेहतर साहित्य बेहतर सिनेमा बनेगा यह तय नहीं है लेकिन एक खराब कहानी को परिवर्तित कर शानदार फिल्म बनायी जा सकती है। साहित्य मनोरंजन से अलग एक ऐसी दुनिया है जिसमें जीवन का यथार्थ है, सामाजिक संवेदना की अभिव्यक्ति का माध्यम है, जबकि सिनेमा का पहला कर्म मनोरंजन करना है-“साहित्य पढ़ते समय हम सिर्फ मनोरंजन की उम्मीद नहीं रखते हैं पर सिनेमा देखते समय हम मनोरंजन की एक बड़ी उम्मीद देखते हैं। सिनेमा में मनोरंजन को प्राथमिकता है-सिनेमा की पहली मांग है मनोरंजन।”

हिंदी उपन्यासों पर बनी फिल्मों में भीष्म साहनी के 'तमस' की चर्चा चर्चा कारण आवश्यक है। लम्बे धारावाहिक के रूप में तमस की प्रस्तुति पहले ही दूरदर्शन पर हो चुकी थी। इसकी लोकप्रियता ने फिल्म बनाने के लिए प्रेरित किया। 'तमस' भारतीय समाज में फैले सांप्रदायिक दंगे के कारण, समस्या और उससे उत्पन्न होने वाली चुनौती को चित्रित करता महत्वपूर्ण उपन्यास है। तमस सांप्रदायिक दंगों को प्रतीक रूप में प्रस्तुत करता है। गोविन्द निहलानी हिंदी सिनेमा के ऐसे निर्देशक हैं जिनकी फिल्में समय का तीसरा सत्य दिखाती हैं। ऐसा सत्य जो घर, परिवार, समाज को खोखला बना देती है। बंटवारे की मूल कथा पर केन्द्रित इस उपन्यास में गोविंद निहलानी कुछ उत्तम प्रयोग कर इसे मार्मिक फिल्म बना दिया है। समान्तर सिनेमा के अभिनेताओं ने अभिनय से इसकी कथा को जीवंत बना दिया है। ओम पूरी, पंकज कपूर और अमरीश पुरी जैसे मंझे हुए कलाकारों ने तमस को सफल बना दिया है। उपन्यास जितना अधिक मार्मिक है फिल्म उतनी ही संवेदनशील है। भीष्म साहनी द्वारा रचित इस उपन्यास ने विभाजन की विभीषिका में उलझे कुछ अमानवीय घटनाओं को अभिव्यक्त किया जिसे गोविन्द निहलानी ने उसी जीवंतता से प्रस्तुत किया है।

माध्यम वर्गीय जीवन की विसंगतियों, प्रेम, आर्थिक समस्या को आधार बनाकर लिखा गया राजेंद्र यादव का उपन्यास 'सारा आकाश' युवा पीढ़ी को बहुत पसंद आया। बासु चटर्जी निर्देशित इस फिल्म की मूल कथा का कुछ हिस्सा फिल्म में प्रयोग हुआ साथ ही कहानी को आगे-पीछे भी किया गया। फिल्म की कहानी एक युवा विद्यार्थी समर

की है जो आगरा में अपने माता पिता के साथ रहता है। न चाहते हुए भी उसका विवाह प्रभा से कर दिया जाता है। विवाह समर को मधु के बारे में पता चलता है कि उसे घर का काम करना नहीं आता और परिवार वालों से उसका मन भी नहीं मिलता। माध्यम वर्गीय परिवार में भाभी, भाई, माता, पिता को दुखी करने के लिए इतना काफी होता है। आर्थिक तंगी ऐसे परिवारों में बड़ी भूमिका निभाती है। यह उस दौर की कहानी है जब पारिवारिक मर्यादा का बंधन नव विवाहितों में कूट-कूट कर भरी होती थी। राजेंद्र यादव उसी थोथी मर्यादा का खंडन करने के लिए यह उपन्यास लिखते हैं। बासु चटर्जी ने उपन्यास के साथ कथ्य के साथ कुछ प्रयोग कर संजीदा फिल्म का निर्माण किया है। फिल्म में युवा नायक अपने अनमने विवाह से खुश नहीं है लिहाजा पत्नी से बातचीत नहीं है। ऊपर से भाभी और बहन के तानों से वह और खिन्न है। पति-पत्नी के प्रेम के बीच मर्यादा खड़ी है। अंत में जब उसे यह एहसास होता है कि उससे अपनी पत्नी के साथ अन्याय किया है, अनायास उसे दुःख दिया है और पीड़ित किया तो उसे अपनी गलती का एहसास होता है। अंत में वह दोनों एक दूसरे से लिपट कर रोते हैं। यह फिल्म का प्राण-दृश्य है। कहें तो पूरी फिल्म यहीं आकर ठहर जाती है। उपन्यास में अनेकों दुःख प्रसंग हैं लेकिन इसे पढ़ चुका पाठक जैसे फिल्म में इसी दृश्य को देखने के लिए व्याकुल है। बासु चटर्जी के शानदार निर्देशन ने इस फिल्म को उपन्यास से भी अधिक मार्मिक बना दिया है।

हिंदी साहित्य और सिनेमा के बीच किसी ने मजबूत पुल की तरह काम किया तो वह कमलेश्वर हैं। कमलेश्वर के कई उपन्यासों पर फिल्मों का निर्माण तो हुआ ही उन्होंने स्वयं कई सफल फिल्मों की पटकथा भी लिखी। गुलज़ार के साथ मिलकर उन्होंने हिंदी सिनेमा और साहित्य के रिश्ते को मजबूत किया। हिंदी उपन्यासों पर बनी फिल्मों की तकनीकी, उसकी उपलब्धियाँ और सीमाओं को समझने के लिए कमलेश्वर की फिल्मों से गुजरना बहुत आवश्यक है। उनकी फिल्मों की कथावस्तु आम आदमी का जीवन-संघर्ष, प्रेम, सामाजिक विसंगति आदि पर केन्द्रित है। खासकर मध्यम वर्गीय जीवन की आप-धापी और उस उपजे भाव को कमलेश्वर ने बड़ी जीवंतता से प्रस्तुत किया है। 'आँधी' उन्हीं के उपन्यास पर बनी बहुचर्चित फिल्म है। एक स्त्री की राजनीतिक यात्रा की चुनौतियाँ और पारिवारिक जिम्मेदारी से विमुख हो जाने की संजीदा कहानी इस फिल्म को महत्वपूर्ण बनाती है। गुलज़ार के ही

निर्देशन में बनी 'मौसम' प्रेम पर आधारित एक स्त्री के जीवन की त्रासद कथा है। इसके आलावा 'बर्निंग ट्रेन', 'मि.नटवरलाल', 'अमानुष', 'पति, पत्नी और वो', 'आधा दिन आधी रात', 'राम बलराम', 'सौतन', 'बदनाम बस्ती', 'डाक बंगला', 'बरसात की एक रात' जैसी फिल्मों में कभी वह कथाकार तो कभी कथाकार तो कभी संवाद लेखक के रूप में जुड़े। हर रूप में उन्हें सलफता भी मिली। कमलेश्वर ने हिंदी सिनेमा में फिल्म में संवाद लेखन भी किया। हालांकि विशुद्ध साहित्यकार होने का उन्हें कई नुकसान भी। कई फिल्मों में उनका नाम नहीं दिया गया तो कई में केवल कथाकार के रूप में नाम दिया गया जबकि फिल्म की पटकथा तैयार करने में उनकी भूमिका अहम् थी। इसको लेकर गुलज़ार, बासु चटर्जी जैसे स्थापित लोगों से उनके विवाद भी रहे।

वास्तव में कमलेश्वर की लेखनी में कुछ ऐसा था जिसे पाठक और दर्शक दोनों पसंद करते थे। समान्तर सिनेमा और समान्तर कथा साहित्य उनके बिना अधुरा है। कह सकते हैं कि साहित्य और सिनेमा में बदलाव लाने में उनकी भूमिका निर्णायक है। साहित्यकार के रूप में उनका बहुआयामी लेखन साहित्य की निधि है तो उनका सिनेमाई लेखन हिंदी सिनेमा और साहित्य के संबंधों को मजबूती प्रदान करता है। उपन्यास की दृष्टि से देखें तो कमलेश्वर का उपन्यास हिंदी सिनेमा के मुड से लिखा गया है। शायद इसीलिए उन्हें सिनेमा की तकनीकी का पूरा ज्ञान था।

मैंने जिन उपन्यासों की चर्चा यहाँ की है उससे इतर और भी भाषाओं के उपन्यासों पर फिल्मों का निर्माण हुआ है। जो व्यावसायिक दृष्टि से सफल भी है। बांग्ला के शरत चंद्र के उपन्यास देवदास की कहानी को थोड़ा बहुत बदलकर कई फिल्मों का निर्माण हुआ। कोहबर की शर्त, सूरज का सातवाँ घोड़ा, झूठा सच, पिंजर, मोहल्ला अस्सी, ओमकारा जैसी कई फ़िल्में उपन्यासों पर बनी हैं। ये सारी फ़िल्में निर्णायक हैं। उपन्यास ऐसी विधा है जिसपर फिल्म बनाना आसान भी है चुनौतीपूर्ण भी।



कुलानुशासक, डॉ. बी आर अंबेडकर विश्वविद्यालय लोथीयन रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली 110006 मो. 8826252403



कथा-पटकथा

## साहित्यिक कथा से पटकथा निर्माण के आयाम

डॉ. विजय कुमार मिश्र

“**दरअसल सिनेमाई रूपांतरण के क्रम में कथा में परिवर्तन की आवश्यकता भी उस कथा से ही निकलती है। सत्यजीत राय ने ‘शतरंज के खिलाड़ी’ में जहाँ इतिहास बोध, कथा में व्याप्त संकेत, ब्यौरे, समकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ आदि के अनुरूप आवश्यक बदलाव किया तो ‘सद्गति’ बनाते वक्त इस छूट और बदलाव से काफी दूर ही रहे। ऐसा कथा की अपनी संरचना, स्वरूप और वस्तु के चलते ही हुआ। वस्तुतः माध्यम की भिन्नता के कारण ऐसे परिवर्तन स्वाभाविक हैं। लय, शैली, विषय-वस्तु और ब्यौरों को लेकर हर माध्यम की अपनी दृष्टि होती है। कहीं शास्त्रीय संरचना फिल्म के लिए आवश्यक हो जाती है या सादगी ही महत्वपूर्ण बनी रहती है। कहीं कथानक या प्लॉट इतना अनिवार्य होता है कि घटनाओं की क्रमबद्धता से बचा नहीं जा सकता और कहीं जितने ब्यौरे लिए जाते हैं, उससे कहीं अधिक छोड़ दिए जाते हैं।**”

**प**टकथा से क्या अभिप्राय है? इसे हम किसी फिल्म की रूपरेखा कह सकते हैं, फिल्म का आरेख कह सकते हैं। इसे हम फिल्म के दृश्यों की वह शृंखला भी कह सकते हैं जो संवादों और विवरणों के द्वारा कही जाती है? फिल्म निर्माण को लेकर देखे गए स्वप्न का परिदृश्य भी कह सकते हैं? पटकथा को दृश्यों के द्वारा कही जाने वाली कहानी के रूप में भी रेखांकित किया जा सकता है।

पटकथा शब्द ‘पट’ और ‘कथा’ शब्दों से मिलकर बना है। ‘पट’ का अर्थ है पर्दा, कथा का अर्थ है ‘कहानी’। अभिप्राय यह है कि पर्दे पर दिखाई देने के लिए लिखी जाने वाली कथा को पटकथा कहते हैं। अंग्रेजी में इसे ‘स्क्रीनप्ले’ कहते हैं।

पटकथा के सन्दर्भ में फिल्म से जुड़े विशेषज्ञों ने अपने-अपने ढंग

से बातें कही है। मनोहर श्याम जोशी के अनुसार – “पटकथा लिखते समय आपको अपनी मन की आँखों से सारी घटना अनिश्चित वर्तमान काल में घटती हुई देखनी होगी और उसी रूप में उसे कागज़ पर उतारते जाना होगा।”<sup>1</sup>

सुप्रसिद्ध बंगाली निर्देशक तपन सिन्हा पटकथा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं - “पटकथा चलचित्र की बुनियाद है। जिस प्रकार कथानक से कहानी और उपन्यास का विकास होता है, उसी प्रकार पटकथा के माध्यम से चलचित्र का विकास होता है।”<sup>2</sup>

सुपरिचित लेखक डॉ. महेन्द्र मित्तल लिखते हैं - “दृश्य-बिम्बों के माध्यम से रचित कथा पटकथा कहलाती है और पटकथा-लेखन को ही चित्र-लेखन कहा जाता है।”<sup>3</sup>

दरअसल पटकथा ही वह प्रारूप है जो फिल्म से संबंधित अनेक जानकारियाँ मुहैया कराती है। फिल्म का बजट, उसके चरित्र, लोकेशन आदि के बारे में सारी जानकारी पटकथा में होती है। निर्देशक फिल्म को फिल्माने से पहले पटकथा का व्यापक अध्ययन करता है और उसी के आधार पर कुछ जोड़ने या घटाने का निर्णय करता है। अभिनेता अपने संवाद पटकथा से ही प्राप्त करता है और फिल्म के विभिन्न संदर्भों को भी वह पटकथा के माध्यम से ही समझता है। कला निर्देशक सेटों की परिकल्पना और सिनेमैटोग्राफर अपने शॉट्स का चयन भी पटकथा के आधार पर ही करता है। साउण्ड डिजाईनर स्वर, संगीत, इफेक्ट्स के साथ-साथ साउण्ड से संबंधित सभी पहलुओं का बारीक अध्ययन और संयोजन पटकथा के आधार पर ही करता है। देशकाल आदि के निर्धारण में भी पटकथा की महती भूमिका होती है। कहा जा सकता है कि पटकथा और पटकथा-लेखक का फिल्म निर्माण की प्रक्रिया में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

पटकथा के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए डॉ. महेन्द्र मित्तल

लिखते हैं -“वस्तुतः किसी भी चलचित्र की पटकथा निर्देशक, छायाकार, ध्वनि-संयोजक, प्रकाश प्रबंधक, संवाद-लेखक और कलाकारों के सम्मुख वे सब सूचनाएँ उपस्थित करती है कि दृश्य क्या है? कलाकार को क्या करना है? क्या संवाद बोलने हैं? कैमरा किस दिशा में और कितनी दूरी पर रहेगा? ध्वनि और प्रकाश की क्या स्थिति है? और किसको कहाँ से कहाँ तक गतिशील होना है अथवा किस प्रकार का अनुभव प्रदर्शन करना है? आदि”<sup>4</sup>

पटकथा-लेखन के संबंध में यह कथन काफी प्रचलित है कि पटकथाओं की रचना नहीं की जाती है बल्कि उनकी पुनर्रचना की जाती है। फिल्म-निर्माण में किसी एक चीज की यदि सर्वाधिक भूमिका और महत्व है तो वह है पटकथा।

विवेक दुबे के अनुसार - “फिल्म उद्योग के लोग चाहे वह भारत का फिल्म उद्योग हो या किसी और देश का, इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि कोई फिल्म उतनी ही अच्छी होती है जितनी अच्छी उसकी पटकथा होती है। किसी नाटकीय फिल्म के पात्र, उनकी भावनाओं और समस्याओं से क्रमशः प्रकट होती कहानी, वह वातावरण जिसमें वे पात्र संघर्ष करते हैं, और फिल्म की कथावस्तु - इन सबका रचयिता पटकथा-लेखक ही होता है। हालाँकि निर्देशक ही फिल्म का सर्वेसर्वा होता है किन्तु फिर भी वह मुख्य रूप से पटकथा लेखक के विज्ञान का व्याख्याता ही होता है। विश्व की अनेक महान फिल्मों ऐसे निर्देशकों ने बनाई है जो पटकथा लेखक भी थे जैसे सत्यजीत राय, इंगमार बर्गमैन, अकिरा कुरोसोवा आदि। इसी प्रकार विश्व की कुछ महान फिल्मों लेखक-निर्देशक की जोड़ियों द्वारा भी बनाई गई हैं। किन्तु इसके लिए दोनों में बहुत अच्छी आपसदारी होना आवश्यक है”<sup>5</sup>

किसी भी कृति के सिनेमाई रूपांतरण के समय उस कृति को आधार बनाकर पटकथा निर्माण में आनेवाली समस्याओं का अध्ययन करने से पहले यह जरूरी है कि हम पटकथा-लेखन की आवश्यकता, महत्ता एवं उसके सोपानों को अच्छी तरह से समझें। पटकथा के संबंध में सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि पटकथा ऐसी विधा या कहानी है जो फिल्म के माध्यम से दिखाई जाने के लिए लिखी जाती है। कह सकते हैं कि पटकथा साहित्यिक होने से बढ़कर दृश्य और श्रव्य होती है। पटकथा लेखक शब्दों की जगह उन बिंबों को लिखता है जो देखे जायेंगे, उन ध्वनियों को लिखता है जो सुनी जाएँगी। इसके साथ-साथ इसमें उन नाटकीय स्थितियों का वर्णन मिलता है जिनसे पाठक तादात्म्य स्थापित कर सके।

वस्तुतः पटकथा-लेखन एक कौशलपूर्ण कार्य है जो पटकथा लेखकों से विशेष कुशलता की मांग करती है। डॉ. सुशील सिद्धार्थ के अनुसार -

“फिल्म-लेखन में उत्सुक व्यक्ति को प्रारंभिक चरण में ही यह समझ लेना चाहिए कि इस क्षेत्र में सैद्धांतिक ज्ञान के साथ व्यावहारिक दक्षता का योग अत्यंत आवश्यक है। कारण यह है कि पाँच-दस पृष्ठ की कहानी या कल्पना को लंबी पटकथा में ढालने हेतु उसमें कतिपय बातें जोड़नी-घटानी पड़ती है। ऐसा करते समय परदा माध्यम के कई तत्वों को ध्यान में रखना पड़ता है। बजट, अभिनय, छायांकन, स्थान, वातावरण, दर्शकों की मानसिकता को ध्यान में रखना पड़ता है”<sup>6</sup>

बहरहाल, यदि हम साहित्यिक कृतियों के आधार पर बनने वाली फिल्मों की पटकथा की बात करें तो पटकथा-लेखक को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये मौलिक कथा के आधार पर लिखी जाने वाली पटकथा-लेखन की समस्या से इतर और बढ़कर है। साहित्यिक कृति के आधार पर पटकथा-लेखन की समस्या का समाधान इतना सरल नहीं है। ऐसा इस क्षेत्र में विशिष्ट अनुभव रखने वाले फिल्मकारों या पटकथा लेखकों के लिए भी कहा जा सकता है। ऐसा इसलिए क्योंकि प्रत्येक नई साहित्यिक कृति सिनेमाई रूपांतरण संबंधी नई समस्या लेकर आती है। इन समस्याओं का समाधान पूर्णतया पटकथा लेखक की योग्यता और कौशल पर निर्भर करता है। एक अच्छा और योग्य फिल्मकार पटकथा-लेखन के समय अवश्य मूल कृति के कृतिकार के संवेदनात्मक उद्देश्यों की रक्षा का प्रयास करता है। फिर भी इस महान उद्देश्य की प्राप्ति में महान से महान फिल्मकारों को भी कम ही सफलता मिल पाती है। सत्यजीत राय जैसे बड़े समर्थ और महान फिल्मकारों को भी ‘शतरंज के खिलाड़ी’ के निर्माण में इन्हीं समस्याओं और असफलताओं का सामना करना पड़ा। साहित्यिक कृतियों के आधार पर पटकथा-लेखन में कृति का अपना स्वरूप और चरित्र ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कहानी के आधार पर पटकथा-लेखन की अपनी भिन्न समस्याएँ हैं।

इस संबंध में सुप्रसिद्ध लेखक मनोहर श्याम जोशी लिखते हैं - “उपन्यास का रूपांतरण करते समय समस्या यह पैदा होती है कि उसमें बहुत ज्यादा सहायक पात्र, उपकथानक नजर आते हैं। कई बार कथानक का कालक्रम भी बहुत लंबा होता है, प्रवाह मंद रहता है। इसलिए जहाँ कहानी पर फिल्म बनाते समय कुछ जोड़ने की समस्या प्रस्तुत होती है वहाँ उपन्यास पर फिल्म बनाते समय बहुत कुछ काट देने की समस्या प्रस्तुत होती है। पटकथाकार को ऐसा सब कुछ काट देना पड़ता है जो कथा प्रवाह को शिथिल बनाता हो या कथानक की दृष्टि से अनावश्यक हो। जाहिर है इससे अक्सर स्वयं उपन्यासकार को और उसके प्रशंसकों को बहुत पीड़ा पहुँचती है। इसलिए उपन्यास का रूपांतरण करते समय अगर संभव हो तो उसके मूल लेखक को अपना सहयोगी बनाएँ और

उससे कहें कि सिनेमा की आवश्यकता के अनुरूप वह खुद ही काट-छांट कर दो उपन्यास में कहानी काफी इधर-उधर भटकती रहती है। पहले आप यह तय करें कि उसकी मुख्य कहानी का सीधा प्रवाह किस प्रकार है? उसी को प्रमुखता देते हुए पटकथा की रूपरेखा बनाएँ।<sup>7</sup>

इस संबंध में सिने-आलोचक विवेक दुबे लिखते हैं - “कहानी के आधार पर पटकथा लेखन में उपन्यास के आधार पर पटकथा लेखन से अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वस्तुतः दोनों में दो भिन्न प्रक्रियाओं को अपनाना पड़ता है। जहाँ कहानी में बहुत से तत्व जोड़ने पड़ते हैं वहाँ उपन्यास में बहुत निर्ममतापूर्वक बहुत-सी चीजों को निकालना पड़ता है। फिल्म की सीमित अवधि को ध्यान में रखकर केवल प्रतिनिधि घटनाओं को ही स्थान देना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त जहाँ उपन्यास में अनेक उपकथाएँ हो सकती हैं, बहुत से पात्र हो सकते हैं जिनका उपन्यासकार ने विस्तार से चित्रण किया है वहाँ पटकथा लेखक को केवल मुख्य कथा के दो-तीन प्रमुख पात्रों और प्रतिनिधि घटनाओं को ही पटकथा में स्थान देना चाहिए। ऐसा न होने पर फिल्म में बिखराव और एकान्विति की कमी का खतरा पैदा हो जाता है। उदाहरणार्थ जब हम ‘गोदान’ और ‘साहब, बीबी और गुलाम’ फिल्मों की तुलना करते हैं तो हमें इस बात का महत्व समझ में आता है। जहाँ ‘गोदान’ में मूल कृति की सभी घटनाओं, पात्रों आदि को समेटने का प्रयास दृष्टिगोचर होता है वहाँ ‘साहब, बीबी और गुलाम’ में प्रमुख घटनाओं, पात्रों आदि का बहुत सुंदर चयन किया गया है और उन्हीं पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। इससे इस फिल्म में एकान्विति और एकनिष्ठता के गुण आ गए हैं जबकि ‘गोदान’ में सर्वत्र बिखराव और एकनिष्ठता की कमी परिलक्षित होती है।”<sup>8</sup>

असल में, कहानी के आधार पर पटकथा लिखते समय प्रायः कहानी में बहुत-सी नई घटनाओं, संवादों और पात्रों आदि की कल्पना करनी पड़ती है क्योंकि पाँच-छः पृष्ठों की कहानी पर दो-ढाई घंटे की फिल्म का निर्माण किसी प्रकार भी संभव नहीं है। यही कारण है कि ‘शतरंज के खिलाड़ी’, ‘दो बैलों की कथा’, ‘तीसरी कसम’, ‘उसने कहा था’ और ‘तलाश’ जैसी कहानियों पर लिखी गई पटकथाओं में अनेक घटनाओं, पात्रों, गीतों एवं नृत्यों को जोड़ा गया। तब कहीं जाकर कहानी फिल्मानुकूल बन पाई। मूल कहानी में इस प्रकार के संशोधन-संवर्धन करते समय कठिनाई यह आती है कि कैसे मूल कृति की आत्मा को अक्षुण्ण भी रखा जाए, उसकी एकान्विति भी बनी रहे और साथ ही उसमें विस्तार भी हो जाए? नई घटनाओं की परिकल्पना करना अथवा दो-चार, नए पात्र जोड़ देने से इतनी समस्या नहीं आती जितनी इस बात से आती है कि कहानी का मूल उद्देश्य ही बदल दिया जाए जैसा कि

‘शतरंज के खिलाड़ी’ के संदर्भ में किया गया। ऐसे में कहानी की नए सिरे से पुनर्रचना करनी पड़ती है। जब कथा-लेखक और निर्देशक के अभिप्रेत बिल्कुल भिन्न हो जाते हैं, तो पटकथा-लेखन कोई सरल कार्य नहीं रहता। वह निर्देशक या पटकथा लेखक के लिए एक चुनौती बन जाता है। उसे ऐसी पटकथा लिखनी होती है जो कलात्मकता में मूल कहानी के समकक्ष ठहर सके किन्तु फिर भी उससे भिन्न हो। साथ ही मूल कृति में किए गए सब परिवर्तन तर्कसंगत और आवश्यक प्रतीत हों। स्पष्ट है कि यह कोई सरल कार्य नहीं है और विरले ही निर्देशक इसमें सफल हो पाते हैं। स्वयं सत्यजीत राय जैसे महान निर्देशक ‘शतरंज के खिलाड़ी’ को एक नया रूप देने में कहाँ तक सफल हो पाए यह विवाद का विषय है। हालाँकि यह सच है कि राय ने मूल कहानी में किए गए एक-एक परिवर्तन के ठोस कारण दिए हैं।

दरअसल सिनेमाई रूपांतरण के क्रम में कथा में परिवर्तन की आवश्यकता भी उस कथा से ही निकलती है। सत्यजीत राय ने ‘शतरंज के खिलाड़ी’ में जहाँ इतिहास बोध, कथा में व्याप्त संकेत, ब्यौरे, समकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ आदि के अनुरूप आवश्यक बदलाव किया तो ‘सद्गति’ बनाते वक्त इस छूट और बदलाव से काफी दूर ही रहे। ऐसा कथा की अपनी संरचना, स्वरूप और वस्तु के चलते ही हुआ। वस्तुतः माध्यम की भिन्नता के कारण ऐसे परिवर्तन स्वाभाविक हैं। लय, शैली, विषय-वस्तु और ब्यौरों को लेकर हर माध्यम की अपनी दृष्टि होती है। कहीं शास्त्रीय संरचना फिल्म के लिए आवश्यक हो जाती है या सादगी ही महत्वपूर्ण बनी रहती है। कहीं कथानक या प्लॉट इतना अनिवार्य होता है कि घटनाओं की क्रमबद्धता से बचा नहीं जा सकता और कहीं जितने ब्यौरे लिए जाते हैं, उससे कहीं अधिक छोड़ दिए जाते हैं। मूल कृति में गति इतनी महत्वपूर्ण नहीं होती, जितनी फिल्म में। फिल्म और साहित्य की रचना-प्रक्रिया पर विचार करते हुए खुद सत्यजीत राय कहते हैं - “मैं किसी कहानी या उपन्यास को उसके कुछ तत्वों की वजह से चुनता हूँ जो मुझे अपील करते हैं। पटकथा लिखने की प्रक्रिया में उसकी कथावस्तु सम्भवतः परिवर्तित की जाए लेकिन अधिकांश मूल तत्व सुरक्षित रखे जाएँगे।”<sup>9</sup>

इस प्रकार ‘शतरंज के खिलाड़ी’ में आवश्यक परिवर्तन करते हुए भी उसके मूल मर्म को सुरक्षित रखने में सफल सत्यजीत राय कृति के अन्यथाकरण या कृति के मूल अर्थ और मर्म के क्षय के पक्ष में नहीं हैं। पर माध्यम की अपनी विशिष्टता और स्वाधीन नियमों को महत्व देते हैं इसलिए कथा से फिल्म बनाते हुए वे अधिक से अधिक घनत्व लाने की अपनी युक्ति का प्रयोग करते हैं। कृति में शब्द ही सब कुछ होते हैं। फिल्म में आकृतियों का महत्व होता है। शब्दातीत संगीत ध्वनियाँ

किसी फिल्म में पात्रों और घटनाक्रमों का पुनःसृजन करने लगती है।

मृणाल पांडे के अनुसार -“भाव सम्प्रेषण के ऐसे वक्त में हर संवेदनशील दर्शक के लिए शब्द कतई गैरजरूरी हो जाते हैं और यहाँ वह उपन्यास की दुनिया से फिल्म की दुनिया में आ जाता है।”<sup>10</sup>

साहित्यिक कृतियों पर बनने वाली फिल्मों की दृष्टि से देखें तो कृति की फिल्म से तुलना की सीमा का एक पक्ष यह भी है कि रचनाकार वह लिखता है जो वह लिखना चाहता है जबकि पटकथा लेखक या फिल्मी लेखक वह लिखता है जो फिल्मकार उससे लिखवाना चाहता है। दरअसल कृति को आधार बनाकर फिल्म बनाने की प्रक्रिया में जहाँ यह फायदा है कि पटकथा के ढाँचे के लिए फिल्मकार को एक पकी-पकाई फिल्म मिल जाती है और एक कथाकृति में ऐसी सामग्री सहज ही मिल जाती है। लेकिन उस कृति के संवेदनात्मक उद्देश्यों की रक्षा को ध्यान में रखते हुए पटकथा-लेखन अति जटिल है। यही कारण है कि कई फिल्मकार इस दिशा में हाथ आजमाने से परहेज बरतते हैं। दूसरी ओर कुछ ऐसे फिल्मकार भी हैं जो कथा को आधार रूप में ग्रहण तो करते हैं लेकिन उसमें परिवर्तन अपनी इच्छा, आवश्यकता और दृष्टिकोण के अनुरूप बड़ी निर्ममता से करते हैं, फिर उस कृति के संवेदनात्मक उद्देश्यों की रक्षा हो या न हो। कोई फिल्मकार कृति के मूड और वातावरण पर बल देते हैं तो कोई अपने जीवन-दर्शन को व्यक्त करने के लिए साहित्यिक कृति को आधार रूप में तो लेते हैं लेकिन उसका ट्रीटमेंट अपनी सुविधानुसार करते हैं। कुछ ऐसे प्रयोगधर्मी फिल्मकार भी हुए हैं जिन्होंने पटकथा की आवश्यकता को पूरी तरह खारिज करने की बात की और सीधे-सीधे कथा को या दृश्यों को फिल्माने का दावा किया। हालाँकि पटकथा को सर्वाधिक महत्व देने वाले और उस पर सर्वाधिक मेहनत करने वाले फिल्मकार सत्यजीत राय ने इस दावे को सिरे से खारिज किया है और माना है कि मानस पटल पर ही सही, पटकथा के बिना फिल्म का निर्माण संभव नहीं है।

साहित्यिक कृतियों के सिनेमाई रूपांतरण में जो सबसे बड़ी समस्या आती है वह यह कि कृति के आधार पर पटकथा का निर्माण किया जाए और यथासंभव उस कृति के संवेदनात्मक उद्देश्यों की रक्षा की जा सके। तमाम प्रयासों के बावजूद इस दिशा में कई महान फिल्मकारों को भी विफलता का ही सामना करना पड़ा है जबकि कुछ उल्लेखनीय और सफलतम फिल्मों का निर्माण भी संभव हो सका है। असल में माध्यम की भिन्नता के कारण साहित्यिक कृतियों के पुनर्सृजन के क्रम में, उसकी पटकथा लेखन के दौरान कई परिवर्तन करने पड़ते हैं। इन परिवर्तनों के संबंध में प्रो. सुधीश पचौरी का मानना है कि -“लिखित कथा-साहित्य जब भी मंच पर या फिल्म टेलीविजन में प्रस्तुत किया जाएगा, उसमें

नए माध्यमों की आंतरिक संरचनात्मक जरूरतों के हिसाब से कुछ अनिवार्य संशोधन करने ही होंगे। इन संशोधनों में लिखित कृति किसी अर्थ में भी ‘निगेट’ यानी नष्ट नहीं होगी। इन प्रस्तुतियों के बाद वह वैसी ही मौजूद रह सकती है जैसी कि पहले थी।”<sup>11</sup>

कहा जा सकता है कि पटकथा लेखन एक चुनौतीपूर्ण काम है जो विशेष कौशल की अपेक्षा रखता है, खासकर तब जब आप किसी साहित्यिक रचना के आधार पर पटकथा लिख रहे हों। ऐसे समय में यह आवश्यक हो जाता है कि फिल्म माध्यम की पूरी समझ रखने के साथ ही पटकथाकार साहित्यिक संवेदनाओं से सुपरिचित हो। यह इतना आसान भी नहीं है। यही कारण है कि महान से महान साहित्यिक कृतियों पर बनी फ़िल्में भी अपनी कमजोर पटकथा के कारण प्रायः विफल ही सिद्ध हुई हैं।

### सन्दर्भ सूची

1. मनोहर श्याम जोशी, पटकथा लेखन : एक परिचय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 17
2. माधुरी, मई 21, 1965
3. महेन्द्र मित्तल, भारतीय चलचित्र, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, 1975, पृ. 61
4. महेन्द्र मित्तल, भारतीय चलचित्र, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, 1975, पृ. 63
5. विवेक दुबे, हिंदी साहित्य और सिनेमा, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 10
6. डॉ. रमेशचंद्र त्रिपाठी, डॉ. पवन अग्रवाल (संपा.), मीडिया लेखन, भरत प्रकाशन, लखनऊ, पृ. 110
7. मनोहर श्याम जोशी, पटकथा लेखन : एक परिचय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 25
8. विवेक दुबे, हिंदी साहित्य और सिनेमा, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 18
9. मृत्युंजय (सम्पादक), सिनेमा के सौ बरस, शिल्पायन प्रकाशन, 2008, पृ. 351
10. मृत्युंजय (सम्पादक), सिनेमा के सौ बरस, शिल्पायन प्रकाशन, 2008, पृ. 352
11. सुधीश पचौरी, जनसंचार माध्यम, भाषा और साहित्य, श्री नटराज प्रकाशन, 2002, पृ. 62



सहायक प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली  
पता : यू-89, परिवार अपार्टमेंट, अपर ग्राउंड फ्लोर, सुभाष पार्क,  
उत्तम नगर, दिल्ली – 110059 मो. - 8585956742, 8920116822  
ई-मेल : vijayvijaymishra@gmail.com

## दिलीप कुमार : सिनेमा संस्कृति के नायक

प्रो. रमा

“दिलीप कुमार वास्तव में अभिनय की पाठशाला थे। उनकी फिल्मों से अभिनय की बारीकी सीखी जा सकती है और यह भी सीखा जा सकता है कि कैसे तमाम स्टार के बीच अपनी अलग छवि बनायी जा सकती है। अपने समय के सभी कलाकारों से बिना प्रभावित हुए वह अपनी अनोखी अभिनय शैली के कारण लोकप्रिय हुए। ठहर-ठहर बोलने के उनके अंदाज़ ने दर्शकों को आकर्षित किया। हिंदी सिनेमा में उनके विशेष योगदान के लिए उन्हें आठ बार सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का फिल्मफेयर अवॉर्ड्स मिला।”

पचास का दशक हिंदी सिनेमा के लिए निर्णायक है। इस दशक में हिंदी सिनेमा को तीन ऐसे महानायक मिले जिन्होंने हिंदी सिनेमा को तीन धाराओं में विभाजित कर दिया। राजकपूर, देवानंद और दिलीप कुमार हिंदी सिनेमा को वैश्विक स्तर पर प्रसारित करने में अहम भूमिका निभाने में सफल हुए। दिलीप कुमार ट्रेजडी किंग बने तो राजकपूर ने आम जनता की आवाज बुलंद की। देवानंद अपने निराले अंदाज़ में दर्शकों को लुभाने में मशहूर हुए। दिलीप कुमार को लम्बी उम्र मिली। बीसवीं सदी के अंतिम दशक तक वह फिल्मों में काम करते रहे। हाल में उनके जीवन का सौ वर्ष पूरा हुआ। अपने जीवन के लगभग एक शतक पूरा करने के बाद वह इस दुनिया से विदा हुए।

दिलीप कुमार का जीवन हिंदी सिनेमा के रुपहले परदे पर इतिहास रचता हुआ आगे बढ़ता है। हिंदी सिनेमा की तस्वीर उस दिन बदल गई जब एक एक नौजवान परदे पर अवतरित हुआ। यह हिंदी सिनेमा का स्वर्ण युग था। भारतीय जन जीवन देश की आज़ादी के लिए संघर्ष कर रहा था और सिनेमा उसकी भावनाओं को आंदोलित करने में अहम भूमिका निभा रहा था। आज़ादी से ठीक पहले दिलीप कुमार की पहली फिल्म ‘ज्वार भाटा’(1944) में प्रदर्शित हुई। हलाकि इससे उन्हें कोई सफलता नहीं मिली लेकिन दबे ज़ुबान उनके अभिनय की चर्चा हुई। प्रतिमा, मिलन, जुगनू, घर की इज्जत, शहीद, अनोखा प्यार, मेला, नदिया के पार जैसी फिल्मों से उन्हें पहचान मिलनी शुरू हो गई। इनमें से अधिकतर फ़िल्में सफल रहीं। शहीद से उन्हें पुख्ता पहचान मिली लेकिन ‘स्टार’ का तमगा उन्हें फिल्म अंदाज़ से मिला। अंदाज़ हिंदी सिनेमा का शुभ नाम है। इस नाम से जितनी भी फ़िल्में बनी सभी ने सफलता का प्रतिमान स्थापित किया। राज कपूर के साथ दिलीप कुमार की जोड़ी सफल रही जो कुछ फिल्मों में सामने आयी।

1960 में प्रदर्शित ‘मुगले-ए-आज़म’ ने दिलीप कुमार को हिंदी सिनेमा का महानायक बना दिया। अकबर के बेटे सलीम की भूमिका में वे ना केवल युवा दिलों की धड़कन बने बल्कि तत्कालीन निर्देशकों को पहली पसंद भी बन गए। ‘मुगले आज़म’ पर बात करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि इस फिल्म ने हिंदी फिल्म निर्माण की प्रक्रिया को बदलकर रख दिया। अकबर की छवि को लगभग चुनौती देते हुए के. आसिफ ने बड़े परदे पर बड़ा कमाल किया। पिता और पुत्र के बीच प्रेम के कारण पनपी टकराहट को के. आसिफ़, बहुत मार्मिकता और जीवंतता से प्रस्तुत किया है। जिस समय यह फिल्म प्रदर्शित हुई उस



दौर में स्त्री का खुलेआम प्रेम करना लगभग गुनाह माना जाता है। इस फिल्म में एक स्त्री का अपने प्रेम को खुलेआम स्वीकार करना और "प्यार किया तो डरना क्या" कहकर झूमकर गाना अनूठा और नया था। इस गीत को दृश्य में बांधने में दो साल लग गए। इस फिल्म में स्त्री स्वाभिमान के साथ अकबर के जीवन से जुड़ी नई घटना का प्रदर्शन भी अनोखा है। इस गीत के साथ ही "मोहे पनघट पे नंदलाल छोड़ गयो रे", "मुहब्बत की झूठी कहानी पे रोए", "ऐ मुहब्बत जिंदाबाद" बहुत चर्चित हुआ। हिंदी सिनेमा के इतिहास में के. आसिफ पहले ऐसे निर्देशक थे जिनके लिए सिनेमा जुनून था। उन्हें इसी फिल्म के लिए विशेष रूप से जाना जाता है। कहा जाता है कि उन्होंने फिल्म निर्माण की कोई खास ट्रेनिंग नहीं ली। 'मुगल-ए-आज़म' को बनाने में कुल चौदह वर्ष लग गए। पहली फिल्म 'फूल' 1945 में आयी जो कम चर्चित हुई। 'मुगल-ए-आज़म' 1960 में प्रदर्शित हुई और मील का पत्थर साबित हुई। कहा जाता है कि इस फिल्म को बनाने में आसिफ बर्बाद हो गए। जिस दौर में फिल्में 10-15 लाख में बन जाती थी, उस दौर में मुगले आज़म को बनाने में डेढ़ करोड़ रुपए लग गए। इस फिल्म से जुड़ी अनंत कहानियाँ हैं जिसमें कुछ बहुत मशहूर भी हैं। आसिफ का नौशाद से पैसे देकर गाने लिखने को कहना और नौशाद का मना करना, फिर मान जाना, गुलाम अली का फिल्म के लिए पहली बार गाने को तैयार होना आदि। यह फिल्म हिंदी ही नहीं बल्कि भारतीय सिनेमा के इतिहास की पहली ऐसी फिल्म थी जिसमें हजारों हाथी, घोड़ों और सैनिकों का प्रयोग हुआ। सलीम और अकबर के बीच युद्ध के दृश्य में वास्तविकता दिखाने के लिए जयपुर रेजिमेंट के सैनिकों का भी इस्तेमाल किया गया। आसिफ ने तत्कालीन भारतीय रक्षामंत्री कृष्णा मेनन से बाकायदा इसके लिए कानूनी स्वीकृति भी थी। 'प्यार किया तो डरना क्या' गीत को शूट करने में दस लाख से भी अधिक रुपए खर्च हुए। 'मुगल-ए-आज़म' के संवादों ने फिल्म की लोकप्रियता को नया आयाम दिया।

इससे पहले दिलीप कुमार ट्रेजडी किंग के नाम से मशहूर थे। उनकी फिल्मों में भारतीय जीवन की त्रासद कथा को गहराई से अभिव्यक्ति मिली। आम आदमी के जीवन की बुनियादी समस्या, स्त्री जीवन के संघर्ष, प्रेम आदि विषयों को लेकर बनी उनकी फिल्में बहुत पसंद की गईं। जोगन, बाबुल, दीदार, तराना, दाग, अमर, इंसानियत,

देवदास, नया दौर, यहूदी, मधुमती जैसी फिल्मों ने दिलीप कुमार की ज़िन्दगी और कैरियर दोनों को बदल दिया। इनमें से अधिकतर फिल्मों ने अपार सफलता प्राप्त की। बताया जाता है कि कुछ लगातार त्रासद पटकथा वाली फिल्में करने से उनके जीवन पर भी उसका असर हुआ और वह व्यक्तिगत जीवन में अवसाद से घिर गए। मनोवैज्ञानिकों की सलाह पर उन्होंने कुछ समय तक ऐसी फिल्मों ने परहेज रखा और बाद में ऐसी फिल्मों में भी काम करना शुरू किया जिसमें तनाव और अवसाद के दृश्य कम हों।

दिलीप कुमार वास्तव में अभिनय की पाठशाला थे। उनकी फिल्मों से अभिनय की बारीकी सीखी जा सकती है और यह भी सीखा जा सकता है कि कैसे तमाम स्टार के बीच अपनी अलग छवि बनायी जा सकती है। अपने समय के सभी कलाकारों से बिना प्रभावित हुए वह अपनी अनोखी अभिनय शैली के कारण लोकप्रिय हुए। ठहर-ठहर बोलने के उनके अंदाज़ ने दर्शकों को आकर्षित किया। हिंदी सिनेमा में उनके विशेष योगदान के लिए उन्हें आठ बार सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का फिल्मफेयर अवॉर्ड्स मिला। इसके साथ लाइफटाइम अचीवमेंट अवॉर्ड, नेशनल फिल्म अवॉर्ड, पद्मभूषण, पद्म विभूषण, दादासाहेब फाल्के अवॉर्ड के साथ ही पाकिस्तान सरकार द्वारा सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'निशान-ए-पकिस्तान' भी शामिल हैं। वास्तव में दिलीप कुमार मनुष्य के रूप में सांझी-सांस्कृतिक विरासत के मिशाल थे। उनकी फिल्मों में जाति-धर्म की बंदिशें टूट जाती हैं। उनकी सौम्य-सुशील छवि ने भारतीय सिनेमा में उन्हें सम्मान तो दिलाया ही लोकप्रिय भी बनाया।

दिलीप कुमार को भारत और पाकिस्तान दोनों मुल्कों में अपार प्यार मिला। एक कलाकार के तौर पर उनकी लोकप्रियता दोनों देशों में भरपूर थी। दिलीप साहब ने केवल अभिनय नहीं किया बल्कि हिंदी सिनेमा को अभिनय करना भी सिखाया। अमिताभ बच्चन से लेकर शाहरुख खान तक उनके दीवाने रहे। हिंदी सिनेमा में उनके योगदान के लिए अमिताभ बच्चन का कहना है-“जब भी भारतीय सिनेमा का इतिहास लिखा जाएगा वो हमेशा दिलीप कुमार से पहले और दिलीप कुमार के बाद लिखा जाएगा” यह सच भी है दिलीप कुमार ने तीन पीढ़ियों के साथ काम किया और तीनों पारियों में उन्होंने

अभिनय का नया स्वाद दिया। आज़ादी से पहले जहाँ उन्हें ट्रेजडी किंग कहा गया वही सत्तर के दशक में उन्हें आम आदमी की पीड़ा और प्रेम के लिए सामाजिक संघर्ष करते हुए देखा गया। अस्सी के दशक में जब सिनेमा में देशभक्ति, सामाजिकता और राजनीति की परिभाषाएँ बदल रही थी तब दिलीप साहब की लोकप्रियता कम नहीं हुई। नब्बे के दशक के प्रारंभ में ही 1981 में 'क्रांति' फिल्म में एक क्रान्तिकारी की भूमिका निभायी। मनोज कुमार की मल्टीस्टार इस फिल्म में उन्होंने जानदार अभिनय किया। यह वह दौर था जब अमिताभ बच्चन अपनी एक्शन शैली से युवाओं के दिलों पर राज कर रहे थे। कई संवेदनशील अभिनेताओं का कैरियर दाव पर लग गया था, ऐसे में दिलीप कुमार बुलंद रहे। क्रांति मनोज कुमार की सबसे महत्वाकांक्षी फिल्म थी। अंग्रेज़ी सत्ता की क्रूरता के खिलाफ़ मनोज कुमार ने मनोरंजन, देशभक्ति, प्रेम, एक्शन का ऐसा मेलोड्रामा रचा जिसे आज भी मील का पत्थर है। दिलीप कुमार इस फिल्म में अपने उसी अंदाज़ में सामने आए जो जिसके लिए वह जाने जाते हैं। इस दौर की फिल्मों में यह अवश्य हुआ कि उनकी अभिनय शैली का तेवर बदल गया। शारीरिक हाव-भाव की गरिमा और वैभव वह रहा लेकिन समय के अनुसार अभिनय की अभिव्यक्ति में परिवर्तन हुआ। क्रांति के बाद दिलीप कुमार ने कुछ ऐसी फिल्मों में काम किया जिसे केवल उन्हीं के लिए जाना जाता है। नायक की भूमिका बदल गयी। सत्तर की उम्र में वह मुख्य नायक तो नहीं बन सकते थे लिहाज़ा पिता, दादा या अन्य वरिष्ठ भूमिकाओं में उन्हें परदे पर बराबर देखा गया। उन्हें लेकर फिल्म बनाने वाले निर्देशकों के अभिनय के कद का सम्मान करते हुए निर्णायक भूमिकाओं के लिए ही चुना। फिल्म 'शक्ति' में वह अमिताभ बच्चन के पिता के रूप में सामने आए। विख्यात निर्देशक रमेश सिप्पी द्वारा निर्मित इस फिल्म की पटकथा उस दौर की सबसे चर्चित जोड़ी सलीम-जावेद ने लिखी। फिल्म में दिलीप कुमार एक ईमानदार पुलिस आफिसर हैं जिसके लिए अपना कानून सबसे ऊपर है। अमिताभ बच्चन की फिल्मों का जो मूल होता है वही इस फिल्म में भी था। पिता से किसी कारण तनाव, उसके कारण अपराध की दुनिया में प्रवेश फिर ईमानदार पुलिस पिता का अपराधी बेटे से मुठभेड़ और पश्चाताप आदि। इस फिल्म में दिलीप कुमार और अमिताभ को एक साथ लेने का सबसे बड़ा कारण था

दर्शकों के बीच दो बड़े अभिनेताओं की टकराहट का रोमांच पैदा करना था। दिलीप साहब के चाहने वाले अभी बने हुए थे और लोगों में अमिताभ की फिल्मों के प्रति दीवानगी उस दौर में सफलता की गारंटी मानी जाती थी। दोनों महानायकों को एक दूसरे के साथ टकराते हुए परदे पर उतार कर निर्देशक ने कुछ जरूर सोचा होगा। हलाकि फिल्म बहुत बड़ी सफलता प्राप्त नहीं कर सकी लेकिन दिलीप कुमार और अमिताभ की जोड़ी ने दर्शकों का मनोरंजन अवश्य किया। इस फिल्म के औसत सफल होने का एक कारण यह भी था कि अमिताभ बच्चन को अंतिम दृश्य में मरते हुए देखना दर्शकों को नागवार लगा। उसके बाद 'मशाल', 'कर्मा' और 'सौदागर' जैसी फिल्मों में दिलीप साहब ने एकदम नए कलाकारों के साथ किया। 'मशाल' और 'कर्मा' में वही अपराध कथा का मेलोड्रामा देखने को मिलता है। सौदागर में उनकी मुठभेड़ राजकुमार के साथ होती है। सुभाष घई ने इन दोनों को एक साथ लेकर बड़ा रिस्क लिया। इस फिल्म निर्माण की अनेक कथाएँ हैं लेकिन महत्वपूर्ण यह है कि इस फिल्म ने सफलता के सारे रिकार्ड तोड़ दिए। दिलीप कुमार ने हर दौर में यह साबित किया कि उन्हें किसी से कभी खतरा नहीं रहा। अपने निराले अंदाज़ में वह फिल्मों में आते रहे। कभी दिग्गज अभिनेताओं के साथ तो कभी एकदम नए अभिनेताओं के साथ।

वास्तव में दिलीप कुमार की जीवन यात्रा ऐसे नायक की है जिन्होंने सिनेमा के माध्यम से भारतीय संस्कृति की विभिन्न छवियों को पर्दे पर जीवंत बनाया। सिनेमा में उनकी उपस्थिति ऐसे कद्दावर आभिनेता की रही जिसे सदियों तक याद रखा जाएगा। उनकी फिल्में कभी हँसाती तो कभी रुलाती रहेंगी। उसी हंसी और आंसू के बीच दिलीप साहब हमारे जीवन का हिस्सा बने रहेंगे और हमारे बाद हमारी आने वाली पीढ़ियों के।



प्राचार्या, हंसराज कॉलेज, महात्मा हंसराज मार्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली  
110007 मो. 9891172389

## महान साहित्यकार मार्टिन विक्रमसिंह

दि० रसांगी नानायक्कार

“विक्रमसिंह की आरंभिक शिक्षा गाँव के एक गुरु जी के घर में सन् 1895 में हुई थी। उस समय गाँवों में स्कूल की सुविधा नहीं थी। सभी स्कूल अंग्रेजों के शासन में शहरी इलाकों में थे। इसलिए गाँव के सभी बच्चे गुरु जी के घर जाया करते थे। दो कमरे और एक छोटा हॉल सहित उस घर में बाहर से चंदोवा बना हुआ था और वहीं बच्चों का स्कूल था। गुरु जी का नाम ‘अन्दिरिस’ था। वे लूंगी पहने हुए थे और हमेशा कंधे पे भी एक लूंगी शॉल की तरह रखी होती थी। विक्रमसिंह को हमेशा ‘अन्दिरिस गुरु’ का यह पहनावा अपने पिता जी की याद दिलाता था। गुरु जी मन लगा के बच्चों को पढ़ाया करते थे और प्यार से हर बात समझाया करते थे। इसलिए कभी गुरु का घर, बच्चों को पराया महसूस नहीं हुआ था। गुरुजी की तनख्वाह बच्चों के माँ-बाप, पैसों से नहीं बल्कि राशन-सामान से दिया करते थे। इसलिए हर महीने में दाल, चावल सब्जियाँ गुरुजी को खरीदने की जरूरत नहीं पड़ती थी। यहाँ तक कि कपड़े भी उनको इनाम में मिल रहे थे।”

### जीवन

श्रीलंका के दक्षिण में गाल्ला जिले के कुछ दस मील दूरी पर, समुन्दर के किनारे एक सुन्दर गाँव है जिसे ‘कोम्गला’ नाम से जाना जाता है। उसके एक तरफ अनंत सागर है और दूसरी तरफ सुन्दर झील है। समुन्दर के किनारे से रेल का रास्ता और बस गाड़ियों का मुख्य रास्ता जाता है। उस जगह में एक बड़ा चट्टान है जो सोलह-सत्रह हजार साल पुराना है, और डायनामाइट से भी फोड़ा नहीं जा सका। यह उस गाँव की खास जगह है। गाँव वालों ने वहाँ एक मंदिर बनवाया था और रोज शाम को दिया जलाया करते हैं। गाँव के सभी लोगों के दुःख सुख से ये पत्थर वाला मंदिर परिचित था। गाँव में एक और मन्दिर भी है, जहाँ भंते जी लोग रहते हैं। गाँव वाले हर बुद्ध पूर्णिमा के दिन उस मंदिर में जाया



करते हैं और हर शुभ काम का शुभारंभ होने से पहले बड़े भंते को अवगत कराते हैं।

उसी गाँव में ‘लमाहेवागे डॉन बस्तियन विक्रमसिंह’ के घर में 29 मई सन 1890 में एक बच्चे का जन्म हुआ था, जिसे आज पूरी दुनिया, एक ‘महान साहित्यकार मार्टिन विक्रमसिंह’ के नाम से जानती है।

उनका परिवार एक मध्यवर्गीय परिवार था और उस समय का समाज पितृसत्तात्मक था। ‘बारी-बारी से नौ बेटियों को जन्म देने के बाद जब विक्रमसिंह की माँ ‘मागाल्ला बालापिटिया लियानागे नॉचिहमी’ ने विक्रमसिंह को जन्म दिया तो पूरे परिवार वालों के चेहरे पे फूल खिल गए थे। खुशी से सब कहने लगे, ‘एक लूंगी(सरोम) घर पे आ गया!’। विक्रमसिंह के पिता ‘लमाहेवागे डॉन बस्तियन विक्रमसिंह’ गाँव के एक जाने-माने आफ्रिसर थे। चौड़ा माथा और नुकीला नाक के साथ-साथ उम्र से बचे हुए बाल पीछे करके बंधे हुए थे। गाँव के सब उनकी होशियारी की इज्जत करते थे। गाँव में कोई भी चोरी हो या नाइंसाफ़ी, पकड़ने में वे तेज थे। घर के लोगों के प्रति उसका स्नेह भी उतना ही ज्यादा था, जितना गाँव वालों के प्रति था। पर वे कभी घरवालों के सामने अपनी भावनाओं को नहीं दिखाते थे। अपने संतानों से कुछ कहना हो तो सीधे न कह कर उनकी माँ से कहलवाते थे। सब बच्चे उनसे डरते थे। माँ उनकी इज्जत करती थी। विक्रमसिंह अपनी जीवनी

‘उपन्दा सिटा’ में अपनी पारिवारिक स्थिति को दर्शाते हुए कहते हैं; ‘माँ, पिताजी के सामने एक छोटी सी कुर्सी पर बैठ जाती थी। जब पिताजी आते हुए देख माँ अपनी बड़ी कुर्सी को छोड़ के तुरंत ज़मीन से दो तीन बित छोटी एक कुर्सी में बैठ जाती थी। घर के सभी लोग माँ का अनुसरण करते थे। यहीं आदत उस जमाने में श्री लंका के मध्यवर्ग के सभी परिवारों में थी, तो हर घर में बड़ी कुर्सी और छोटी कुर्सियाँ देखी जा सकती थी।’<sup>2</sup>

विक्रमसिंह की आरंभिक शिक्षा गाँव के एक गुरु जी के घर में सन् 1895 में हुई थी। उस समय गाँवों में स्कूल की सुविधा नहीं थी। सभी स्कूल अंग्रेजों के शासन में शहरी इलाकों में थे। इसलिए गाँव के सभी बच्चे गुरु जी के घर जाया करते थे। दो कमरे और एक छोटा हॉल सहित उस घर में बाहर से चंदोवा बना हुआ था और वहीं बच्चों का स्कूल था। गुरु जी का नाम ‘अन्दिरिस’ था। वे लूंगी पहने हुए थे और हमेशा कंधे पे भी एक लूंगी शॉल की तरह रखी हुई थी। विक्रमसिंह को हमेशा ‘अन्दिरिस गुरु’ का यह पहनावा अपने पिता जी की याद दिलाता था। गुरु भी मन लगा के बच्चों को पढ़ाया करते थे और प्यार से हर बात समझाया करते थे। इसलिए कभी गुरु का घर, बच्चों को पराया महसूस नहीं हुआ था। गुरुजी की तनख्वाह बच्चों के माँ-बाप, पैसों से नहीं बल्कि राशन-सामान से दिया करते थे। इसलिए हर महीने में दाल, चावल सब्जियाँ गुरुजी को खरीदने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी। यहाँ तक कि कपड़े भी उनको इनाम में मिल रहे थे।

विक्रमसिंह का जीवन भी मुंशी प्रेमचंद के जीवन से मिलता-जुलता नज़र आता था। प्रेमचंद अपने माँ-बाप के चार संतानों में एक अकेला बेटा था और विक्रमसिंह अपने माँ-बाप के दस संतानों में एक अकेला बेटा था। दोनों के बचपन में भी ज़्यादा फ़र्क नहीं था। जब प्रेमचंद की उम्र आठ साल के करीब हुई, तब माँ चल बसी और जब विक्रमसिंह की उम्र भी आठ साल के करीब हुई, तब उनके पिता दुनिया से विदा हुए। प्रेमचंद का जीवन आर्थिक संकटों में गुज़रा था और विक्रमसिंह का भी। प्रेमचंद की तरह विक्रमसिंह के बचपन में भी कुछ शरारतें देखी जा सकती हैं। विक्रमसिंह के उपन्यास पढ़ने पर इन अनुभवों की सौंधी सी महक नज़र आती थी।

उस समय यानि कि सन् 1890, पूरा श्री लंका अंग्रेजों के अधीन हो चुका था। शहरी इलाकों में अंग्रेजों ने तब तक अपना धर्म प्रचार-प्रसार के लिए स्कूल स्थापित किया था। वहाँ अंग्रेजी भाषा अनिवार्य रूप से पढ़ायी जाती थी और साथ-साथ उनका धर्म भी। बहुत से सिंहली लोग उनका अनुसरण करना अपना सम्मान समझते थे। इसलिए गाँव के सिंहली लोगों में, जिनको अंग्रेजी नहीं आती थी और शहर के अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों में कुछ भेद-भाव शुरू हो गया था। गाँव के पैसे वाले अपने-आप को बड़ा दिखाने के लिए बच्चों का दाखिला

शहर के बड़े स्कूलों में करवाते थे। इस माहौल में विक्रमसिंह के परिवार वाले अपने इकलौते बेटे की आरंभिक शिक्षा, सन् 1897 को मंदिर के भंते से करवाते थे, ताकि धर्म और संस्कृति विक्रमसिंह से दूर न हो जाए। मंदिर के अधीन ऐसे स्कूलों को ‘पिरिवेना’ कहा जाता है। वहाँ विक्रमसिंह ने चौथी वीं कक्षा तक ‘धीरानन्द’ भंते से अंग्रेजी सीखी थी। पिरिवेना से उसको देवनागरी अक्षर में लिखा गया ‘हितोपदेश’ ग्रन्थ का अध्ययन करने का मौका भी मिल गया था, जबकि गाँववाले उस हद तक नहीं पढ़ते थे। विक्रमसिंह छोटी उम्र में ही इन सबों से पारंगत हो गये थे। इसलिए विक्रमसिंह को अपने पर कुछ अभिमान-सा महसूस होने लगा था। वह अपनी जीवनी में कहते हैं; ‘जब मैं पिरिवेना से पढ़ाई खत्म करके घर आ गया, तब मेरा मन सिंहलीपन के अभिमान से भर गया था। इसलिए कि इतनी छोटी उम्र में मैंने ये सब पढ़ लिया था। जो लोग सिंहलियों का इतिहास ग्रन्थ पढ़ पाता था गाँव में उनको बड़ा विद्वान माना जाता था।’<sup>3</sup> पिताजी ने विक्रमसिंह का दाखिला सन् 1900 को ‘गाल्ला’ शहर के ‘बॉनविस्टा कॉलेज’ की दूसरी कक्षा में करवाया था। पिताजी चाहते थे कि समाज के साथ-साथ बेटा भी आगे बढ़े। बॉनविस्टा सुन्दर पहाड़, ‘रूमस्सला’ के नीचे स्थापित है। यह एक पौराणिक पहाड़ है। कहा जाता है कि जब लक्ष्मण की दवाई के लिए हनुमान जी संजीवनी बूटी सहित हिमालय पहाड़ अपने कंधे पे उठाके लाये थे तब उसका एक हिस्सा इस जगह पर गिरा था। यह वही रूमस्सला पहाड़ है। आज भी वहाँ अयुर्वेदिक जड़ी बूटियाँ पायी जाती हैं। कभी-कभी इस जंगल में विक्रमसिंह अपने साथियों के साथ जाया करते थे। लेकिन यहाँ के माहौल में उनका मन नहीं लग रहा था। विक्रमसिंह कहते हैं कि जब वह गाल्ला बॉनविस्टा में पढ़ रहा था, सिर्फ पढ़ाई ही नहीं अंग्रेजों की संस्कृति तथा उनके सोच-विचार के बारे में भी बहुत कुछ सीखने को मिला था।<sup>4</sup>

इस बीच में पिताजी की नियुक्ति आफ़िसर पद पर हुआ, तब उन्होंने अपने नाम से ‘लमाहेवागे’ हटा के केवल ‘विक्रमसिंह’ को अपनाया। शायद इसलिए कि वे भी समय और समाज के साथ चलना चाहते थे। उस समय अंग्रेजी शासन के दबाव से गाँव के बहुत लोगों ने अपना नाम बदलवाया था। इन नामों के सही उच्चारण न कर पाने से आम लोगों में मज़ाक बन गये थे। मिसाल के तौर पर ‘ब्रूस’ को बुरुस बोलने लगा, कथोरिन को कतरिना आदि।

विक्रमसिंह को शहरी जीवन पसंद नहीं था। गाँव के लड़कों के साथ शरारतें करने में जो आनंद मिल रहा था वह सब शहर आके मुमकिन नहीं था। शहर का जीवन कुछ अलग सा महसूस होने लगा था। वे हर शनिवार को जब बड़े पापा अपने काम के लिए शहर आते, तो उनके साथ घर जाया करते थे और वहीं छुट्टियों के दो दिन यानि शनिवार और रविवार गाँव के लड़कों के साथ खेल-कूद में लगे रहते थे।

विक्रमसिंह के शहर आने के एक-दो साल के बाद सन् 1902 उनके पिता जी को दिल का दौरा पड़ा और उनकी पिताजी की मौत हो गयी। तब विक्रमसिंह के स्कूल फ़ीस जमा करने की हैसियत उनकी माँ को न होने के कारण उनको स्कूल छोड़ना पड़ा। बॉनविस्टा में उन्होंने कक्षा तीन तक अंग्रेजी पढ़ी थी और आर्थिक संकट के कारण गाँव के नज़दीक अहंगामा के एक स्कूल में आ गये। अहंगामा स्कूल से पाली और संस्कृत भाषाओं का ज्ञान उनको 'कोमाला वीरानंद' भंते ने दिया था। 'उसी समय उसका पहला साहित्य ग्रन्थ 'बालोपदेशया' का प्रकाशन भी हुआ था', पर उसके बारे में कोई ज्ञानकारी उपलब्ध नहीं है।

विक्रमसिंह में सिर्फ़ लेखन की कुशलता ही नहीं बल्कि चित्रकारिता भी दिखाई देती थी। उसके फूफ़ा का एक बेटा था जो चित्र और मूर्ति बनाने में माहिर था। लोग कहते थे बुद्धा या किसी महात्मा की मूर्ति बना के जब मूर्ति की आँख रखने की रस्म अदा करें, तब उसी समय मूर्तिकार पागल हो जाता है। वही हालत फूफ़ा के बेटे के साथ भी हुई थी। इसलिए विक्रमसिंह को चित्रकार बनने से उसकी दीदी ने रोक लिया था। वे चित्रकारी में इतने माहिर थे कि किसी चित्र को देख कर हुब-हू वही बना सकते थे।

विक्रमसिंह का मन पढ़ाई में नहीं लग रहा था। स्कूल जाने के बहाने वे दोस्तों के साथ खेलते, कभी समुन्द्र के किनारे सीपियाँ इकट्ठा करते, कभी जंगलों में, जाया करते। जंगली पेड़-पौधे और जीव-जन्तु के बारे में जानकारी ढूँढ निकालना उनको बहुत पसंद थी। उस समय की बातों पर ध्यान देते हुए बाद में विक्रमसिंह का बेटा 'डॉक्टर रंग विक्रमसिंह कहता है, कि 'मेरे पिता जी ही श्री लंका के सबसे पहला परिस्थितिविज्ञानशास्त्री हैं।'<sup>5</sup> उनकी इस बात का सत्य विक्रमसिंह द्वारा लिखी गयी उनकी वैज्ञानिक किताबों से स्पष्ट होता है।

सन् 1906 में उन्होंने स्कूल जाना छोड़ दिया था। गाँव के गुंडे-लुटेरों की संगति में आने के डर से माँ और बहन ने किशोर विक्रमसिंह को कोलम्बो की एक दुकान में लिपिक का काम सीखने के लिए भेज दिया, जहाँ मुख्य लिपिक उसके रिश्तेदार भाई था। तब उसकी उम्र सत्रह साल की थी। उस काल-अवधि में उनमें अधिकतर अंग्रेजी किताबें पढ़ने की रूचि थी। उन किताबों में बहुत महँगी वैज्ञानिक किताबें और धर्म से सम्बंधित किताबें भी थीं। 'रइडर हागार्ड' के उपन्यास उनको आकर्षित किया था। औरतों के बारे में अतिशयोक्ति भरा वर्णन लिखने वाले जोर्ज रेनोल्ड के उपन्यास भी उन्होंने बेहद दिलचस्पी से पढ़े थे। इस समय श्रीलंका के मशहूर उपन्यासकर 'पियादासा सिरिसेना' के 'जयतिस्सा व रोसलिन', और 'भाग्यशाली विवाह', 'ए. साइमन सिल्वा' के 'मीना' आदि उपन्यास भी उन्हें पढ़ने को मिले, जो प्रेम कहानियाँ थीं। वह सिर्फ़ अपनी भाषा की किताबें ही नहीं बल्कि दूसरी भाषाओं से अंग्रेजी में अनुदित किताबें भी पढ़ने में रूचि रखते थे। इनका असर विक्रमसिंह के

आरंभिक उपन्यासों में दिखने को मिलता है।

दुकान से जितनी तनख्वाह मिल रही थी, वे सरे पैसे किताबें खरीदने में ही लग जाते थे। जीव-जंतु के बारे में लिखे गये शोध की किताबें पढ़ना और खाली समय में समुन्द्र के किनारे समुंदरी जीव-जंतु के बारे में खोजना भी उनका शौक था। अंग्रेजी उपन्यास पढ़ने से उनका अंग्रेजी ज्ञान और भी तेज़ हो गया था और उन्होंने उद्विकास सिद्धांत से सम्बंधित किताबें भी पढ़ना शुरू किया। इसके बाद समाज-शास्त्र की किताबें, संकलन की किताबें भी उन्होंने पढ़ी थीं। पढ़ने के प्रति विक्रमसिंह की गहरी रूचि, उनको महँगी पड़ी। क्योंकि कभी-कभी दुकान के सेवकों को दिए गये छोटे-छोटे खर्च वे किताब में लिखना भूल जाते थे तो दुकान के साप्ताहिक खता रिपोर्ट बनाते-बनाते अपने जेब से पाँच छः हजार यों ही देना पड़ता था। इस बीच में विक्रमसिंह की माँ का देहांत हो गया। बाद में उनको पता चला कि घर में खाने-पीने का ठीक प्रबंध न होने के कारण ही माँ की असामयिक मृत्यु हो गयी थी। पहले जब वे माँ के लिए कुछ पैसे भेजते थे, तब बहन ने यह कहते हुए मना किया कि 'पैसा घर में मत भेजो, अपने खाते में जमा करो' इसी वजह से उन्होंने घर में पैसा नहीं भेजे। बाद में उनको पता चला कि माँ के कहने पर ही बहन ने ऐसा किया था। उस बात पर विक्रमसिंह बहुत पछताये।

इस बीच में सन् 1915 में श्री लंका में सिंहली और मुस्लिम लोगों के बीच एक दंग फैल गया। इससे सिंहली लोग ही नहीं मुस्लिम लोग भी मारे गये। तो विक्रमसिंह कोलंबो से नौकरी छोड़ कर घर गये। फिर वे श्रीलंका के उत्तर में 'त्रिकोमाली' में 'कोरनेलिस सिल्वा' की दुकान में कुछ समय तक लिपिक का काम करते थे। वे नौकरी से तंग आ कर कोलंबो आये थे और पत्रकार के रूप में 'लेक हाउस' संस्थान में काम करने लगे। इस बीच में उनके कई उपन्यास भी प्रकाशित हो गये थे। उन्होंने जीव की उत्पत्ति के बारे में और मानव विकास के बारे में भी कई किताबें पढ़ी थी और उनके बारे में दिनामिना, सिलुमिना आदि पत्रों में छपवाया था। कुछ दिनों के बाद उन्होंने दिनामिना, सिलुमिना, लंकादीप, आदि पत्रों के संपादक की हैसियत से लेकहाउस में ही काम करने लगे।

इस बीच परिवार से विवाह करने के लिए उन पर दबाव आये, तो उन्होंने अपनी विवाह के लिए प्रस्ताव ढूँढने से इनकार करते हुए दीदी को चिट्ठी लिखी थी। 'मुझे शादी करने का मन नहीं है। मेरे लिए शादी का प्रस्ताव मत करना।'<sup>6</sup> अंत में जब वे दिनामिना पत्र समूह में बतौर पत्रकार काम करने लगे, तब उनका यह संकल्प बदल गया। जब विक्रमसिंह लिपिक का काम कर रहे थे, तब गाँव की एक लड़की से उसकी मुलाकात हो गयी, जो विक्रमसिंह को बहुत पसंद आई थी। लेकिन यह बात उन्होंने सब से छुपायी थी। जब भी कोई उसे शादी के बारे में पूछता तब वे कहते कि 'मुझे अभी शादी करने का मन नहीं है'। पर जब वे हर दो हफ्ते में घर जाते तो चोरी-छिपे उस लड़की को देखने जाया करते। यह बात जान कर

दीदी और चचेरे भाई डार्लिन ने उनसे पूछा कि 'अगर शादी नहीं करनी है तो देखने क्यों जाते'। वह इसलिए पूछा क्योंकि जवान लड़की को देखने जाना श्रीलंका की संस्कृति में उचित नहीं समझा जाता और पराया लड़के का आना-जाना उस लड़की की इज्जत का सवाल बन जाता। फलस्वरूप विक्रमसिंह को शादी करना पड़ा। वे कहते थे; "हाँ, प्रेमा को देखने मैं गया था। अब मुझे समझ में आ गया कि बिना शादी किये उसको भूलना ठीक नहीं है। तो मुझे शादी मंजूर थी। लेकिन मुझे अभी भी ऐसा लगता है कि शादी करना एक तरह से परेशानियों का बोझ उठाने जैसा है।" इन्हीं बातों से कुछ दिन बाद यानि कि 30 नवंबर सन् 1925 को उनकी शादी 'कताकलुवे प्रेमा द सिल्वा' से हो गयी। शादी के तीन महीने के बाद mt lavinia में एक घर किराये पे ले लिया। क्योंकि जिस पत्र समूह में वे काम करते थे, वहाँ के मालिक को विक्रमसिंह के गाँव जाने से जो नुकसान होता था और उसको रोकने के लिए विक्रमसिंह की तनखाह बढ़ा दी गयी और उनको कोलोंबो के आस-पास ही रहने के लिए विनती की थी। शादी से विक्रमसिंह छः संतानों के बाप बन गये। सन् 1976 के जुलाई महीने में श्रीलंका के महान साहित्यकार ने हमेशा-हमेशा के लिए अपनी आखें मूँद लीं। उनकी जन्म तिथि पर श्री लंका के साहित्य समाज द्वारा अनेक साहित्यिक कार्यक्रम किये जाते हैं।

### रचना संसार

पत्र समूह में काम करते-करते वे उपन्यास, कहानी अदि लिखना भी नहीं भूले थे। दूसरे उपन्यासकारों की तरह विक्रमसिंह ने भी अपने जीवन की कड़वी अनुभूतियों को अपने साहित्यिक ग्रंथों का मूल विषय बनाया था। विक्रमसिंह का जीवन भी बहुत परेशानियों से गुजरा हुआ था। किताबों को अपनी प्रेमिका बनाकर, उन्होंने इन सारे कष्टों को भूलने का प्रयास किया था। जिस समाज में विक्रमसिंह रह रहे थे, उस समाज के लोगों की सोच उनके सुख-दुःख से विक्रमसिंह भी प्रेमचंद की तरह परिचित थे। उनके हर उपन्यास में जो माहौल दिखाया गया, विक्रमसिंह ने उन्हें अपनी आँखों से देखा था और महसूस भी किया। उनके गाँव में वह पुरानी चट्टान, पुराने मंदिर अदि के दृश्य उनके कई उपन्यासों में प्रतिबिंबित होते हैं। जैसा कि उनके उपन्यास 'गम्पेरलिया' के आरम्भ में जब लेखक माहौल का विवरण देता है तब यह दृश्य नज़र आता है और साथ-साथ बुद्ध धर्म भी।

श्रीलंका में बहुतेरे सिंहली लोग बौद्ध धर्म को मानते हैं। व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कार बौद्ध जन मंदिर से सम्बंधित करते हैं। जैसे कि नवजात शिशु का जन्म होते ही कुंडली बनवाना, नामकरण संस्कार, यह आज भी शायद ही कुछ शहरी इलाकों में ज्योतिषी पंडित से कराते हैं, या फिर गाँवों के मंदिर में बड़े भंते ही करते हैं। अन्नप्राशन संस्कार, मुंडन संस्कार, कर्णबिधन संस्कार, विद्यारम्भ संस्कार, विवाह संस्कार, अंत्येष्टि संस्कार ये संस्कार मंदिर के सहारे के बिना आज भी

मुमकिन नहीं। घर पे जब किसी की मृत्यु हो जाती है, बौद्ध जन कुछ भंते को घर में बुलवा के मरे हुए की आत्मा के लिए शान्ति मांगते हैं। यह आज भी श्रीलंका के बौद्ध लोगों में देखा जा सकता है। इसके अलावा हर बुद्ध पूर्णिमा के दिन मंदिर जाना पीढ़ी दर पीढ़ी की आदत बन चुकी है। कोई भी शुभ काम का आरंभ मंदिर के सहारे के बिना नहीं होता। गाँव के लोगों का वही सामाजिक आचरण विक्रमसिंह ने अपने घर में भी देखा था और समाज में भी। उन्हीं अनुभूतियों को उन्होंने अपने उपन्यासों में फिर से जीवित करना नहीं भूले थे। उनके आरंभिक उपन्यास 'लीला'(1914) से लेकर अंतिम उपन्यास 'भव तरणय'(1973) तक अंतर्गत कथानक में कहीं-न-कहीं मंदिर से सम्बन्ध दिखाई देता है।

विक्रमसिंह ने युवाओं को ही नहीं बल्कि बाल साहित्य की पुस्तकें भी लिखी थी। परियों की कहानियाँ, वीर कहानियाँ, जासूसी कहानियाँ, उन्हींने स्वयं बाल चिंतन को अपना कर पाठकों को भी इन्हीं अनुभूतियों का आभास करवाया था। 'मडोल दूव' उनका प्रसिद्ध बाल साहित्य का उपन्यास है। कई भाषाओं में उस पुस्तक का अनुवाद हो चुका था। बच्चों में ही नहीं अपितु बड़े लोग भी उसका आनंद लेते हैं। इसके अलावा विक्रमसिंह की बाल अवधि में की गयी कुछ कर्तूतों को लेकर एक और बाल पुस्तक 'अपे गमा' यानि 'हमारा गाँव' सन् 1940 को लिखी गयी। इसमें छोटी-छोटी कहानियाँ हैं जो विक्रमसिंह के बाल-काल से सम्बंधित है। गाँव की माटी की खुशबू, समुन्दर की आवाज़, जंगली फलों को भीतर तक महसूस करते हुए उन्हींने अपना बचपन गुजारा था। वही अनिभूतियाँ उन बाल उपन्यासों में भी देखी जा सकती हैं।

उनके उपन्यास पूरी दुनिया में इसलिए प्रसिद्ध हुए कि 'लेस्टर जेम्स पेरिस', 'तिस्सा अबेसेकारा' अदि प्रसिद्ध फ़िल्म निर्देशकों ने विक्रमसिंह के कुछ उपन्यासों पर आधारित फ़िल्में बनायी थी। जैसे; गम्पेरलिया, कलियुगया, युगान्तया, विरागया, मडोल दूवा अदि विक्रमसिंह के उपन्यासों पर आधारित फ़िल्में हैं। वे फ़िल्में विश्व सम्मान से पुरस्कृत की गयी थी। 'सिदत रोहना' जैसे प्रसिद्ध टेलिविज़न अध्यक्ष ने विक्रमसिंह के उपन्यासों का तिर नाटक बनाया था। इसलिए उनके उपन्यास श्रव्य, दृश्य माध्यम से भी पाठक के सामने आते हैं।

विक्रमसिंह की लिखी गयी साहित्यिक कृतियों के बारे में 'सक्वाला' पत्रिका में इस तरह विवरण दिया गया कि; "विक्रमसिंह ने बाल साहित्य पर 4 ग्रन्थ लिखे थे, जैव विज्ञान के बारे में उनके 6 ग्रन्थ मिलते हैं, 14 उपन्यास हैं, 11 कहानियाँ हैं, 4 नाटक हैं, 'तेरी गी' नाम से बौद्ध धर्म से सम्बंधित 4 काव्य ग्रन्थ भी है, 23 आलोचनात्मक ग्रन्थ और अलग-अलग विषयों पर लिखी गयी 4 पुस्तकें भी मिलते हैं।

इसके अलावा उनकी साहित्यिक कृतियों को 'साहित्यिक चक्रवर्ती पुरस्कार, 'राष्ट्रपति साहित्यिक पुरस्कार' और इंग्लैण्ड से O.B.E पुरस्कार भी प्राप्त हुए थे।<sup>8</sup>

विक्रमसिंह ने साहित्य क्षेत्र में कई आयामों से अपनी भूमिका निभायी थी।

### पत्रकार

विक्रमसिंह की ख्याति उपन्यास क्षेत्र में ही नहीं बल्कि पत्रकारिता के क्षेत्र में भी देखने को मिलती है। पत्रकार बनने से पहले उन्होंने दिनामिना में कई लेख छपवाए थे। एक बार उनके जैव विज्ञान के लेख से बहुत ही लोगों के तर्कों का खंडन किया। इस बीच दिनामिना पत्र समूह के संपादक 'एन. एच. जिनादास' को शिक्षा मंत्रालय में अनुवादक की हैसियत से नौकरी मिल गयी, तब उस जगह पूरा करने के लिए विक्रमसिंह को 'लेक हॉउस' संस्थान के अंतर्गत दिनामिना पत्र समूह के बतौर पत्र संपादक के पद पर नियुक्त किया गया। उस समय उनकी उम्र लगभग छब्बीस साल की थी। दिनामिना का काम उनको बहुत पसंद आया। इस दौरान उपन्यास और कहानियाँ लिखना भी उन्होंने नहीं छोड़ा।

भले ही विक्रमसिंह की पढ़ाई पाँचवीं कक्षा के ऊपर नहीं हुई, फिर भी बहुत सारी किताबें पढ़ने से उनका ज्ञान भंडार बढ़ गया था। यहाँ तक कि दूसरों की लिखी हुई कहानियाँ भी सुधारने का ज्ञान उनमें मौजूद था। एक बार 'स्वदेश मित्राया' पत्रिका के सम्पादक डी. डब. विक्रमरुचि ने किसी नये लेखक को उस पत्र कार्यालय में काम पर लगाना चाहा तो उन्होंने एक नये लेखक को ले लिया। उस नये लेखक ने वहाँ छपवाने के लिए कहानी दी। उस कहानी को सुधारने हेतु विक्रमरुचि ने, उसे विक्रमसिंह को दिया। दफ्तर के सभी लोग उस कहानी को छपवाने से मना कर रहे थे। लेकिन विक्रमसिंह ने उसको सुधार के दिया ही नहीं पत्रिका में उसकी कहानी छपवायी भी। कहानी भेजने वाला और कोई नहीं बल्कि वर्तमान युग में प्रसिद्ध पत्रकार हेमापाल मुनिदास था।

विक्रमरुचि के कहने पर विक्रमसिंह उसके 'स्वदेश मित्र' समाचारपत्र में 'अदालत की खबर' नाम से साप्ताहिक लेख लिखते थे। विक्रमरुचि ने अपने घर में विक्रमसिंह को रहने भी दिया था। इतना ही नहीं विक्रमसिंह को उसका संपादक भी बना दिया। लेकिन विक्रमसिंह को जब पता चला कि विक्रमरुचि 'दिनामिना' के साथ दुश्मनी का भाव रखता था, तब विक्रमसिंह ने उस समाचारपत्र में लेख लिखना बंद किया और दूसरी जगह चले गये।

इस बीच विक्रमसिंह ने सिंहाला साहित्य का भी अध्ययन किया। उपनिषद् जैसे दर्शन शास्त्रों से सम्बंधित पुस्तकों का भी अध्ययन किया। इस समय उसको 'सिलुमिना' नामक साप्ताहिक समाचारपत्र में भी काम करने का अवसर मिला। उस समय उन्हें अपने परिवार को संभालने में भी कष्ट का सामना करना पड़ रहा था।

सिलुमिना में विक्रमसिंह के लिखे हुए लेख बहुत मशहूर हो गए। उस समय द्वितीय विश्व युद्ध चल रहा था। चाइना के 'चियां काई शैक' का

शासन और उसकी मदद करने वाले अमेरिका की आलोचना करते हुए विक्रमसिंह द्वारा लिखे गए लेख को देख कर बड़े-बड़े नेता भी उस समय डर गए थे। ऐसा इसलिए कि चाइना की क्रांति के बारे में कुछ चरमदीद गवाही भी उसमें पेश की गयी थी, जो सन् 1960 के 'आम चुनाव' से पहले छपी गयी थी। इसके बाद सिलुमिना के संपादक की विनती पर चुनाव खतम होने तक उन्होंने राजतन्त्र के बारे में लेख लिखना बंद किया था। उसकी लेखनी देख एक रिश्तेदार ने उनको यह उपदेश दिया;

“अगर तुम 'मेग्साई' पुरस्कार की उम्मीद करते हो तो अमेरिका के और ईसाई गिरिजाघरों के खिलाफ लिखना बंद कर दो। हाँ, तुम ने चीन के बारे में जो कुछ लिखा वह सच हो सकता है, पर 'मेग्साई' पुरस्कार, अमेरिकन पैसों वाला पुरस्कार है। वह ईसाई पादरियों के अधिकार में है।”

तब विक्रमसिंह ने उसका जवाब देते हुए कहा;

“मैं किसी पुरस्कार की उम्मीद से न कोई लेख लिखता और न किताबें। जब मैं चीन में था तब कुछ लोगों से बहस भी हो गयी थी। जो मुझे सही लगता था, मैं वही बोल देता। गलत बातों की आलोचना करने में भी मैं नहीं डरता।”

विक्रमसिंह को दिनामिना में पत्रकार का जीवन बहुत पसंद आया। कितना भी थका-मंदा क्यों न हो उन्होंने दिनामिना का काम अच्छे से संभाला। एक बार जब रविन्द्रनाथ टैगोर श्रीलंका आये थे, तब विक्रमसिंह ने सोये बिना, पूरा लेख तैयार किया और दूसरे दिन घर गए। इस तरह काम के प्रति विक्रमसिंह का लगाव देख कर पत्र-कार्यालय के सभी, उनका आदर-सम्मान करने लगे। लेकिन जब से विक्रमसिंह का लगाव बंधनेसाहित्यिक पुस्तकें लिखने में बढ़ने लगा था, तब से वे दिनामिना को छोड़ने की बात सोच रहे थे। लेकिन उनके एक दोस्त कुलातिलाका के कहने पर वे दिनामिना के साथ-साथ 'लक्ष्मीणा' समाचारपत्र में भी काम करने लगे। वहाँ भी उसको संपादक का काम मिला।

पत्रिकाओं की भाषा के बारे में कई विद्वानों ने कई मत प्रकट किये थे, पर विक्रमसिंह अक्सर कहा करते थे कि पत्रिकाओं की भाषा तात्कालिक होनी चाहिए। विक्रमसिंह हमेशा यह सोचते थे कि समाचारपत्र में जिस भाषा का प्रयोग होगा, वह लोगों के दिलों को छूने में समर्थ होनी चाहिए। समाचारपत्र में जो भी सन्देश दिया जाता था, वह लोगों को प्रभावित करना चाहिए, ऐसे में प्रयुक्त भाषा को सुन्दर होने से कोई सरोकार नहीं होना चाहिए। इसलिए विक्रमसिंह के कई लेखों में जगह-जगह पर अंग्रेजी शब्दों का भी इस्तेमाल किया गया।<sup>10</sup>

### कहानीकार

कहानीकार की हैसियत से भी विक्रमसिंह की ख्याति महत्वपूर्ण है। 'जिस समय कहानी के बारे में लोगों को उतना ज्ञान नहीं था, उस

समय कहानी की सही पहचान विक्रमसिंह ने ही दी थी। भले ही कुमारतुंग मुनिदासा, डब. ए. सिल्वा, पियादासा सिरिसेना, हेमपाला मुनिदासा आदि लेखकों की लिखी हुई कहानियाँ मिलती थी, फिर भी वे मात्र कहानियाँ ही थीं। पर कहानी में यथार्थ के साथ-साथ विश्वसनीयता लाने में विक्रमसिंह ही समर्थ हुए थे। पाठक को उपदेश देते हुए समाज को सुधार करनेवाली कहानी लिखने की कला विक्रमसिंह ने ही समाज को दिया था।<sup>11</sup> जब वे कई नौकरियाँ कर रहे थे, तब कई देशों की कहानी, उपन्यास ही नहीं अध्यापनिक पुस्तकें भी पढ़ा करते थे। शायद इन सारी अनुभूतियों से ही उनको सार्थक कहानी रचने की शक्ति मिली होगी। ऐसा माना जाता है कि विक्रमसिंह ने पाँच सौ के करीब कहानियाँ लिखी थीं। उनमें एक सौ आठ पुस्तकें ग्रन्थबद्ध हो गयी थीं। उनकी ज्यादातर कहानियाँ बौद्ध धर्म के उपदेशों को प्रस्तुत करते हुए लोगों को प्रेरणा प्रदान करती है। कुछ कहानियों का विवरण इस प्रकार है।

### हिस्कबला (खोपड़ी)

यह विक्रमसिंह की उपदेशात्मक कहानी है। यहाँ एक औरत है जिसका नाम अनुला है। वह अपनी खूबसूरती पर अधिक घमंड करती है। वह लोकधर्मता नहीं समझती है। यानी एक न एक दिन यह खूबसूरत जिस्म नष्ट हो जाता है और बाल गिर जाते हैं। अंत में ये पाँच तत्त्व वापस प्रकृति में विलीन हो कर मृत्यु हो जाती है। यही धर्मता बिना समझे वह अपनी खूबसूरती का प्रदर्शन करती रहती है। एक दिन आयुर्वेदिक छात्रों की लायी हुई खोपड़ी को देख कर वह जीवन के यथार्थ को समझने लगती है। वह सोचती थी, कि एक न एक दिन उसका शरीर भी इस तरह नष्ट हो जाएगा। उसे जीवन की निस्सारता का पता चलता है। इस कहानी द्वारा विक्रमसिंह समाज के धन-दौलत या रूप के लिए घमंड करनेवाले बहुतेरे लोगों को उसकी निस्सारता दिखाते हैं और उनको यथार्थ की ओर चलने की प्रेरणा देते हैं।

### उपासकम्मा (भक्ति भरी स्त्री)

यह भी विक्रमसिंह की एक कहानी है जो बौद्ध धर्म के उपदेशों पर लिखी गयी है। समाज के लोगों को सही रास्ता दिखाना विक्रमसिंह का मुख्य लक्ष्य है। हालाँकि 'उपासकम्मा' हर बुद्ध पूर्णिमा को मंदिर जाके पूजा पाठ करती है, शील का पालन करती है और समाधि में लग जाती है, फिर भी वह बहुत पाखंडी है। तृष्णा से भरी वह कभी मोक्ष के बारे में नहीं सोचती। बस उसकी शील-श्रद्धा, मात्र दिखावा है। घर के कबर्ड में नए नए कपड़े रखे हुए हैं, पर न वह ये कपड़े पहनती है और न किसी को देती। वह हमेशा फटे-पुराने कपड़े ही पहना करती है। वह इतनी कंजूस है कि बीमार होने के बावजूद भी घर का हिसाब-किताब रखती है। कंजूसी, लालच, से भरी 'उपासकम्मा' की भूमिका से विक्रमसिंह समाज की वास्तविकता, जो आज भी मौजूद है, पाठकों के सामने लाते हैं और अपनी लेखनी द्वारा समाज को सुधारने का प्रयास करते हैं।

### मेटि कलाया(माटी का घड़ा)

इस कहानी द्वारा विक्रमसिंह समाज के ढोंगी संन्यासी लोगों पर प्रहार करते हैं। यह कहानी भी तत्कालीन समाज पर लागू है। आज के समाज में भी संन्यासी लोग, लोगों के सामने बड़ी बड़ी बातें तो करते हैं लेकिन उनके दिल काम, तृष्णा, लालचीपन से भरे हुए हैं। चाहे वे बौद्ध भिक्षु हों या हिन्दू, जीवन की निस्सारता पर भाषण देते हैं, वे स्वयं उसका पालन नहीं करते।

'मेटी कलाया' एक मंदिर की कहानी है। बड़े भंते, लोगों के सामने बड़े-बड़े भाषण देते हैं और उपदेश देते हैं, लेकिन स्वयं उन पर नहीं चलते। एक दिन मंदिर में उनका काम करने वाला छोटा लड़का पानी लाने जाता है और वहाँ उसके हाथ से माटी का घड़ा टूट जाता है। इससे भंते को बहुत गुस्सा आता है और वह उस बालक को बेरहमी से मारता है। समाज के सामने गुस्से पर काबू रखने का भाषण देने वाला भंते, स्वयं अपना गुस्सा काबू में नहीं रखता।

विक्रमसिंह की बहुत सी कहानियाँ, जैसे 'मुदियांसे मामा', 'बाबू का वैसाखी दिया', 'सोने की मूर्ति', 'भगवान बुद्ध के अवशेष के लिए लड़ाई' अदि बौद्ध धर्म के साथ मिला कर समाज को सुधारने हेतु लिखी गयी है। बाद में विक्रमसिंह की संतान ने उनकी कई कहानियाँ छपवायी थी।

जिस तरह विक्रमसिंह की कहानियों में समाज सुधार और अन्याय के प्रति प्रहार दिखाई देते हैं, उसी तरह मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में भी समाज सुधार और अन्याय के प्रति प्रहार दिखाई देते हैं। ठाकुर का कुँआ, कफ़न आदि कहानियों से मुंशी प्रेमचंद ने भी वही किया था।

विक्रमसिंह की 108 कहानियाँ मिलती हैं। इनमें से कुछ निम्नलिखित है।

सन् 1924 गेहनियक (औरत)

सन् 1927 मगुल गेदर (शादी)

सन् 1936 पौकारयाटा गल गेसीमा (गुनाहगार की सज़ा)

सन् 1942 अपे वित्ति (हमारी खबर)

सन् 1945 हन्दा सक्की कीम (चाँद की गवाह)

सन् 1947 मागे कथाव (मेरी कहानी)

सन् 1949 बिल्ल सहा अपूरू मुहुना(शिकार और अजूबा चहरा)

सन् 1951 वहाल्लू (गुलाम)

सन् 1955 कथा अहुरा (कहानी संग्रह)

सन् 2012 रणपिलिमाया (सोने की मूर्ति)

### उपन्यासकार

साहित्य के क्षेत्र में विक्रमसिंह के जीवन में उपन्यासकार की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती है। क्योंकि जीवन के आरंभिक समय



में वे लिपिक और व्यापार के मुनीम के रूप में काम करते थे। लेकिन फिर भी किताबें पढ़ना उनके जीवन का एक हिस्सा बना हुआ था। वे अपनी जीवनी 'उपन दा सिटा' में बताते हैं कि वे हर शनिवार को मशहूर उपन्यासकार डब. ए. सिल्वा के साथ उपन्यास के बारे में विचार-विमर्श करते थे। सिल्वा की नज़र में हागार्ड, होल्कन, सर वोल्टर स्कॉट अदि बड़े उपन्यासकार हैं फिर भी विक्रमसिंह उन उपन्यासकारों को नहीं मानते थे।

मुंशी प्रेमचंद की तरह मार्टिन विक्रमसिंह भी सिंहली साहित्य के महान साहित्यकार हैं। विक्रमसिंह के कुल चौदह उपन्यास हैं। मुंशी प्रेमचंद ने भी गोदान तक कुल चौदह उपन्यास लिखे हैं। दोनों समकालीन हैं और उनके उपन्यासों में भी बहुत समानता गोचर होती है। जिस तरह प्रेमचंद के गोदान, कायाकल्प अदि उपन्यासों में विधवा विवाह देखा जा सकता है, ठीक उसी तरह विक्रमसिंह के करुवाला गदरा, गम्पेरलिया अदि उपन्यासों में विधवा विवाह का वर्णन मिलता है।

प्रेमचंद के उपन्यास गोदान में समाज का परिवर्तन दिखता है। जब गोबर शहर से बड़ा आदमी बन कर गाँव आता है, तब उसको ज़मींदारों द्वारा किये जाने वाला अन्याय दिखाई देता है। गोबर के पिता ज़मींदारों के अधीन दास बनकर रहते हैं, लेकिन गोबर से इसकी दासता सही नहीं जाती। वह इसके विरुद्ध काम करने लगता है। इस तरह का समाज परिवर्तन विक्रमसिंह के उपन्यासों में भी नज़र आता है। गम्पेरलिया के पियाल और नंदा अपने माँ-बाप के सामंती समाज संस्था को भूल कर नए पूंजीवादी समाज में प्रवेश करते हैं और उनके बच्चे भी अंग्रेजी पढ़े-लिखे उच्च वर्ग के सोच-विचार में जीवन यापन करते हैं।

मुंशी प्रेमचंद बनारस के रहने वाले थे और उनके सेवासदन, रंगभूमि जैसे कई उपन्यास बनारस के माहौल को लेकर लिखे गये थे, उसी तरह विक्रमसिंह भी कोग्गाला गाँव के रहने वाले थे। उनके भी कई उपन्यासों में उस गाँव के वातावरण पर समाज का असर पड़ गया है।

प्रेमचंद ने भी वरदान जैसे ऐतिहासिक उपन्यास लिखा था और विक्रमसिंह ने भी उन्माद चित्रा, रोहिणी जैसे ऐतिहासिक सत्य कहानियों से अपने उपन्यासों को चित्रित किया था।

इस प्रकार दोनों उपन्यासकारों के उपन्यासों में कुछ समानताएँ ही नहीं बल्कि कुछ असमानताएँ भी दिखाई देती हैं। प्रेमचंद के सारे उपन्यास नौजवान और बड़े लोगों के लिए लिखे गए थे। लेकिन मार्टिन विक्रमसिंह के बाल उपन्यास 'मडोल दूवा' पढ़ने से बड़े लोग भी बच्चों की दुनिया में पहुँच जाते हैं। श्रीलंकीय समाज में बाल विवाह के बारे में कोई भी चर्चा देखने को नहीं मिलता, लेकिन बाल विवाहों का वर्णन प्रेमचंद के उपन्यासों में दिखने को मिलता है। प्रेमचंद ने उस समय के भारतीय समाज को अपने उपन्यासों द्वारा दिखाया था और विक्रमसिंह ने भी उस समय के श्रीलंकीय समाज को। श्रीलंका में भारत से बहुत ही छोटा देश होने के कारण किसान और महाजन की समस्याओं के बारे में

चर्चा नहीं होती, परन्तु प्रेमचंद के कुछ उपन्यासों का मुख्य विषय किसान समस्या है। कहने का आशय यह है कि दोनों उपन्यासकारों के उपन्यासों में समानता और असमानता दिखाई देती हैं। फिर उपन्यासकार के रूप में दोनों लेखकों ने समाज की दुर्बलता सामने लाये और सुधारवादी चिंतन लाने का प्रयास भी।

#### उनके उपन्यास;

लीला	(1914)	मडोल दूवा	(1947)
सोमा	(1922)	गम्पेरलिया	(1944)
अङ्गनी	(1923)	कलियुगया	(1957)
शीता	(1923)	युगांतया	(1949)
मिरिंगुवा	(1925)	विरागया	(1956)
रोहिणी	(1929)	करुवाला गेदरा(अँधेरा घर)	(1963)
उन्माद चित्रा	(1929)	भाव तरणया	(1973)

इस तरह महान साहित्यकार, सिंहली साहित्य के पिता मार्टिन विक्रमसिंह के जीवन और उनकी साहित्यिक संसार का इस तरह अवलोकन कर सकते हैं।

#### सन्दर्भ सूची

1. मार्टिन विक्रमसिंह, 'उपन्दा सिटा'(जन्म से ले कर), पृष्ठ 18, सरसा प्रकाशन, राजगिरिया, उन्नीसवीं संस्करण 2017
2. वही, पृष्ठ 17
3. वही, पृष्ठ 40
4. वही, पृष्ठ 95
5. <https://www.lifile.lk/2018/09/15/15-martin-wikramasinghe.facts>
6. वही, पृष्ठ 231
7. वही, पृष्ठ 279
8. <https://m.facebook.com/199033650727826/photos/>
9. मार्टिन विक्रमसिंह, 'उपन्दा सिटा'(जन्म से ले कर), पृष्ठ 404, सरसा प्रकाशन, राजगिरिया, उन्नीसवीं संस्करण 2017
10. <https://www.lifile.lk/2018/01/06/06-1-the-great-writer-of-sri-lanka-martin-wickramasinghe/>
11. [http://akalankaed.blogspot.com/2014/03/blog-post\\_18.html?m=1](http://akalankaed.blogspot.com/2014/03/blog-post_18.html?m=1)



शोध छात्रा, हिंदी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी 221005

## हिंदी कथा साहित्य के अभ्युदय में प्रवासी महिला कथाकारों का योगदान

डॉ. प्रियदर्शिनी दुबे

“प्रवासी महिला साहित्यकारों के साहित्य में स्त्रियों के चौखट से बाहर निकलने के पश्चात वर्चस्ववादी मानसिकता तथा भारतीय एवं पाश्चात्य मूल्यों की टकराहट के उपरांत भी स्त्री अपने मानव मूल्यों की तलाश में संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। इस साहित्य ने उत्तर-आधुनिकता के संदर्भ में वृद्धा विमर्श, स्त्री विमर्श, पुरुष विमर्श तथा मूल रूप से प्रवासी-विमर्श के रूप में एक महत्वपूर्ण स्थान बनाया है। भारतीय और पाश्चात्य समाज की संस्कृति, परिवेश, भाषा एवं परंपरा का मनोविज्ञान तथा मानवीय-संवेदना, मानव जीवन की सहजता और असहजता के साथ ही घात और प्रतिघातों को भी दर्शाया गया है।”

प्रवास काल की अवधि में प्रवासी महिला कथाकारों ने विदेशों में निवास कर रहे भारतवासियों के जीवन को बड़ी सूक्ष्मता से देखा और परखा है। जो प्रवासी भारतीय विदेशों में निवास कर रहे हैं, उनमें अधिकांश ने कठोर परिश्रम से ही धन अर्जित किया है जिसके कारण उनके पास धन, ऐश्वर्य और सुविधाओं का अभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है। परंतु यह भी सत्य है कि वह बेगानी धरती पर अंजाना जीवन व्यतीत करने के लिए विवश होते हैं। अपनी सामाजिक, पारिवारिक, नैतिक स्थिति के बारे में उन्होंने जो भी लिखा है वो वस्तुतः उनका भोगा हुआ कटु यथार्थ है। अतः उनके साहित्य पर दृष्टिपात करने पर देश से बाहर विदेशी धरती पर घट रही घटनाओं का कुछ काल्पनिक और वास्तविक रूप समझने का अवसर मिलता है। विदेशों में निवास कर रहे प्रवासी भारतीयों का अंजान धरती पर जीवन सरल नहीं है,

अपितु वह इसके लिए बहुत बड़ा मूल्य भी चुका रहे हैं। क्योंकि उनकी अपने देश की संस्कृति, संस्कार, परंपराएँ और भाषा जैसे आदर्शों को अपने मन में रखकर दूसरे देश की नैतिकता, संस्कृति और परंपराओं के निर्वहन की विवशता होती है। द्रष्टव्य की यह स्थिति सहज नहीं, भौतिक सुख के बावजूद उनको मानसिक स्तर पर टूटने बिखरने का दंश सहन करना पड़ता है, फिर भी सभी मूल्यों से सामंजस्य स्थापित करके अपने महान देश और उसके मूल्यों की रक्षा के लिए प्रवासी महिलाएँ विदेशी धरती पर स्वयं को सिद्ध कर रही हैं। अपनी प्रतिभा के बल पर देश को गौरवान्वित करने हेतु प्रयासरत हैं।

हर युग में अनेक दृष्टि से स्त्री का संरचनात्मक योगदान सर्वदा सराहनीय रहा है। वर्तमान समय में कई महिला कथाकारों ने उच्चकोटि के साहित्य की रचना की है, जिसमें सुधा ओम ढींगरा, उषा प्रियंवदा, उषा राजे सक्सेना, प्राण शर्मा, सुषम बेदी, पुष्पिता अवस्थी, जकिया जुबैरी, इला प्रसाद, अर्चना पैन्थूली, पुष्पा सक्सेना, दिव्या माथुर, अचला शर्मा, तोशी अमृता, कादम्बरी मेहरा, नीना पॉल, शैल अग्रवाल, शैलजा सक्सेना, सोमवीरा, रेणु गुप्ता राजवंशी, कीर्ति चौधरी, पूर्णिमा बर्मन, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, अनीता कपूर आदि प्रमुख हैं। इनके साहित्य में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से युग-परिवेश की शिक्षा और विकास की अवधारणा में बदलते जीवन-मूल्यों का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है।

प्रवासी महिला साहित्यकारों के साहित्य में स्त्रियों के चौखट से बाहर निकलने के पश्चात वर्चस्ववादी मानसिकता तथा भारतीय एवं पाश्चात्य मूल्यों की टकराहट के उपरांत भी स्त्री अपने मानव मूल्यों की तलाश में संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। इस साहित्य ने उत्तर-आधुनिकता के संदर्भ में वृद्धा विमर्श, स्त्री विमर्श, पुरुष विमर्श तथा मूल रूप से प्रवासी-विमर्श के रूप में एक महत्वपूर्ण स्थान बनाया है। भारतीय और पाश्चात्य समाज की संस्कृति, परिवेश, भाषा एवं परंपरा का मनोविज्ञान तथा मानवीय-संवेदना, मानव जीवन की सहजता और असहजता के साथ ही घात और प्रतिघातों को भी दर्शाया गया है।

प्रवासी साहित्य की परंपरा में इन महिला साहित्यकारों का लेखन इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इनके यहाँ नई दुनिया की आंतरिक तथा मनोवैज्ञानिक स्थिति का आंकलन करने में नया दृष्टिकोण नजर आता है। उनकी रचनाशीलता का यही पक्ष उनके प्रवासी साहित्य को भारतीय साहित्य से अलग करती है। इनके साहित्य में जहाँ एक ओर भारतीय मूल्यों और संस्कारों का निर्माण होता है, वहीं दूसरी ओर घटित होने वाली प्रत्येक घटना को इन्होंने अपने-अपने साहित्य के माध्यम से भारत तथा भारतेतर देशों में फैलाने का काम किया है। प्रवासी साहित्य आज अपने आप में एक महत्वपूर्ण साहित्य बन चुका है जो विदेशों के परिवेश, वहाँ की समस्याओं तथा वहाँ के वातावरण को एक दर्पण की तरह हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। उषा राजे सक्सेना का प्रवासी महिलाओं के संबंध में कथन है कि भारत का स्त्री विमर्श जहाँ पर समाप्त होता है, वहाँ से प्रवास का स्त्री विमर्श प्रारंभ होता है।

प्रवासी महिला कथाकारों का योगदान इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण है कि उन्होंने अपने साहित्य में लालच के बीच टूटते-बिखरते रिश्तों को एक स्थान दिया है। 'नक्काशीदार केबिनेट' उपन्यास की नायिका सोनल के माध्यम से सुधा ओम ढींगरा ने इस समस्या को उठाया है। सोनल के नाना और मामा सोनल का विवाह बलदेव जैसे धूर्त व्यक्ति के साथ इसलिए कर देते हैं कि उसकी जमीन जायदाद उनकी हो जाए। बलदेव एक ऐसा पात्र है जो लड़कियों से नशा, देह-व्यापार का धंधा करवाता है। सोनल को जब इस बात का पता चलता है तो वह वहाँ से किसी भी तरह निकल आती है। अपने ननिहाल वालों पर नाराजगी दिखाती हुई कहती है कि, "नानाजी, मामाजी कोई तीर कमान में बचा हो तो चला लें। ईश्वर से दुआ करूँगी आप जैसा घटिया ननिहाल किसी को न मिले।"<sup>1</sup> प्रवास के दौरान स्त्री और पुरुष की समस्याएँ समान बनी हुई हैं। इसी कारण दोनों ही एक-दूसरे का शोषण भी कर रहे हैं और सहते भी हैं। मधु अरोड़ा के अनुसार, "जितना उत्पीड़न नारी सहती है, उतना ही उत्पीड़न पुरुष के हिस्से में आता है।"<sup>2</sup> कादम्बरी मेहरा और सुषम बेदी जैसी लेखिकाओं ने घर में शोषित स्त्री से लेकर धर्मपरायण और 'गे' समाज तक के विषयों को आधार बनाकर हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

सेक्स जैसी समस्याओं को लेखिका नीना पॉल ने बहुत ही गंभीरता से उठाया है। कादम्बरी मेहरा ने अपनी कहानी में रंग-भेद की समस्या को उठाया है। वे कहती हैं कि, "पुरुष चाहे जिस रंग का हो, पत्नी उसे गोरी चाहिए। बाकी गुण चाहे जितने भी हों यदि गोरा रंग न हो तो हमारे पुरुष मुँह बिचका देते हैं।"<sup>3</sup>

अर्चना पैन्थली की कहानी 'खुलकर कहूँगी कि मैं गे हूँ' तथा सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'आग में गर्मी कम क्यों है' समलैंगिकता पर आधारित कहानियाँ हैं। पुष्पिता अवस्थी 'छिन्नमूल' उपन्यास में लिखती हैं कि, "भगवान ताले के भीतर रहते हैं... कफरियों और नीग्रों के कारण सूरीनाम में इतनी चोरी डकैती होती है... यहाँ की कानून व्यवस्था

में रामराज्य नहीं राक्षस राज्य है।"<sup>4</sup>

प्रवासी महिला साहित्यकारों ने अपने साहित्य में घुटन, आत्मग्लानि जैसे वातावरण का भी वर्णन किया है। अपने देश को सुंदर बनाने के लिए विदेशी लोग अपने देश में बाहर से आए कुछ अपने देश के वे लोग जो गरीब, असहाय, बदसूरत तथा कम आई-क्यू वाले हैं, उन्हें अपमान की दृष्टि से देखते हैं। उन्हें ये लोग बच्चा पैदा करने की अनुमति नहीं देते हैं। इस संबंध में इनके द्वारा कुछ नियम-कानून बनाए गए हैं। इन्हीं नियम-कानूनों के कारण कुछ को मातृत्व प्रेम से वंचित रखा जा रहा है। वहाँ की सरकार द्वारा बनाई गई सभी शर्तें पूरी करने के लिए ये लोग पूरी कोशिश करते हैं। इस विषय को दिव्या माथुर ने अपने साहित्य में यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है। सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी 'अवैध नगरी' में पुरु एक ऐसा ही पात्र है जो माता की बदलती हुई सोच से परेशान होकर कहता है कि, "आज के इस रहस्योद्घाटन ने मुझे अवैध और यतीम कर दिया है। मुझसे मेरी पहचान छीन ली है, मेरा स्वत्व मेरा वजूद धराशाही कर दिया है। मैं दुनिया का पहला अभिशप्त लावारिस हूँ। इस प्रश्न के चक्रव्यूह में मैं आज घिरा बैठा हूँ कैसे निकलूँ इससे बाहर।"<sup>5</sup> लेखिका का विचार है कि आने वाले समय में समाज किस प्रकार का होगा। अगर इसी तरह चलता रहा तो लोग एक-दूसरे को देखकर आश्चर्यचकित होंगे कि यह हमारी ही शक्ति का व्यक्ति है।

इन लेखिकाओं का मुख्य उद्देश्य अपने कथा साहित्य के माध्यम से विभिन्न समस्याओं एवं विद्रूपताओं को इंगित करना रहा है। व्यक्ति, परिवार तथा स्त्री-पुरुष के संबंधों, प्रवासी स्त्री के जीवन की यथार्थ स्थिति को अत्यंत प्रभावशाली रूप में चित्रित किया है। अंततोगत्वा यह सिद्ध हो चुका है कि प्रवासी कथा-लेखन में महिला कथाकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया गया है।

संदर्भ सूची :

1. नक्काशीदार केबिनेट, सुधा ओम ढींगरा, शिवना प्रकाशन सीहोर, प्रथम संस्करण-2016, पृ.सं.-05
2. इतर, संपादक- सुधा ओम ढींगरा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास नई दिल्ली, पहला संस्करण-2015, पृ.सं.-14
3. छिन्नमूल, पुष्पिता अवस्थी, अंतिका प्रकाशन गाजियाबाद, पहला संस्करण-2016, पृ.सं.-207
4. दस प्रतिनिधि कहानियाँ, सुधा ओम ढींगरा, शिवना प्रकाशन सीहोर, प्रथम संस्करण-2015, पृ.सं.-52
5. खाली हथेली, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, बोधि प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण-2015, पृ.सं.-19



अतिथि प्रवक्ता, अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा-282005 मो. 8114099059

# पत्रकारिता को धर्म मानते थे अटल बिहारी वाजपेयी



संचार-संवाद

## अटल बिहारी वाजपेयी की संचार परंपरा

शोभित सुमन

“अटल बिहारी वाजपेयी राष्ट्रवाद के समर्थक थे। उनके अनुसार भारतीय संस्कृति और परम्परा देश के अधिकांश समस्याओं का समाधान प्रदान करने में सक्षम थी। उनके संवाद में भविष्य की चिंता स्पष्ट रूप से झलकती थी। अपने लेखनी के जरिए वह देश की अवाम का मार्गदर्शन भी करते थे। उनकी कविताओं में यह बात परिलक्षित होती थी।”

अटल बिहारी वाजपेयी का जन्म 25 दिसंबर 1924 को, मध्य प्रदेश के ग्वालियर प्रांत में हुआ था। उनकी माता का नाम कृष्णा देवी और उनके पिता का नाम कृष्ण बिहारी वाजपेयी था। उनके पिता स्कूल में शिक्षक थे और कविता भी लिखा करते थे। अटल बिहारी वाजपेयी की प्रारंभिक शिक्षा सरस्वती शिशु मंदिर, ग्वालियर से हुई तथा विक्टोरिया कॉलेज, ग्वालियर से उन्होंने स्नातक की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने राजनीति शास्त्र में परास्नातक की उपाधि डीएवी कॉलेज, कानपुर से प्राप्त की। उनकी साहित्य में गहरी रुचि थी। वे रचनाएँ करते थे। वे कहते थे ‘काव्य की कसौटी पर मेरे प्रयास भले खरे ना उतरे, किन्तु ये मेरी जिंदगी के दस्तावेज हैं।’ उनकी लेखनी और वक्तृत्व कला के लोग कायल थे। सदन में उनका भाषण हो या मंच पर उनके द्वारा प्रस्तुत की गयी कविताएँ, दोनों श्रोताओं मन-मस्तिष्क पर एक अमिट छाप छोड़ते थे। आज उनके दिवंगत होने के बाद भी उनके भाषण, विचार और रचनाओं को याद किया जाता है।

पूरे विश्व पटल पर अटल बिहारी वाजपेयी की छवि अंतरराष्ट्रीय संबंध की अच्छी समझ रखने वाले और भारतीय संस्कृति और परंपरा में समाहित गुणों को अपनी राजनीति में आत्मसात करने वाले एक मजबूत नेता के तौर पर बनी। लोग उन्हें ‘युगद्रष्टा’ भी कहते हैं। उनके द्वारा बोले गये या लिखे गए एक-एक शब्द इतने प्रभावी होते थे कि लोग उनको सुनने पर मजबूर हो जाते थे। एक राजनेता और लेखक के तौर पर उनकी मजबूत छवि बनने में सबसे बड़ा योगदान उनकी संवाद करने की क्षमता का था। खुद को अभिव्यक्त करते समय वो पैरालेन्गेज का प्रयोग अत्यंत प्रभावी तरीके से करते थे। उनके शब्दों के बीच के ठहराव में सामने वाले को प्रभावित करने की गजब की क्षमता थी।

### अटल बिहारी वाजपेयी की राजनीतिक जीवन यात्रा

अटलबिहारी वाजपेयी की राजनीतिक जीवन यात्रा की शुरुआत सन् 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के आंदोलनकारी के रूप में हुई। अपने छात्र जीवन के शुरुआती दिनों में ही वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विचारों से वो प्रभावित हुए और सन् 1930 में उन्होंने स्वयंसेवी के तौर पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से नाता जोड़ लिया। उनके राजनीतिक सफर में एक ऐसा पड़ाव भी आया जब उन्होंने जीविकोपार्जन हेतु पत्रकारिता को अपना पेशा बनाया। सन् 1947 में पत्रिका ‘राष्ट्रधर्म’, ‘पांचजन्य’, ‘स्वदेश’, और ‘वीर अर्जुन’ इत्यादि पत्रिकाओं के लिए लिखना शुरू किया। हालाँकि एक पत्रकार के तौर पर उन्होंने ज्यादा दिन कार्य नहीं किया। सन् 1951 में श्यामा प्रसाद मुखर्जी से प्रभावित होकर ‘भारतीय जन संघ’ से जुड़ गए। 1957 में वो बलरामपुर लोक सभा से आम चुनाव जीत कर पहली बार संसद पहुंचे। उस समय देश के तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उनका संभाषण सुन कर भविष्यवाणी की थी वो एक दिन देश के प्रधानमंत्री बनेंगे। 1968 में, पंडित दीन दयाल उपाध्याय के देहांत के बाद उन्होंने भारतीय जन संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष का दायित्व संभाला। उसके बाद लाल कृष्ण आडवाणी, नानाजी देशमुख और बलराज मधोक के साथ जुड़ कर कार्य करना शुरू किया ताकि भारतीय राजनीति में जन संघ की उपस्थिति को मजबूत किया जा सके।

सन् 1975 में आपातकाल के दौरान अन्य गैर कांग्रेसी नेताओं की तरह वाजपेयी का समय भी जेल में बीता। जनता पार्टी की सरकार में वो देश के विदेश मंत्री बने। सन् 1980 में उन्होंने लालकृष्ण आडवाणी और भैरो सिंह शेखावत के साथ मिल कर ‘भारतीय जनता पार्टी’ की स्थापना

की और उसके पहले अध्यक्ष बने। अटल बिहारी वाजपेयी पांच दशक से ज्यादा समय तक सांसद रहे। दस बार वो चुनाव जीत कर लोक सभा पहुंचे और दो बार वो राज्यसभा सांसद बने।

### प्रधानमंत्री के तौर पर अटल बिहारी वाजपेयी

अटल बिहारी वाजपेयी तीन बार देश के प्रधानमंत्री बने। सन् 1996 में जब वह पहली बार प्रधानमंत्री बने तो उनका कार्यकाल मात्र 13 दिन का रहा। साल 1997 में वो 13 महीने के लिए देश के प्रधानमंत्री बने। सन् 1999 से सन् 2004 तक पांच साल सरकार चलाने वाले वह देश के पहले गैर कांग्रेसी प्रधानमंत्री बने। उनके कार्यकाल के दौरान कारगिल युद्ध हुआ जिसमें भारत की जीत हुई। उनका कार्यकाल पोखरण परमाणु परिक्षण के लिए भी जाना जाता है। इन दो घटनाओं ने भारत की विश्व पटल पर स्थिति और मजबूत की और अटल बिहारी वाजपेयी को एक मजबूत नेता के तौर पर स्थापित किया।

### अटल बिहारी वाजपेयी की संचार परंपरा

अटल बिहारी वाजपेयी की संचार परंपरा को समझने के लिए उनके भाषणों और उनकी कविताओं का अध्ययन करना आवश्यक है। उनकी रचनाओं और भाषणों का विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि वो अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए अत्यंत ही सरल भाषा का प्रयोग करते थे। वो निर्भीक हो कर संवाद करते थे। सन् 1957 में जिस तरह से उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू की आलोचना करते हुए कहा था कि विश्व इतिहास को गढ़ते हुए देश के प्रधानमंत्री भारतीय इतिहास के कुछ अध्यायों को भूल गए, इससे वो अपने देश की समस्याओं का समाधान नहीं खोज पायेंगे। यह दर्शाता है कि उनके संवाद में डर का कोई स्थान नहीं था।

अटल बिहारी वाजपेयी राष्ट्रवाद के समर्थक थे। उनके अनुसार भारतीय संस्कृति और परम्परा देश के अधिकांश समस्याओं का समाधान प्रदान करने में सक्षम थी। उनके संवाद में भविष्य की चिंता स्पष्ट रूप से झलकती थी। अपने लेखनी के जरिए वह देश की अवाम का मार्गदर्शन भी करते थे। उनकी कविताओं में यह बात परिलक्षित होती थी।

अपने ही छाये से बैर / गले लगाने लगे हैं गैर

खुदकुशी का रास्ता / तुम्हें वतन का वास्ता

बात बनायी बिगड़ गयी / दूध में दरार पड़ गयी

इस कविता को देश के तत्कालीन परिदृश्य को ध्यान में रख कर समझे तो हम पायेंगे कि इस कविता में कश्मीर के तत्कालीन हालात पर उन्होंने चिंता व्यक्त की है। उन दिनों कश्मीर के अधिकांश युवा अपने देशवासियों को गैर समझ कर पाकिस्तान को अपना रहनुमा समझने लगे थे। उनको चेतावनी देते हुए वाजपेयी कहते हैं कि उनका रास्ता खुदकुशी का रास्ता है। उन्हें इस रास्ते पर नहीं जाना चाहिए।

देश के मुसलमानों के बारे में उनका मानना था कि भारतीय मुसलमान हिंसक नहीं हैं किन्तु वे खुद को बाकी संप्रदाय के लोगों से अलग कर के रखते हैं, इससे सामाजिक ढाँचे पर बुरा असर पड़ता है। मुस्लिम समुदाय के लोग दिन-प्रतिदिन साम्प्रदायिक होते जा रहे हैं जिसके कारण हिन्दुओं के मन में उनके प्रति हिंसा बढ़ रही है।

बाधाएं आती हैं आए / घिरे प्रलय की घोर घटाएँ

पावों के नीचे अंगारे / सिर पर बरसे यदि ज्वालान्

निज हाथों में हँसते – हँसते / आग लगा कर चलना होगा

कदम मिला कर चलना होगा

अगर हम अटल बिहारी वाजपेयी की उपर उद्धृत की हुई कविता पर गौर करें तो हम पायेंगे कि इस कविता के माध्यम से वो सरल और सहज भाषा में देश की जनता को बाधाओं से निपटने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। उनका संचार सहज, स्पष्ट और सरल प्रतीत होता है।

निष्कर्षतः अटल बिहारी वाजपेयी एक कुशल वक्ता और प्रभावी लेखक थे। वे सदन तथा मंच पर निर्भीक अंदाज़ में सहज तरीके से सरल भाषा का प्रयोग करते हुए अपने विचारों को व्यक्त करते थे। उनके संचार में 'बहुजन हिताय – बहुजन सुखाय' की भावना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती थी। भारतीय संचार परंपरा के अनुसार 'लोककल्याण' संचार का मुख्य उद्देश्य बताया गया है। अटल बिहारी वाजपेयी का संवाद इस भावना से ओत-प्रोत होता था। उनका संचार देश के विभिन्न लोगों को जोड़ने के लिए था जो इस बात को दर्शाता है कि उनकी संचार परंपरा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श पर आधारित थी। अंततः हम कह सकते हैं कि अटल बिहारी वाजपेयी की संचार परंपरा लोकहित, निर्भीकता, सहज और सरल संचार पर आधारित थी।

### सन्दर्भ सूची

1. भसीन, स. (2019, August 16). ए बी वाजपेयी: ए जर्नलिस्ट बाय प्रोफेशन, ए पोएट बाय चॉइस, ए पॉलिटिशियन बाय चांस [Web log post]. Retrieved July 14, 2022, from <https://swarajyamag.com/blogs/a-b-vajpayee-a-journalist-by-profession-a-poet-by-choice-a-politician-by-chance>
2. कपूर, ह. (2000). फ्रॉम मार्जिनलिटी टू सेंट्रलिटी: वाजपेयीज पॉलिटिकल जर्नी. वल्टेड अफेयर, 98-103.
3. पाठक, व. (2021, October 06). व्हेन आई मेट वाजपेयी ड्यूरिंग हिज लास्ट पब्लिक अपीयरेंस. Retrieved July 14, 2022, from <https://www.outlookindia.com/website/story/india-news-when-i-met-vajpayee-during-his-last-public-appearanc/396793>
4. पांडे, म. (2019, December 25). ही नेवर टायर्ड, नेवर रिटायर्ड: ए जर्नलिस्ट रिमेंबर्स वाजपेयी. Retrieved July 14, 2022, from <https://www.thequint.com/voices/blogs/to-atal-bihari-vajpayee-from-a-journalist>
5. मिश्र, र न. (2018, August 17). यह दर्द अटल बिहारी वाजपेयी को पत्रकारिता से राजनीति में खींच कर लाया था... Retrieved July 14, 2022, from <https://www.amarujala.com/jammu/this-reason-dragged-atal-bihari-vajpayee-to-become-a-politician-from-a-journalist>



408 पूर्णिमा अपार्टमेंट गली न.-1, शालिमपुर अहरा,  
कदम कुआं, पटना - 800003 मो. 8877565443

## चंपारण जिले के स्थानीय कृषि आधारित उद्योगों पर वैश्वीकरण का प्रभाव

प्रो. ज्ञानतोष कुमार झा, डॉ. प्रवीण कुमार झा

“वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप भारत के कई राज्यों में विदेशी निवेश हुआ, व्यापारिक माहौल बने, रोजगार के अवसर पैदा हुए, ग्रामीण विकास को गति मिली। जहां तक बिहार की बात है, यहाँ भी वैश्वीकरण का सकारात्मक प्रभाव पड़ता दिख रहा है। इसके कारण अंतर्राज्यीय व्यापार को बढ़ावा मिला, वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमत में कमी आयी, उत्पादन लागत कम हुई, बिहार की कृषि उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई, डेयरी उत्पादन बढ़ा है। बेतिया के रहने वाले सामाजिक कार्यकर्ता पंकज राय कहते हैं कि ‘वैश्वीकरण का प्रभाव चंपारण पर भी पड़ा है। लोगों में रोजी-रोजगार बढ़ा है। जैसे सिद्धांत के आधार पर मैं वैश्वीकरण की आलोचना करता हूँ। आलोचना का मुख्य कारण यह है कि विकास की जो नीति है वह अंतिम आदमी तक नहीं पहुँच रही है।”

### शोध सार

चंपारण जिला आजादी के समय महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलन के कारण इतिहास में दर्ज हो गया। लेकिन आजादी के बाद बिहार के इस जिले की सुध किसी ने नहीं ली। चंपारण जिला बिहार के पिछड़े क्षेत्रों में गिना जाता है। कृषि और स्थानीय कृषि आधारित उद्योगों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। चंपारण समय के साथ नहीं चला। वैश्वीकरण के तमाम सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों से चंपारण जिला अछूता नहीं रहा। समग्र विकास, कृषि, पशुपालन, दुग्ध, कपास, गन्ना आदि कृषि आधारित स्थानीय उद्योग सरकारी उपेक्षा तथा वैश्वीकरण के कारण प्रभावित हुए। चंपारण के विकास के लिए संसाधनों के अलावा सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों के प्रयास की

आवश्यकता अनुभव की जा रही है। प्रस्तुत शोध पत्र में इसी परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण के बाद चंपारण पर उसके प्रभाव के अवलोकन का प्रयास है।

**कुंजी शब्द** - कृषि, स्थानीय कृषि उद्योग, वैश्वीकरण, चंपारण, समग्र विकास।

### शोध पत्र

प्रस्तावना - विश्व की पांचवीं सबसे तेज गति से उभरती हुई अर्थव्यवस्था के रूप में भारत की वैश्विक पहचान बनी है। वैश्वीकरण और उदारवादी व्यवस्था को अपनाने के बाद से भारत में विदेशी निवेश हुआ, भारत को वैश्विक अर्थव्यवस्था से सीधे जुड़ने का अवसर मिला। भारतीय चिंतकों ने वैश्वीकरण और उदारवाद को लेकर अपनी चिंताएं व्यक्त की थी, कम या ज्यादा उनकी चिंताएं सही साबित हुईं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उनके मूल देश ने विश्व भर की अर्थव्यवस्था को अपने अनुकूल बनाने के लिए वैश्विक संस्थाओं को मजबूर किया। छोटे और गरीब देशों की बहुत सी कंपनियां या तो बिक गयीं या बंद हो गयीं। वैश्विक पूंजीपतियों के आगे उनकी एक न चली। पूरे विश्व में उपभोगवाद, उपभोक्तावाद इन दो श्रेणियों की स्थापना का तथा उपभोक्तावादी संस्कृति को उखाड़ फेंकने का संघर्ष चल रहा था। अभय कुमार दूबे के अनुसार “गांधीवादियों का नाखुश होना स्वाभाविक था, क्योंकि भूमंडलीकरण गांव की जगह शहर और नागरिक की जगह उपभोक्ता की सत्ता को अंतिम तौर पर स्थापित करने के आग्रह के साथ सामने आया है।”<sup>1</sup> भारत वैश्वीकरण और उदारवादी व्यवस्था से स्वयं को अलग नहीं रख सकता था। विभिन्न विचारधारा के नेताओं ने वैश्वीकरण को लेकर अपनी राय रखी। कुछ उसके समर्थन में थे तो कुछ विरोध में। हालांकि इसके दुष्परिणाम को उसे भुगतना पड़ा, लेकिन इसके कुछ अच्छे प्रतिफल भी मिले। विदेशी निवेश बढ़ा जिससे रोजगार और विकास आदि के मार्ग खुले। रजनी कोठारी के अनुसार, “भूमंडलीकरण के केवल दो दावे ऐसे हैं जिनके आधार पर वह कुछ बेहतर करने का दावा करता है, पहला, उसके कारण हथियारों की होड़ कमजोर पड़ जाएगी और दूसरा, अर्थशास्त्र और

प्रौद्योगिकी को मिला कर एक ऐसा भूमंडलीय बाजार बनेगा जिससे किस्म-किस्म की अर्थव्यवस्थाएं खुद जोड़ लेंगी।<sup>42</sup>

अतीत वर्तमान का सहयात्री है और भविष्य वर्तमान का सबसे अधिक चेतनशील हिस्सा है। वैश्वीकरण वर्तमान समय का सर्वाधिक प्रासंगिक शब्द है। वैयक्तिक जीवन से लेकर सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र पर इसका प्रभाव अच्छा अनुभव किया जा रहा है। लेकिन वैश्वीकरण को लेकर अभी तक न तो सामान्य जन में, न ही बौद्धिक जगत में कोई स्पष्ट छवि बन पायी है, लेकिन यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण का तात्पर्य एक ऐसे विश्व से है जिसमें राष्ट्रीय सीमाओं और दूरियों से परे एकीकृत आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाएं होंगी। भूमंडलीकरण की अवधारणा को लेकर उपजी अस्पष्टता पर नीरज जैन लिखते हैं कि “भूमंडलीकरण के लिए वैश्वीकरण, विश्वायन, विश्वीकरण, ग्लोबलाइजेशन, जगतीकरण, नव साम्राज्यवाद, नव उपनिवेशवाद, नव उदारवाद जैसे शब्दों का बहुधा इस्तेमाल किया जाता रहा है।<sup>43</sup>

वैश्वीकरण की वास्तविक शुरुआत आधुनिक काल में विशेषकर औद्योगीकरण के बाद हुई जिसने विश्व को समेटकर एक वैश्विक गांव का रूप देने की कोशिश की। 1991 में सोवियत संघ के विघटन तथा भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलने से यह प्रक्रिया तीव्र तो हुई ही, भारत भी इस वैश्विक ग्राम का एक महत्वपूर्ण सदस्य बन गया। डॉ. बी. एल. फड़िया ने वैश्वीकरण की व्याख्या करते हुए कहा है, “भूमंडलीकरण, आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण, बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था, निगमीकरण, प्रतिस्पर्धात्मक और खुली अर्थव्यवस्था जैसे नारे गूंजने लगे।<sup>44</sup> अर्थशास्त्री एस. के. मिश्र वैश्वीकरण को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि, “भारत में वैश्वीकरण शब्द का प्रयोग आम तौर पर देश की अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत रूप में देखने के लिए किया जाता है।<sup>45</sup> जवाहर लाल कौल के अनुसार ‘वैश्वीकरण विश्व के विभिन्न देशों के बीच आर्थिक सम्बन्धों, सहयोग और विनिमय को व्यापकता तथा गहराई देने की प्रक्रिया को कह सकते हैं।<sup>46</sup> उद्योगपति लॉर्ड स्वराज पॉल भूमंडलीकरण को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि, ‘भूमंडलीकरण केवल व्यवसाय व व्यापार नहीं है, यह मस्तिष्क के ऐसे संगम के रूप में है जहां विचार व प्रतिभा बेरोकटोक एक-दूसरे राष्ट्र की सरहदों में आ-जा सकते हैं।<sup>47</sup> कुमुद शर्मा के अनुसार, ‘वैश्वीकरण एक ऐसी पूँजीवादी प्रक्रिया के रूप में भी देखा जा रहा है, जिसके आगे राष्ट्रीय सरकारें जनहित के लिए कोई कदम उठाने में असमर्थ हो जाती हैं। वे अंतर्राष्ट्रीय बाजार के नियम और शर्तों में बंध जाती हैं।<sup>48</sup> डॉ. आर. ए. शर्मा के अनुसार, ‘वैश्वीकरण एकरूपता एवं समरूपता की वह प्रक्रिया है जिसमें सम्पूर्ण विश्व सिमट कर छोटा हो जाता है। एक देश की सीमा से बाहर अन्य देशों में वस्तुओं एवं सेवाओं का लेन-देन करने वाले अंतर्राष्ट्रीय

निगमों अथवा बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ देश के उद्योगों की संबद्धता भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण है।<sup>49</sup> भूमंडलीकरण को किसी सर्वसामान्य परिभाषा में नहीं बांधा जा सकता। इसकी एक सरल परिभाषा दी गई है कि तकनीकी और संचार क्रांति ने विश्व को समेट कर एक विश्व ग्राम अर्थात् ग्लोबल विलेज में परिवर्तित कर दिया है। जिस विश्व ग्राम की कल्पना मार्शल मैक्लूहन ने की थी वह भारत में वैदिक काल से ही विद्यमान है। ऋग्वेद में ‘विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरम्’ कहा गया है।<sup>50</sup> भारतीय विचारकों ने विश्व को परिवार माना जबकि अन्य विदेशी विचारकों ने इसे ग्राम जैसी ईकाई तक ही सीमित कर दिया।

भारत में वैश्वीकरण और उदारीकरण के आगमन के साथ ही मीडिया का विकास और विस्तार और तेज गति से हुआ। वैश्वीकरण की प्रक्रिया को सूचना क्रांति के कारण गति मिली। अनुभव यह किया गया है कि वैश्वीकरण के माध्यम से इन कम्पनियों ने अपना प्रभा मंडल ऐसा फैलाया कि तीसरी दुनिया के देशों की निर्भरता इन पर बढ़ती जा रही है। औद्योगिक विकास भी तभी हो सकता है जब कृषि में समृद्धि हो। पूर्व प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह ने 1979 में प्रकाशित पुस्तक ‘भारत की अर्थनीति व गांधीवादी रूपरेखा’ में एक लेख लिखा था, जिसके अंश आज भी प्रासंगिक हैं ‘हमें केवल खाद्यान्न ही नहीं, कृषि से प्राप्त होने वाले कच्चे माल का भी आयात करना पड़ा। मिसाल के लिए, कपड़ा, भोजन के बाद मनुष्य के लिए सबसे अधिक आवश्यक वस्तु है, उसके उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चा माल भी हमें बाहर से मंगाना पड़ा।<sup>51</sup>

बिहार जैसे प्राकृतिक रूप से समृद्ध राज्य को संपूर्ण भारत में गरीब राज्य या बीमारू राज्य के रूप में देखा जाता रहा है। बिहार खराब सड़कों के लिए कुख्यात या बदनाम रहा है। यहाँ विभिन्न विचारधाराओं की सरकारें बनीं, पांच-पांच वर्ष तक का शासन रहा, लेकिन बिहार अपनी जगह पर कदमताल करता रहा। कुछ संवेदनशील सरकारों ने बिहार के विकास के लिए काफी प्रयास किये हैं, लेकिन वह अपर्याप्त है। चंपारण जिला आजादी के समय महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलन के कारण इतिहास में दर्ज हो गया। आजादी के बाद इस चंपारण की सुध किसी ने नहीं ली। चंपारण जिला बिहार के पिछड़े क्षेत्रों में गिना जाता है। कृषि और स्थानीय कृषि आधारित उद्योगों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। चंपारण समय के साथ नहीं चला। वैश्वीकरण के तमाम सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों से चंपारण जिला अछूता नहीं रहा। समग्र विकास, कृषि, पशुपालन, दुग्ध, कपास, गन्ना आदि कृषि आधारित स्थानीय उद्योग सरकारी उपेक्षा तथा वैश्वीकरण के कारण प्रभावित हुए। चंपारण के विकास के लिए संसाधनों के अलावा सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों के प्रयास की आवश्यकता अनुभव की जा रही है।

## चंपारण के कृषि आधारित प्रमुख उद्योग

चंपारण की मिट्टी उपजाऊ और जलोढ़ मिट्टी है, जो समतल स्थलरूप सिंचाई के लिए उपयुक्त है। बिहार के चंपारण जिले की रेतीली-दोमट मिट्टी अनाज, दालें, फल और सब्जियों के साथ-साथ औषधीय और सुगंधित पौधों को उगाने के लिए अनुकूल है। चंपारण नियमित आधार पर कृषि अनुसंधान में उभरती प्रगति के साथ कृषि और संबद्ध व्यवसायों में व्यावसायिक प्रशिक्षण आयोजित करने के लिए अनिवार्य जिलों में फ्रंट लाइन विस्तार शिक्षा के लिए अग्रणी केंद्रों में से एक साबित हुआ है। चंपारण में लोगों की आय का मुख्य स्रोत कृषि है। कुछ कृषि आधारित उद्योग यहां फले-फूले हैं और सफलतापूर्वक चलाए जा रहे हैं। कुछ चावल मिलें भी सफलतापूर्वक चलाई जा रही हैं और उपज को जिले के बाहर विभिन्न स्थानों पर बेचा जा रहा है। उपलब्ध प्राकृतिक और कृषि उत्पादों पर आधारित कुटीर उद्योग स्थानीय जरूरतों को पूरा करते हैं जैसे गुड़ (कच्ची चीनी), टोकरी, रस्सी, चटाई बुनाई आदि प्रसंस्करण एवं धुलाई हेतु जल की पर्याप्त उपलब्धता होने के कारण यहाँ कृषि कार्य पर्याप्त मात्रा में होता है। कृषि आधारित उद्योगों में चीनी, डेयरी, बेकरी, साल्वेंट निष्कर्षण, कपड़ा, डेयरी संयंत्रों, चावल मिलों, दाल मिलों, कृषि औजार, बीज उद्योग, सिंचाई उपकरण, उर्वरक, कीटनाशक आदि उद्योग प्रमुख हैं। इस वर्ग के उद्योग कृषि क्षेत्र द्वारा उत्पादित कच्चे माल पर निर्भर होते हैं। इनके उत्पादों में मुख्यतः उपभोक्ता सामान शामिल हैं। औद्योगिक उत्पादन में योगदान तथा रोजगार निर्माण की दृष्टि से कृषि-आधारित उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है। बिहार में चीनी उद्योगों के प्रमुख केंद्र चम्पारण ही है। पश्चिमी चंपारण में मझौलिया, बेतिया के चनपटिया, नरकटिया गंज, बगहा, हरि नगर, लौरिया और पूर्वी चंपारण में मोतिहारी, सुगौली, चकिया चीनी मिलें स्थित हैं। प्रधानमंत्री सूक्ष्म खाद्य प्रसंस्करण उद्योग उन्नयन योजना के तहत 'वन डिस्ट्रिक्ट वन प्रोडक्ट स्कीम' के लिए पश्चिम चंपारण का चयन किया गया है। ताकि आत्मनिर्भर भारत, आत्मनिर्भर बिहार कार्यक्रम के तहत वहाँ 'वोकल फॉर लोकल' को बढ़ावा दिया जा सके। इसके लिए बागवानी मिशन को नोडल विभाग बनाया गया है। 'वन डिस्ट्रिक्ट वन प्रोडक्ट' के तहत गन्ना आधारित उद्योग लगाने पर उद्यमियों को 10 लाख तक का अनुदान सरकार देगी। सहायक निदेशक उद्यान विवेक भारती ने बताया की लागत की 35 फ्रीसदी राशि सरकार अनुदान के रूप में वहन करेगी। इसमें सारी प्रक्रियाएं ऑनलाइन होगी। उद्यमियों को बैंकों का चक्कर नहीं लगाना पड़ेगा। इस योजना के तहत गन्ना आधारित उद्योग के विकसित होने की यहां असीम संभावना है। क्योंकि पश्चिम चंपारण में लगभग दो लाख हेक्टेयर में गन्ने की खेती होती है। गन्ने से गुड़, चॉकलेट आदि उद्योग को विकसित किया जाएगा। इसको लेकर जिला प्रशासन की ओर से क्षेत्र में जागरूकता अभियान भी चलाया जाएगा। वहीं इस तरह के उद्योग विकसित होने पर किसानों की

रुचि गन्ना उत्पादन की ओर बढ़ेगी। इससे मजदूरों के पलायन पर रोक लगेगी साथ ही पश्चिम चंपारण का विकास होगा।<sup>12</sup>

बिहार के मुख्यमंत्री श्री नितेश कुमार के साथ सुगौली में किसानों से हुए संवाद में बेलई के किसान हरिशंकर प्रसाद कहते हैं कि सीएम की पहल से पिछले 20 साल से परेशान किसानों का खुशहाल जीवन लौट आया है। किसान धर्मेन्द्र कुमार नायक कहते हैं कि अब बेटी की शादी की चिंता यहां के किसानों को नहीं रही, क्योंकि गन्ना का उत्पादन करने पर उन्हें समय पर भुगतान हो रहा है। हरसिद्धि के मटियरिया निवासी सत्यानारायण प्रसाद कहते हैं कि गन्ना मंत्री किसानों को ईंधन की नवीनतम शोध से लेकर इसके बेहतर उत्पादन के बारे में बताते रहते हैं। उन्होंने लोगों को रिंग व स्टैंड विधि की जानकारी देकर बेहतर उत्पादन लेने का गुर बताया है। कुमार शिवशंकर मांग करते हैं कि चकिया व मोतिहारी चीनी मिल भी खुलवाई जाय व बैंक केसीसी से भ्रष्टाचार को दूर किया जाय। अनुदान की आधी राशि बैंक व दलाल हड़प ले रहे हैं। लौकरिया के किसान विजय कुमार सिंह ने कहा कि चीनी मिल चालू होने से अब किसान गन्ने की खेती की ओर मुड़े हैं।<sup>13</sup>

## चंपारण के स्थानीय कृषि उद्योगों पर वैश्वीकरण का प्रभाव

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप भारत के कई राज्यों में विदेशी निवेश हुआ, व्यापारिक माहौल बने, रोजगार के अवसर पैदा हुए, ग्रामीण विकास को गति मिली। जहां तक बिहार की बात है, यहाँ भी वैश्वीकरण का सकारात्मक प्रभाव पड़ता दिख रहा है। इसके कारण अंतर्राज्यीय व्यापार को बढ़ावा मिला, वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमत में कमी आयी, उत्पादन लागत कम हुई, बिहार की कृषि उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई, डेयरी उत्पादन बढ़ा है। बेतिया के रहने वाले सामाजिक कार्यकर्ता पंकज राय कहते हैं कि 'वैश्वीकरण का प्रभाव चंपारण पर भी पड़ा है। लोगों में रोजी-रोजगार बढ़ा है। वैसे सिद्धांत के आधार पर मैं वैश्वीकरण की आलोचना करता हूं। आलोचना का मुख्य कारण यह है कि विकास की जो नीति है वह अंतिम आदमी तक नहीं पहुँच रही है। सरकार की तरफ से पंचायत में पैक्स नाम की संस्था खुली है जो बेईमानी से भरी है। पूरे बिहार में कुल 9 चीनी मिलें हैं जिनमें जिनमें छह चीनी मिल चंपारण में ही हैं। मोतिहारी चकिया और चनपटिया कि चीनी मिलें बंद हैं। खेती में सब्जी और मक्का की खेती बड़ी है, लेकिन उसके लिए एक निश्चित बाजार नहीं है। यही समस्या चंपारण की कृषि आधारित उद्योगों की है।'<sup>14</sup> मोतिहारी के रहनेवाले और टाइम्स ऑफ़ इंडिया के वरिष्ठ पत्रकार चंद्रभूषण पाण्डेय का कहना है, 'हम लोग भारत और नेपाल सीमा-क्षेत्र में बसे हुए हैं, जहां यातायात की सुविधा बहुत कम है। यातायात की सुविधा हो तो कम आमदनी में भी अच्छा जीवन जिया जा सकता है और रोजगार का सृजन कर सकता है। छोटे किसान फल और अनाज का उत्पादन कर रहे हैं, तो उसका उचित मूल्य नहीं मिल रहा है। साथ ही, सही समय पर उनका



उत्पाद बाहर नहीं जा रहा है और बिचौलिए इसका लाभ उठाते रहे हैं। भूमंडलीकरण के प्रभाव से उनकी आमदनी बढ़ जानी चाहिए थी। कुटीर उद्योग से उत्पादित चीजों का बढ़िया मूल्य मिलना चाहिए था, लेकिन यहां के लोगों को वह लाभ नहीं मिल रहा है।<sup>15</sup>

चंपारण के वरिष्ठ पत्रकार आशुतोष झा का मानना है कि ‘‘भूमंडलीकरण का प्रभाव निश्चित रूप से चंपारण पर पड़ा है। सड़क, रेलवे लाइन के क्षेत्र में विस्तार हुआ है तथा नये स्कूल व कॉलेज खुले हैं। यहां तक कि गाँधी जी के नाम से केंद्रीय विश्वविद्यालय भी चंपारण की धरती पर खुला है। स्थानीय कृषि उद्योगों की बात की जाए, तो सुगौली चीनी मिल जो बंद पड़ा था उसको एचपीसीएल के द्वारा दुबारा से संचालित किया गया है।<sup>16</sup> यही कारण है कि भारत के आर्थिक विकास में बिहार महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। वर्ष 2016-17 में बिहार का जीडीपी 10.3 प्रतिशत रहा है। यह भारत के सभी राज्यों के जीडीपी में 14 वें स्थान पर था। पूर्वी चंपारण के हरसिद्धि और बांका प्रखंड में एचपीसीएल गैस वाटलिंग प्लांट लगाया गया। स्थानीय कृषि उत्पादों को बाजार की तलाश बनी रही, किसानों को उनकी उपज का सही मूल्य नहीं मिल पाया तथा बाढ़ और सूखा ने किसानों की कमर तोड़ दी। रही सही कसर सरकारी उपेक्षा ने पूरी कर दी।

**निष्कर्ष** - चंपारण जिला कृषि आधारित उद्योगों के कारण काफी समृद्ध क्षेत्र के रूप में जाना जाता रहा है। वैश्वीकरण, उदारीकरण के बाद से भारत के विभिन्न राज्यों में कृषि, उद्योग तथा स्थानीय लघु उद्योगों को अपने उत्पाद को वैश्विक बाजार में पहुंचाने का अवसर मिला वहीं इसका दूसरा पहलू भी था जो काफी भयानक साबित हो रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगे कमजोर अर्थव्यवस्था वाले या गरीब देशों के छोटे उद्योगों तथा भारत के पिछड़े राज्यों के उत्पादों के लिए बाजार में पर्याप्त अवसर नहीं मिला, जैसे बड़ी मछली छोटी मछलियों को निगल जाती है ठीक वैसा ही हाल छोटे उद्योगों के साथ भी हुआ। बिहार इससे अछूता नहीं रहा। चंपारण जैसे कई अन्य जिलों को भगवान भरोसे छोड़ दिया गया जिससे ये सभी क्षेत्र और अधिक पिछड़ते चले गए। वैश्वीकरण के दौर में चंपारण में कृषि आधारित उत्पादों का व्यापार काफी कमजोर साबित हुआ। हालांकि इस क्षेत्र में उद्योग और व्यापार की असीम संभावनाएं व्याप्त हैं।

वर्तमान में प्रत्येक जिले में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद व राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा कृषि विज्ञान केन्द्र अथवा ज्ञान केन्द्रों की स्थापना की गई है। इन केन्द्रों पर कार्यरत वैज्ञानिक समय-समय पर कृषि आधारित उद्योगों के लिए तकनीकी प्रशिक्षण देते हैं। खाद्य प्रसंस्करण विभाग द्वारा फल व सब्जियों के मूल्य-संवर्धन व परीक्षण को प्रोत्साहित करने के लिए साहित्य व पैम्फलेटों के निःशुल्क वितरण के साथ-साथ प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इसके अलावा, केन्द्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, राज्य सरकारों

द्वारा भी कृषि-आधारित उद्योगों के बारे में युवाओं को प्रशिक्षण दिया जाता है। इस प्रकार कई ऐसे कृषि-आधारित उद्योग हैं, जिनमें थोड़ी-सी मेहनत एवं प्रशिक्षण प्राप्त करके ग्रामीण स्तर पर स्वरोजगार आरम्भ किया जा सकता है। उपरोक्त योजनाओं व जानकारी के आधार पर कोई भी ग्रामीण बेरोजगार यह निर्णय कर सकता है कि कृषि-आधारित उद्योगों में से अपनी परिस्थिति के अनुसार वह कौन से उद्योग को अपनाकर अपनी आजीविका चलाने के साथ-साथ लाभ भी कमा सकता है। इसके अतिरिक्त इन उद्योगों की शुरुआत करने से पहले किन-किन बिन्दुओं पर विचार करना आवश्यक है। सरकार द्वारा कौन-कौन सी योजनाएं, सुविधाएं व अनुदान उपलब्ध कराए जा रहे हैं, आदि जानकारियों का लाभ उठाकर ग्रामीण बेरोजगार व्यक्ति स्वरोजगार की तरफ उन्मुख हो सकता है।

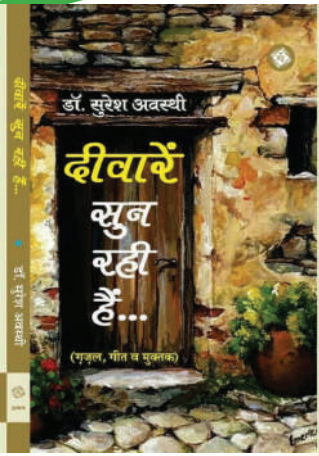
#### सन्दर्भ सूची-

1. दूबे, अभय कुमार, 2008, भारत का भूमंडलीकरण, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पेज 22
2. कोठारी, रजनी, 2008 भारत का भूमंडलीकरण, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पेज 93
3. जैन, नीरज, 2002, वैश्वीकरण या पुनः औपनिवेशीकरण, गार्गी प्रकाशन सहारनपुर, पृष्ठ 3
4. फड़िया, डॉ. बी.एल., राजनीति विज्ञान, साहित्य भवन आगरा, पृष्ठ 643
5. Mishra S.K., Puri V.K., 2014, Indian Economy, Himalaya Publishing House Mumbai, Page 561
6. कौल, जवाहरलाल, 2010, हिन्दी पत्रकारिता का बाजारभाव, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली
7. सिंह, डॉ. अमित कुमार, 2014, भूमंडलीकरण और भारत: परिदृश्य और विकल्प, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 30
8. शर्मा, कुमुद, 2013, भूमंडलीकरण और मीडिया, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली
9. शर्मा, डॉ. आर.ए., 2007, शिक्षा अर्थशास्त्र, लाल बुक डिपो मेरठ, पृष्ठ 423
10. ऋग्वेद 1.114.6
11. चौधरी चरण सिंह आर्काइव्स
12. गन्ना आधारित उद्योग पर मिलेगा अनुदान, हिंदुस्तान 2 मई 2021
13. चंपारण के उद्योगों से अभिभूत दिखे सीएम, दैनिक जागरण, 21 अप्रैल 2012
14. साक्षत्कार, पंकज राय, सामाजिक कार्यकर्ता, बेतिया
15. साक्षत्कार, चंद्रभूषण पाण्डेय, वरिष्ठ पत्रकार, टाइम्स ऑफ़ इंडिया मोतिहारी
16. साक्षत्कार, आशुतोष झा, वरिष्ठ पत्रकार, मोतिहारी
17. न्यूज18 हिन्दी, 10 अप्रैल 2018



प्राचार्य, आत्माराम सनातन धर्म कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,  
पोस्ट डॉक्टरल फेलो, आई. सी. एस. आर.

email – pravin.tinkoo@gmail.com मोबाइल – 9868330336



## दीवारें सुन रही हैं : संदेशात्मक रचनाओं का संग्रह

डा. कृष्णकुमार 'नाज़'

आज की ग़ज़ल महबूब की ज़ुल्फ़-रुखसार, फूल, तितली, जाम, साक्री, मयखाना, सुराही तक ही सीमित नहीं रही। ग़ज़ल ने अपनी सीमाओं को विस्तार दिया है। वह सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, आध्यात्मिक सरोकारों से जुड़ी है। ग़ज़ल ने 'कोठे' से 'फुटपाथ' तक की प्रशंसनीय यात्रा तय की है।

आदरणीय भाई डा. सुरेश अवस्थी जी की पुस्तक 'दीवारें सुन रही हैं' मेरे सामने है और मैं उनके अशआर का आनंद ले रहा हूँ। अवस्थी जी मूलरूप में तो देश के सुप्रसिद्ध हास्य-व्यंग्य के कवि हैं, लेकिन उनकी कविताओं की यह विशेषता है कि उनका आरंभ शिष्ट हास्य से होता है और समापन गंभीर व्यंग्य पर। ऐसा व्यंग्य जो समाज में फैली कुरीतियों पर प्रहार करता है। ऐसा नहीं कि वह सिर्फ़ समस्याएँ उठाते हैं, बल्कि उन समस्याओं का समाधान भी सुझाते हैं। उनकी ग़ज़लों में भी धारदार व्यंग्य का पुट स्पष्ट दिखाई देता है।

ग़ज़ल फ़ारसी से उर्दू और उर्दू से यात्रा तय करती हुई हिंदी में आई है। आज हिंदी रचनाकारों द्वारा ख़ूब ग़ज़लें कही जा रही हैं। अवस्थी जी ने अपने एक शेर में कहा भी है-

जाने कितने रास्ते तय करके आई है ग़ज़ल  
अब हमारे घर में आकर मुस्कराई है ग़ज़ल

वास्तव में ग़ज़ल ने बहुत लंबा सफ़र तय किया है। यहाँ घर का मतलब ईंट-गारे से बनी चारदीवारी से नहीं, बल्कि पूरे हिंदुस्तान से है। ग़ज़ल यहाँ की तहज़ीब में रच-बस गई है। कोई उसके माथे पर बिंदी लगा रहा है, तो कोई उसकी धोती की चुन्टें ठीक कर रहा है। पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिधानों से उसे सजाया-सँवारा जा रहा है। कवि ने संकेतों के माध्यम से वर्तमान की दिशाहीन राजनीति पर भी प्रहार किया है-

राहबर पकड़े गए सब / राहज़न छूटे हुए हैं

+++

मतलब नहीं है उनको अब अपने वजूद से  
जिसने भी उनको लाभ दिया, उनके हो लिए

आज हम देख रहे हैं कि बहुत-से साहित्यकार भी लामबंद होकर धर्म और संस्कृति पर कीचड़ उछाल रहे हैं। जिन्हें समाज के साथ होना चाहिए, वे किसी न किसी बहाने समाज को विघटित करने में लगे हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर अथवा किसी 'वाद' या विचारधारा विशेष से ग्रस्त होकर देश-विरोधी गतिविधियों में भी लिप्त हो जाते हैं-

जिसकी होनी थी उसकी हो न सकीं

जाने किस-किस की हो गईं क़लमें

साहित्यकार भी सामाजिक प्राणी है। वह अपने लेखन-उपकरण भी समाज से ही प्राप्त करता है, इसलिए वह समाज से कभी विमुख नहीं हो सकता। अच्छे साहित्यकार अपने लेखन के ज़रिये समाज में सकारात्मक ऊर्जा का निरंतर संचार कर रहे हैं। समाज की हर घटना-दुर्घटना पर उनकी सतर्क दृष्टि रहती है। दो शेर देखें जिनमें समाज की व्यथा-कथा का सजीव चित्रण मिलता है-

लोरियों से नींद अब आती नहीं / इसलिए माँ चुप है, कुछ गाती नहीं

इस क्रूर रौंटी गई इंसानियत / अब कोई भी शख्स जज़्बाती नहीं  
साहित्यकार संवेदनशील हृदय रखता है, इसलिए छोटी से छोटी घटना भी उसको विचलित कर देती है। यह कहना अनुचित न होगा कि कई बार वह अपनी वैयक्तिकता भी दूसरों के हवाले कर देता है। उसकी आँखें भी आँसुओं से तर-बतर होती हैं। उसके माथे पर भी चिंता और उलझन की बहुत-सी रेखाएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। इसी संवेदनशीलता से ओतप्रोत चंद ख़ूबसूरत शेर और प्रस्तुत है-

सोच कोई पल रहा सघन है / आज बहुत विचलित ये मन है

बाहर-बाहर शोर बहुत है / अंदर-अंदर ख़ालीपन है

तुझसे नहीं शिकायत कोई / मेरी तो ख़ुद से अनबन है

आँसू ऐसे अहसास का नाम है, जिसका स्वाद सभी ने चखा है। फ़र्क़ इतना है कि आम आदमी उसे यूँ ही बहा देता है, जबकि साहित्यकार इन्हीं आँसुओं को उपकरण की तरह इस्तेमाल करके अपनी नई रचना तैयार कर लेता है। इसी बात को उन्होंने अपने गीत के मुखड़े में भी लिखा है-

शब्द जब-जब बोलते हैं / भेद मन का खोलते हैं

अमन प्रकाशन कानपुर द्वारा प्रकाशित इस 102 पृष्ठीय पुस्तक में 34 ग़ज़लें, 11 गीत, एक लंबी कविता और 56 मुक्तक सम्मिलित हैं। सभी रचनाएँ संदेशप्रद और सकारात्मकता का भाव लिए हुए हैं, जो पाठक को बहुत देर तक बाँधे रखती हैं। आदरणीय डा. सुरेश अवस्थी जी को हार्दिक बधाई।

9/3, लक्ष्मीविहार, हिमगिरि कालोनी काँठ रोड, मुरादाबाद-244105

मो. 99273-76877 email : kknaz1@gmail.com

## दोहे

1. किस्मत है या मौहब्बत, किसका है ये खोटा  
गिरे आप हमको लगी, तुमसे ज्यादा चोटा।
2. अनचाहे या चाहकर वृक्ष छोड़ दे साथ  
गलकर, जलकर नष्ट हो, जाते हैं वो पाता।
3. कैसे करना चाहिए, गैरों से व्यवहार  
नहीं गैर दीवा कोई, ऐसा मेरा प्यारा।
4. श्रवनापिता के वचन ही, दशरथ को वर, शापा  
पुत्रहीन मरना नहीं, मरें पुत्र के जापा।
5. बालित्रसित सुग्रीव ने, धरती मारी छाना  
उपयोगी सिय खोज में, वह भौगोलिक ज्ञाना।
6. देखा शिव के कण्ठ में, विष का घातक भारा  
नागों ने कुछ कुछ लिया, शिव को लिया उबारा।
7. अगर कोई मुझसे कहे, कहो श्रेष्ठतम नामा  
शब्दों में बाँधा नहीं, जाता मा का नामा।
8. वंश चलाना हो अगर, कोई काम न आया  
नारी जाति से करो, विनय परस दोऊ पाया।
9. छूकर गंगाजल जुड़े, भोले से सम्बन्धा  
नहावन, दर्शन, आचमन, कंटै पाप प्रतिबन्धा।
10. चितवन चन्दा को चकित, चंचल चित्त चकोरा  
चन्द्र विराजे शीश पर, लखै न शिव की ओरा।
11. सिय चूड़ामणि राम तक, ले आये हनुमाना  
बन्धु भरत सम बोलकर, राम बढ़ाया माना।
12. सूखे पत्तों पर जरा, रखो अदब से पाँवा  
झुलसाया जब धूप ने बैठे इनकी छाँवा।
13. काँटों से विनती करें, भक्त भरत अविरामा  
चुभन त्याग देना जरा, वन में हैं श्रीराम "
14. कभी जन्म के बाद भी, छुटै न नाभिनाला  
जननी, शावक नेह की, इजी नहीं मिसाला।
15. फनि, मनि, विष, नियरे बसत, गुण अवगुण अनुसार  
एक सुखद वरदान है, एक मृत्यु का द्वारा।
16. क्रोध, पिता का नेह भी, दोनों बड़े विशाला  
जिला दिया सुत मारकर, भोले एक मिसाला।
17. स्वर व्यंजन का मधुरतम, कीना मैंने जाप  
प्रभु जोड़कर प्रार्थना, इसे मानना आपा।
18. बरसातों में भीगना, लगती अच्छी बाता  
देख नहीं सकता कोई, आँसू की बरसाता।
19. पैरों को पूजें सभी, हाथ न पूजे कोया  
धरती से जुड़ना पड़े, तब ही पूजा होया।
20. सीमा तुम हो नेह की, सुमिरूँ मन से नामा  
कड़ी धूप मुझपर पड़ी, बन आये घन श्यामा।
21. मिथ्यारोपण एकजन, प्रजातन्त्र का खयाला  
मर्यादापालन किया, सिय को दिया निकाला।
22. बड़े श्रेष्ठतम जीव का, किया प्रभु निर्माणा  
पालै अपने गर्भ में, तन में डालै प्राणा।
23. सैनिक करते निशाना, यदि डायर की ओरा  
एक वही मरता वहाँ, बच जाते सब औरा।
24. जीवित खावै जीव को, क्या उसकी तकदीरा  
मरने वाले जीव की, बस तू हर ले पीरा।



ई 1-802 हरिगंगा सोसाइटी, आर टी ओ के सामने, फुलेनगर,  
विश्रांतवादी, पुणे - 411006 मो. 7798424293

## आओ गीत प्रीत के गायें

गरिमा सक्सेना

1  
सारे दिन की  
थकन मिटाते  
तुम ज्यों मेरी चाय  
बातों में  
अक्सर परोसना  
मीठा औ नमकीन  
कितनी खुशियाँ  
भर देते हैं  
फ्लेश बैक के सीन  
मुस्कानों का  
तुम बन जाते  
हो अक्सर पर्याय  
कितना कुछ  
हल कर देती है  
अदरक जैसी बात  
लौंग, इलायची  
बन जाते हैं  
प्रेम भरे जज्बात  
जितनी भी  
जो भी शिकायतें  
हो तुम सबका न्याय  
तुम बिन कहाँ  
शाम भर पाती  
इस मन में उल्लास  
सच पूछो तो  
मेरे होने  
का तुम हो आभास  
पल दो पल  
जो साथ मिल रहे  
वह ही मेरी आय

2  
प्यारे लगते हो तुम जैसे  
एक अवध की शाम  
आँखें लगतीं भूलभुलैयाँ  
बोल दशहरी आम  
साथ तुम्हारे चलने से  
रंगीन हुई परछाईं  
सभी दिशाओं में गुंजित अब  
खुशियों की शहनाई  
जबसे मिले मुझे तुम मुझ पर  
रंग नवाबी छाया  
सर्वनाम 'मैं', 'हम' में बदला  
जब बदला उपनाम  
फिल्मी बातें नहीं, जान लो  
यह है एक हकीकत  
मुझको तो इस जीवन से भी  
ज्यादा इसकी कीमत  
धड़कन में संगीत घुल गया  
गीत हुई हैं साँसें  
गाती रहतीं केवल तुमको  
बनकर यह खय्याम  
एक तुम्हारी कहलाने का  
मुझे मिला शुभअवसर  
मान संग अभिमान बढ़ा है  
प्रियवर तुमको पाकर  
हृदय तुम्हारा पावन मंदिर  
दीप ज्योत जैसी मैं  
आलोकित कर पाऊँ तुमको  
चाहूँ आठों याम

मकान संख्या- 212 ए-ब्लॉक, सेंचुरी सरस अपार्टमेंट, अनंतपुरा  
रोड, यलहंका, बैंगलोर, कर्नाटक-560064  
मो : 7694928448 ईमेल-garimasaxena1990@gmail.com

## और भी हैं राहें

हितेश सिंह

लकीर का फकीर अब नहीं बनना, और भी हैं राहें।  
उस मंजिल को गले लगाना, खड़ी जो फैलाए बाहें।  
उसको खोने का डर क्या, पाकर जिसे खुशी न आए।  
उन बंधनों को तोड़ देना है, मन जिसमें बंधना न चाहे।  
उस धुन को गुनगुनाना है, जिससे गीत नया बन जाए।  
हमको ऐसी खुशबू बनना है, जो हर दिल को महकाए।  
एक इबारत ऐसी लिखनी है, जो कभी मिट न जाए।  
एक कश्ती ऐसी बनानी है, जो सागर के पार लगाए।

## पड़ावों को मंजिल मान मत ठहर

पाने की चाहत और खोने का डर  
भटकता हूँ दर बदर।  
जहां थकता हूँ सो जाता हूँ,  
समझता हूँ यही हमारा घर।  
भोर थपकी लगाकर कहता है,  
तय करना है लंबा सफर।  
दौड़ पड़ता हूँ सरपट,  
उबड़-खाबड़ चाहे जैसी हो डगर।  
अब तो पांव के छालों से,  
कदम बढ़ाना भी हो रहा दूभर।  
दिख जाए हकीम, लगा दे मरहम,  
ढूंढती हैं नज़रे इधर उधर।  
दर्द कहता है पाल ले मुझे,  
ठोकरें और भी लगेगी दर-दर।  
चलते रहना ही जीवन है,  
पड़ावों को मंजिल मान मत ठहर।

वरिष्ठ उप संपादक, अमर उजाला आगरा  
पता - ग्राम - गोपालपुर सराय ख्वाजा, पोस्ट - गौराटिकरी, जिला,  
सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश पिन - 560037 मो. 945855955

## एकाकीपन

सुनो  
 तुम त्यौहारों पर  
 जरूर आ जाया करो  
 मेरा मन आधा  
 रह जाता है  
 तुम्हारे बगैर  
 कल तो रंगों का  
 त्यौहार है  
 और तुम वहाँ  
 बेरंग लिपटे रहोगे  
 अपनी अलसाई-सी  
 चादर में  
 पिछली दफा  
 जब तुम  
 छोड़ गये थे  
 तो नहीं देखे थे  
 कितने ही पलाश  
 जो मौजूद थे  
 तुम्हारी राहों में  
 उन्होंने फाल्गुन का  
 न्यौता दिया तो होगा ही  
 तुम्ही अनसुना कर  
 आगे बढ़ते चले गए  
 त्यौहारों पर  
 तुम्हारा यह एकाकीपन  
 मुझे कचोटता है  
 मैं अकेली रह जाती हूँ  
 सबके बीच  
 एकान्त में तुम होते हो  
 पर तुम्हारा  
 एकाकीपन  
 डसता है मुझे।

## मन

मन का क्या है  
 जिद्दी, बिगड़ैल, आवारा है  
 चाहता है  
 लॉन में चल रही महफिल में  
 नंगे पांव तुम्हारा हाथ  
 पकड़ चल देना  
 सड़क पर बज रहे बैण्ड की  
 धुन पर नाच लेना  
 किसी और के प्यारे  
 लग रहे बच्चे को चूम लेना  
 गुस्सा आने पर  
 जोर-जोर से चिल्ला देना  
 कुछ बात पसंद न  
 आए तो रूठ जाना  
 रास्ते से गुज़रते हुए  
 फब्तियां कस रहे या  
 अपनी निगाहों से नंगा कर रहे  
 शोहदों को पीट देने का दिल करता है  
 मन मान जाता है  
 फिर भी यह जिद्दी, बिगड़ैल, आवारा  
 बड़ी ही संजीदगी के साथ  
 पेश आता है  
 उदारता दिखलाता ही है चला जाता है  
 अपनी इन हरकतों से  
 मुझे अपना मुरीद  
 बना लेता है  
 मन बेचारा  
 जिद्दी, बिगड़ैल, आवारा।

१६-ए, दशहरा मैदान, बैंक ऑफ इंडिया के पीछे  
 उज्जैन पिन कोड ४५६०१० मो. 9827577792

1

सफ़र में जो भी घटा धूप चांद तारे थे  
 वो कुछ पड़ाव तो मंज़िल के बस इशारे थे  
 अजब नहीं कि उन्हें आसमां दिखा ही नहीं  
 वो दूसरो से नहीं खुद से जंग हारे थे  
 झुलस रहे थे वही धूप की हरात से  
 वो रेगज़ार जो दरिया के ही किनारे थे  
 अब इन इलाकों में जुगनू सा टिमटिमाते हैं  
 बिछड़ते वक्रत यही ख़्वाब चाँद तारे थे  
 बयान दिन का था अम्नो-अमान है हर सू  
 लहू-लहू से मगर शाम के नज़ारे थे  
 कभी चराग़ कभी आईना कभी शबनम  
 हमारी चुप से जुड़े कितने इस्तिआरे थे  
 ग़ज़ल में ढल के मेरी झिलमिलाए हैं क्या क्या  
 गिरे पड़े हुए जो लफ़्ज़ बेसहारे थे

सू-ओर,इस्तिआरे-उपमाएँ



2

अच्छा हुआ कि दिल से कोई डर निकल गया  
 हम जिसको पूजते थे वो पत्थर निकल गया  
 कूचे में उनके भी किया दो चार दिन क्रयाम  
 फिर और राह दिल का क़लन्दर निकल गया  
 जिसका पता मैं पूछता कबसे था दरबदर  
 हैरा हूँ वो ही घर मेरे अंदर निकल गया  
 लफ़्ज़ों के बीज थे वही ले दे के अपने पास  
 रक़बा मगर ज़मीन का बंजर निकल गया  
 थी तश्रगी को उसके बड़प्पन से कितनी आस  
 कमबख्त नामुराद समंदर निकल गया  
 चादर में तन समेट के हम थे तो मुत्मइन  
 साया ही बढ़ के जिस्म के बाहर निकल गया



3

सुबह सवेरे घर से निकला भटका मारा मारा दिन  
 शाम हुई तो लौट आया है पास मेरे बेचारा दिन  
 रात मेरे सिरहाने बैठा मुझको आस बंधाता था  
 भेष बदलकर दिन में हो जाता था जो हत्यारा दिन  
 रात हुई रातों से लंबी अफ़वाहों के बिस्तर पर  
 ख़ैर हुई कुछ अच्छी ख़बरें ले आया हरकारा दिन  
 एक दूजे के साथ हैं दोनों सिक्के के दो पहलू से  
 रात सिमटती है ख़ुद में जब करता है नज़ारा दिन  
 अंधियारे में कैसे दिखता सुबह हुई तब सूझा है  
 एक पुराना पैराहन था रात का पारा पारा दिन  
 धूप को जिसने धूप किया था और छावों को छावों सा  
 किस से पूछें कौन बताए कहाँ है वो सय्यारा दिन

पैराहन- वस्त्र, पारा पारा - टुकड़ा टुकड़ा,  
 सय्यारा - सैर करने वाला, उपग्रह, नक्षत्र



4

कुछ दिन अभी ख़ला में गुज़ारेगी जिंदगी  
 फिर रूप कोई दूसरा धारेगी जिंदगी  
 ऐ मौत एक दिन तुझे मारेगी जिंदगी  
 हारी नहीं है तुझसे न हारेगी जिंदगी  
 गुमनाम इस जज़ीरे पे ढूँढ़ तुझे कहाँ  
 वादा था मुझको पर उतारेगी जिंदगी  
 कैसे इसे मैं छोड़ दूँ तन्हाइयों के साथ  
 आते ही होश मुझको पुकारेगी जिंदगी  
 एहसास मेरे हो गए पत्थर तो फिर भला  
 खुद को बता तू कैसे संवारेगी जिंदगी



बी -3 एल -211, वृन्दा गार्डेन्स जगतपुरा जयपुर (राजस्थान)

302017 मो. 9460434278

गतिविधियाँ  
आई.सी.सी.आर.



भारतीय राजदूतावास, काठमांडु द्वारा दिनांक 21 जून 2022 को आयोजित अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के अवसर पर माननीय प्रधानमंत्री श्री शेर बहादुर देउबा, नेपाल (मुख्य अतिथि) संबोधित करते हुए।



भारतीय राजदूतावास, काठमांडु (नेपाल) द्वारा दिनांक 21 जून 2022 को आयोजित अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के अवसर पर आयोजित कार्यक्रम के दौरान योग गुरु श्री रमेश सितौला एवं सुश्री कामिनी यादव प्रतिभागियों को योगासन कराते हुए।



दी टैगोर सेंटर, भारतीय राजदूतावास, बर्लिन द्वारा आयोजित कार्यक्रम आजादी का अमृत महोत्सव व कार्यक्रम के दौरान प्रसिद्ध कर्नाटक संगीत प्रतिपादक श्री मनिकम योगेश्वरन और उनकी मंडली द्वारा कर्नाटक संगीत और भजन की प्रस्तुति।



दी टैगोर सेंटर, भारतीय राजदूतावास, बर्लिन ने भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के सहयोग से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में परिभाषित आंदोलन 'बारडोली सत्याग्रह' की 94वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में गांधीवादी मंच से डॉ. शोभना राधाकृष्ण, द्वारा वार्ता प्रस्तुति।



दी टैगोर सेंटर बर्लिन द्वारा इंडिया हाउस में अंतरराष्ट्रीय योग दिवस 2022 का आयोजन किया गया।



भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (आईसीसीआर) और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र (आईजीएनसीए) की संयुक्त परियोजना के तहत दिनांक 13 जुलाई, 2022 को नई दिल्ली के सुषमा स्वराज भवन में आयोजित 'कनेक्टिंग थ्रू कल्चर: एन ओवरव्यू ऑफ इंडियाज सॉफ्ट पावर स्ट्रेंथ्स' समारोह के दौरान डॉ विनय सहस्रबुद्धे, अध्यक्ष (आईसीसीआर) और डॉ सच्चिदानंद जोशी, सदस्य सचिव (आईजीएनसीए) द्वारा संयुक्त रूप से संपादित पुस्तक का विमोचन।



भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (आईसीसीआर) और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र (आईजीएनसीए) की संयुक्त परियोजना के तहत दिनांक 13 जुलाई, 2022 को नई दिल्ली के सुषमा स्वराज भवन में आयोजित 'कनेक्टिंग थ्रू कल्चर: एन ओवरव्यू ऑफ इंडियाज सॉफ्ट पावर स्ट्रेंथ्स' समारोह के दौरान माननीय विदेश मंत्री श्री एस. जयशंकर (मुख्य अतिथि) तथा माननीय राज्यपाल श्री आरिफ मोहम्मद खान सम्मानित अतिथि संबोधन प्रस्तुत करते हुए।



भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा दिनांक 15 जून 2022 को भारत और बेलजियम राजनयिक संबंधों के 75 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में आयोजित कार्यक्रम के दौरान श्री कुमार तुहिन, महानिदेशक ने बेलजियम के राजदूत महामहिम फ्रांस्वा डेलहोए को 'बेलजियम सिंहासन के उत्तराधिकारियों की भारत की निजी यात्राएं' पुस्तक भेंट की।





क्षेत्रीय कार्यालय, पुणे द्वारा दिनांक 30 जून 2022 को क्षितिज श्रृंखला के तहत आयोजित कार्यक्रम के दौरान श्री परितोष पोहनकर हिंदुस्ताली शास्त्रीय गायन की प्रस्तुति करते हुए।



क्षेत्रीय कार्यालय, पुणे द्वारा दिनांक 29 जून 2022 को क्षितिज श्रृंखला के तहत आयोजित कार्यक्रम के दौरान आईसीसीआर के विदेशी छात्रों द्वारा नृत्य प्रदर्शन।



भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद तथा महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय व वर्धा के मध्य दिनांक 26 जुलाई 2022 को विदेशी नागरिकों के लिए ऑनलाइन हिंदी पाठ्यक्रम के संचालन हेतु समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए।



भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा दिनांक 26 जुलाई 2022 को आयोजित समझौता ज्ञापन समारोह के दौरान उपस्थित अधिकारीगण।



स्वामी विवेकानन्द सांस्कृतिक केंद्र, हनाई द्वारा जून 2022 के दौरान अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के अवसर पर आयोजित योगा कार्यक्रम।





## भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

### सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

पत्रिका भिजवाने का पता

.....  
.....  
.....  
.....

.....  
.....  
.....  
.....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/US\$
गगनांचल	एक वर्ष	₹ 500 (भारत)	
वर्ष .....		US\$ 100 (विदेश)	
	तीन वर्षीय	₹ 1200 (भारत)	
		US\$ 250 (विदेश)	
कुल	छूट, पुस्तकालय	10%	
	पुस्तक विक्रेता	25%	

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं. .... दिनांक .....

रु./US\$ ..... बैंक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ

निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :

कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002, भारत

फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैप .....

नाम .....

पद .....

दिनांक .....

## भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

### प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 44 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य, विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों जैसे महात्मा गाँधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन-योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य और नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिलकर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प

और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

## भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

अध्यक्ष	:	23378616, 23370698
महानिदेशक	:	23378103, 23370471
उप-महानिदेशक (प्रशासन)	:	23370784, 23379315
उप-महानिदेशक (संस्कृति)	:	23379249, 23370794
हिंदी अनुभाग	:	23370237, 23379309-10 एक्स. 2256/2272

